मध्ययुगीन

हिन्दी साहित्य में नारी-भावना

(इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

डॉ० उषा पाण्डेय, एम० ए०, डी० फिल्०
हिन्दी-विभाग
इन्द्रप्रस्थ कालेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली

हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली-६

मूल्य	दस	रुपये
प्रथम मस्करण	अक्टूबर	१९५९
मुद्रक	:	नारायन फाइन आर्ट प्रेस, दिल्ली

तुमको !

जो स्वप्न की अभिराम मोहकता में स्नेह और सौभाग्य का महोत्सव, सुख-सौरभ का मधुमास मनाकर छिप गए।

—तुम्हारी
उषा

दो शब्द

मैंने डा० उषा पाण्डेय के शोध-ग्रन्थ का विहगालोकन किया है। ग्रन्थ के विषय-विभाजन और विषय-प्रतिपादन दोनो मे रुचिकर स्वच्छता है जिससे ग्रन्थ अत्यन्त सुपाठ्य बन गया है। भाषा साहित्यिक गुणो से अलकृत—प्राजल है। श्रीमती पाण्डेय ने विषय के साथ तादात्म्य कर मनोयोगपूर्वक मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य मे नारी-भावना का सुन्दर विवेचन किया है। शोध का प्राविधिक रूप भी अत्यन्त सम्पन्न है—उद्धरण, पादटिप्पणिया, सदर्भ-सकेत आदि अपने आप मे पूर्ण है।

मैं इस नवीन कृति का स्वागत और उसकी कृती लेखिका के उज्ज्वल भविष्य की मगल कामना करता हूँ।

हिन्दी विभाग
दिल्ली-विश्वविद्यालय
दिल्ली

— नगेन्द्र

प्राक्कथन

बहुत पहले ही मानव जाति ने परिवार की कल्पना कर ली थी और स्त्री-पुरुष के विविध पारिवारिक सबध तथा अन्य आवश्यक व्यवस्थाएँ स्थापित कर दी थी। ससार के सभी देशो के सास्कृतिक इतिहास में परिवार का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। भारतवर्ष की परिवार-व्यवस्था सबधी अनेक समस्याओ पर स्मृतियो के अध्ययन से प्रकाश पडता है। भारतीय परिवार, कुछ स्थानीय अपवादो को छोड कर, पितृसत्तात्मक रहा है और उसमे पूर्वजो से लेकर पुत्र-पुत्रियो तक की सयुक्त सत्ता स्वीकार की जाती रही है। वह केवल एक नारी और एक पुरुष तथा उनकी सन्तान तक ही सीमित नही रहा। जीवन के चारो फल—धर्म, अर्थ काम, मोक्ष-प्राप्त करना भारतीय परिवार का अन्तिम उद्देश्य था और पितृसत्तात्मक होते हुए भी उसमे नारी का आदरपूर्ण और स्नेहपूर्ण स्थान था—यद्यपि स्त्री-धन के अतिरिक्त उसके आर्थिक अधिकार लगभग शून्य थे। स्त्री और पुरुष का पारस्परिक सबध अविच्छिन्न समझा जाता था। साथ ही समाज में वह पत्नी, प्रेमिका भगिनी, कन्या, माता, वेश्या आदि विविध रूपो में देखी जाती थी।

किन्तु भारतीय समाज में नारी का स्थान सदैव एक-सा नही रहा। परिवर्तित परिस्थितियो और वातावरण के अनुसार उसकी स्थिति में भी अनेक परिवर्तन हुए। मुसलमानी आक्रमण से पूर्व नारी की जो स्थिति थी वह बाद को बनी न रह सकी। धर्म-शास्त्रो ने भी यथावसर उसके जीवन के पहलुओ में से कभी एक पर और कभी दूसरे पर बल दिया और अन्ततोगत्वा नारी का वह रूप हमारे सामने आया जिसे 'पौराणिकता' के भार से दबा हुआ रूप कहा जाता है। भारतीय इतिहास के मध्ययुग में अन्य रूपो की अपेक्षा उसका 'विलास पुत्तलिका' वाला रूप अधिक आकर्षक सिद्ध हुआ। सन्तो और भक्तो ने अपनी वैराग्य पूर्ण वृत्ति से प्रेरित होकर उसे 'सर्पिणी, और 'भव-बन्धन' का मुख्य कारण बताया। तुलसी जैसे समन्वयात्मक दृष्टि-सम्पन्न कवि ने उसे माता और जीवन की सच्ची सहधर्मिणी के रूप में भी चित्रित किया। किन्तु मध्ययुग के वैभवपूर्ण भौतिक वातावरण में नारी के प्रति एक विशेष प्रकार के दृष्टिकोण का आविर्भाव हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नही थी।

सच तो यह है कि भारतवर्ष में नारी की निन्दा और प्रशसा दोनो बातें पाई जाती है। यहा यदि एक ओर सन्तो ने उसे काम-स्वरूपा जानकर उसकी घोर निंदा की है, तो दूसरी ओर भारतवर्ष में ही यह भी कहा गया है कि जहां स्त्रियो का आदर होता है वहां देवता विचरण करते है और शास्त्रकारो तथा कवियो ने उसके

सतीत्व, मातृत्व, आत्म-त्याग तथा बलिदान और अन्य अनेक गुणो का गान किया है। सतुलित भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार उसका वही रूप है जो कामायनी की श्रद्धा का है।

डॉ० उषा पाण्डेय ने अपने प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी काव्य साहित्य के आधार पर नारी के सबध में परपरा से विकसित विविध रूपो को दृष्टिपथ में रखते हुए उनकी केवल मध्ययुगीन स्थिति पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कर अपने निष्कर्ष निकाले है। परपरा और तत्कालीन राजनीतिक समाज तथा धर्म की पृष्ठभूमि में आपने नारी के प्रति कवियो के दृष्टिकोण की सूक्ष्म परीक्षा की है और तत्कालीन पारिवारिक एव सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। आशा है एक महिला द्वारा लिखा हुआ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की डी० फिल्० डिग्री के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध हिन्दी साहित्य के पाठको को विशेष रोचक जान पडेगा।

हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी
इलाहाबाद
२९-८-१९५९

—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

भूमिका

भारतीय सस्कृति एवम् दर्शन में नारी को सदा ही विशिष्ट स्थान मिला है। हिन्दू धर्म-कथाओ मे अर्द्धनारीश्वर की कल्पना नारी की महत्ता तथा प्रधानता की द्योतक है । नर की सृष्टि नारी के सहयोग के विना अपूर्ण है । अपनी सर्जन प्रतिभा तथा कला से नारी उसे पूर्णता और अमरता प्रदान करती है। कोमल सवेदनशीला नारी सामाजिक व्यवस्था का एक आवश्यक अग है । सम्यता एवम् सस्कृति के निर्माण मे उसने क्रियात्मक योग दिया है। उसके लोरी गाने वाले कोमल स्वर मे राष्ट्रनायको को कर्तव्य-निर्देश देने की क्षमता है, तथा नारी के ही पालना झुलाने वाले करो मे विश्व पर शासन करने की शक्ति सन्निहित है। उसके जननी रूप के गौरव एवम् महत्ता को विश्व के सभी राष्ट्रो ने स्वीकार किया है। वस्तुत देश एवम् राष्ट्र का उत्थान, समाज एवम् जाति का उत्कर्ष इसी अर्द्धांग पर निर्भर है। आत्मगौरवपूर्ण माता ही वालक मे कर्नव्य-पालन, आत्म-सम्मान और उत्सर्ग की उदात्त भावनाओ का उन्मेष कर सकती है । अत इस मातृ-शक्ति का अनादर देश और जाति के हित के लिए घातक है।

नर की हिंसा की प्रचण्ड ज्वाला मे दग्ध मानवता को ममता एव स्निग्धता का अनुलेपन प्रदान करने वाली नारी, राष्ट्रविधात्री जननी, आत्मोत्सर्ग की मूक प्रतिमा पत्नी उपेक्षा की पात्र नही है । शतियो से समाज तथा पुरुष के अत्याचार के चक्र में पिसती हुई, मातृत्व के गौरव के साथ अनन्त वेदना की थाती लिए, नारी की अवहेलना समीचीन नही है । मध्ययुगीन तथा आधुनिक नारी मे वहुत अन्तर है। कुसस्कारो मे पली हुई, परम्परा के वन्धनो मे सीमावद्ध, अशिक्षित मध्ययुगीन नारी का दृष्टिविन्दु गृह की क्षुद्र सीमा मे ही केन्द्रित रहा है। यद्यपि इतिहास तथा साहित्य मे इसके अपवाद भी है, पर जनसामान्य मे नारी निश्चित सीमाओ, आदर्श रेखाओ पर इच्छा अथवा अनिच्छा से चली है । उसके अशिक्षित मस्तिष्क, कुसस्कारो से पूर्ण हृदय पर नियामको ने आदर्श का भार लादने का प्रयास किया है। वौद्धिकता तथा तर्क-वितर्क की भावना रहित नारी के सरल हृदय ने इन आदर्शो को अपने जीवन-पथ का ध्रुवतारा समझा। इन आदर्शो, एकपक्षीय पवित्रता तथा पातिव्रत को उनने सदा ही शिरोधार्य किया है। इनकी स्वर्णिम आभा की मोहकता मे विमुग्ध हो वह द्रुतगति से चली । इन आदर्शो की उपलब्धि के प्रयास मे उसे विस्मृत हो गया कि उसके पग शृखलावद्ध हैं, अत वह

पतित भी हुई। मानुषी तथा अमानुषी शक्तियो के सघात से उसका अपकर्ष हुआ। निरीह सरल विश्वास से उसने पुरुष को आत्मसमर्पण कर दिया, तथा पति को ही परमेश्वर माना। फलत मध्ययुग की नारी पुरुष के इगित पर नृत्य करने वाली काष्ठ-पुत्तलिका मात्र रह गई। उसमे चेतनता तथा व्यक्तित्व का अभाव रहा है।

आधुनिक नारी नवजागरण के इस युग मे प्रभात के आलोक मे नयन खोल रही है। जीवन के विविध क्षेत्रो मे उसे पुरुषो के समान ही उत्कर्ष तथा विकास के अवसर हैं। अग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सस्कृति के सम्पर्क से उसने रूढियो का पुरातन वस्त्र उतार फेंका है। स्वावलम्बन तथा आत्म-सम्मान की भावना उसमे प्रमुख है। अपने कर्तव्यो से अधिक अपने अधिकारो के प्रति वह जागरूक, सचेत और प्रयत्नशील हैं। आधुनिक नारी मे शिक्षा, चेतनता तथा व्यक्तित्व है। परन्तु जिन स्तरो से होकर वह उन्नति के इस शिखर पर आसीन हो सकी, उनको समझने के लिए मध्ययुगीन नारी, उसकी सामाजिक सीमाओ तथा अन्य परिस्थितियो का विश्लेषण अपेक्षित है। प्रस्तुत प्रबन्ध मे साहित्यकारो द्वारा मध्ययुगीन नारी के चित्रण, तथा उसके और इतिहास के आधार पर दार्शनिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से नारी-भावना का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

आलोच्यकाल (१५०० से १७५० ई० तक) का समय भारत के सास्कृतिक तथा राजनीतिक इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पन्द्रहवी शती से ही धार्मिक आन्दोलनो तथा अन्य कारणो से प्रेरणा पाकर भक्ति की पावन पयस्विनी प्रवाहित हुई। आलोच्यकाल का प्रारम्भ का युग भक्ति-काल, हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्वर्णयुग की सज्ञा से अभिहित होता है। इसी युग मे समाज को समानता का सदेश सुनाने वाले कबीर, तुलसी से समन्वयशील लोकनायक, तथा सूर से वात्सल्य तथा विप्रलभ शृगार के अद्वितीय कवि ने अपनी अमूल्य कृतियो से भारती के कोष की वृद्धि की। भक्ति के इस पावन उत्कर्ष मे नारी की क्या स्थिति रही तथा इन भक्त कवियो ने नारी को किस दृष्टि से देखा, यह महत्वहीन नही है। भक्ति-काव्य ही राजनीतिक तथा अन्य परिस्थितियो से प्रेरणा पाकर शृगार मे पर्यवसित हो गया। रीति-कवियो ने भी भक्ति को मान्यता दी, परन्तु उनके कृष्ण लोकनायक, लोकरक्षक न होकर केवल सौंदर्य एवम् शृगार के प्रतीक हैं। नारी-नख-शिख-वर्णन मे कुशल, तिल पर तक शतक लिखने वाले इन शृगारी कवियो का नारी के प्रति दृष्टिकोण विश्लेषण एवम् आलोचना का विषय है। आलोच्यकाल का उत्तर भाग रीतिकाव्य का युग है, किन्तु इसका राजनीतिक तथा सास्कृतिक महत्व भी न्यून नही है। भारत के राजनीतिक इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सक्रान्ति का युग है। इस समय मुगल शासन की केन्द्रीय दुर्बलता, परवर्ती सम्राटो की शक्तिहीनता मे विदेशी शक्तिया प्रबल हो रही थी। मध्ययुग समाप्त हो रहा था, तथा आधुनिक युग की सीमा रेखाएँ आकार ग्रहण

कर रही थी। १७५० ई० से रीतिकाव्य के उत्कर्ष का युग समाप्त हो जाता है, तथा रीति-निर्वाह एवम् नायिकाभेद पर सामान्य शृगारपरक साहित्य का सर्जन होता रहा है। अत मैंने अपना अध्ययन १५०० ई० से १७५० ई० तक सीमित रखा।

आलोच्यकाल की इन्ही विशेषताओ को दृष्टिपथ मे रखते हुए 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की नारी-भावना' का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। सम्पूर्ण प्रबन्ध के दो भाग है—प्रथम भाग मे पहले अध्याय पूर्वपीठिका के अन्तर्गत आलोच्यकाल से पूर्व की नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। यह मेरे विषय से बाहर है। अत इसकी सामग्री के लिए मौलिकता का दावा मै नही रखती हू। दूसरे अध्याय मे इस्लाम से भारत का सम्पर्क, इस्लामी सस्कृति के सम्पर्क मे प्रभावित आलोच्यकाल की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियो मे नारी की स्थिति का विवेचन किया गया है। इस्लाम ने भारतीय नारी के जीवन मे कोई मौलिक क्रान्ति न प्रस्तुत करते हुए भी प्रत्यक्षत एवम् अप्रत्यक्षत उसे प्रभावित अवश्य किया है। भारतीय राजपूती सामन्तवाद से इस्लामी, फारसी तथा अरबी सस्कृतियो के सगम, उनकी सामन्तवादी परम्परा के योग ने किस प्रकार वैभव और विलास की अतिशयता का ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया जिसमे नारी का स्थान केवल विलास के उपकरण के रूप मे रहा, इस पर भी द्वितीय अध्याय मे ही विचार किया गया है।

दूसरे भाग मे साहित्यिक प्रतिक्रिया के अन्तर्गत समाज तथा साहित्य के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हुए, इन विशिष्ट परिस्थितियो मे विकसित काव्य की विभिन्न धाराओ का उल्लेख किया गया है, तथा शेष भाग को पाच अध्यायो मे विभाजित किया गया है। तीसरे अध्याय मे 'वीरकाव्य की नारी-भावना' का विश्लेषण किया गया है। चौथे अध्याय 'निर्गुण-भक्ति' के दो प्रकरणो मे 'सन्त तथा सूफी-काव्य' मे नारी के प्रति दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है, तथा पाचवें अध्याय मे 'सगुण भक्ति' के दो प्रकरणो मे रामकाव्य तथा कृष्ण काव्य की नारी-भावना' पर प्रकाश डाला गया है। रीति-काव्य की नारी-भावना इन सब धाराओ की नारी-भानवा से विशिष्ट होने के कारण उसका पृथक अध्याय मे विश्लेषण किया गया है। सातवें अध्याय मे आलोच्य साहित्य मे नारी के विविध रूपो—माता, पत्नी, प्रेयसी आदि के चित्रण की विवेचना तथा वैवाहिक आचारो, शिक्षा केलि-क्रीडाओ, वस्त्राभूषणो एवम् प्रसाधनो, नारी के विविध पारिवारिक सबधो एवम् नारी-सौन्दर्य-चित्रण के प्रकाश मे नारी की स्थिति पर एक समीक्षात्मक दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे केशव, सेनापति तथा रहीम को भक्तिकाल के फुटकल कवियो मे रखा है। परन्तु सुविधा तथा विषय की एकता के कारण प्रस्तुत प्रबन्ध मे केशव की रचनाओ पर वीरकाव्य,

रामकाव्य तथा रीतिकाव्य—तीनो मे ही विचार किया है । सेनापति मे भक्ति का विकास है, परन्तु उनके श्लेष-वर्णन, ऋतुवर्णन, तथा नख-शिख-वर्णन मे रीति-कालीन प्रवृत्ति स्पष्ट है, अत उनको रीति-कवियो मे सम्मिलित किया है। रहीम पर भी रीति-कवियो मे ही विचार किया गया है । काव्य की धारा विशेष को अधिक महत्त्व दिया है। अत उस धारा के प्रतिनिधि कवियों की नारी-भावना का ही विवेचन किया है, नगण्य कवियो पर विचार नही किया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के योग्य निरीक्षण में लिखा गया है। इसके लेखनकाल मे आदरणीय वार्ष्णेय जी से सतत प्रोत्साहन मिलता रहा, व्यस्त होने पर भी उन्होने इस प्रबन्ध का प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। उनके प्रति मै अतिशय कृतज्ञ हूँ। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० रामकुमार वर्मा से भी प्रोत्साहन और निर्देश मिलते रहे है। डॉ० नगेन्द्र ने अपनी सम्मति और आशीर्वाद देकर प्रोत्साहन दिया है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र, डॉ० रामप्रसाप त्रिपाठी प्रभृत्ति विद्वानो से भी मगलाकाक्षाएँ और सुझाव मिले। अपने इन श्रद्धास्पद गुरुजनो के स्नेह के लिए धन्यवाद देना औपचारिकता-प्रदर्शन मात्र होगा। अपनी सहयोगिनी शोध-छात्राओ तथा अन्य व्यक्तियो के प्रति मै आभारी हूँ, जिन्होने मौखिक अथवा क्रियात्मक सहयोग दिया है।

२, क्वीन मेरी लेन
तीस हजारी, दिल्ली
१४-१०-५६

—उषा पाण्डेय

विषय-सूची

१. आलोच्यकाल से पूर्व नारी की स्थिति

प्रागैतिहासिक युग, वैदिक-उपनिषद् युग, सूत्रकाल तथा महाकाव्य काल मे नारी की स्थिति—बौद्ध तथा जैन धर्मो मे नारी—ईसवी शताब्दी से इस्लाम के साथ सम्पर्क तक नारी—सस्कृत-काव्य की नारी-भावना—मत्रयान, वज्रयान और सहजयान मे नारी। पृ० १३–२७

२. आलोच्यकालीन जीवन और नारी

इस्लाम के आक्रमणकाल का भारत—इस्लाम से सपर्क—आलोच्यकाल का राजनीतिक जीवन—स्त्रियो का सहयोग—राजनीति को खिलौना समझने वाली मुस्लिम महिलाएँ, राजनीति के क्षेत्र मे हिन्दू नारी—आलोच्यकाल का आर्थिक जीवन—आलोच्यकाल का सामाजिक जीवन—वर्ण-व्यवस्था, परिवार, पर्दा, विवाह, सती और जौहर-वेश्यावृत्ति, शिक्षा तथा सार्वजनिक जीवन—स्त्री शिक्षा—आलोच्यकाल का धार्मिक-जीवन—विविध धार्मिक सम्प्रदाय और नारी—धर्माधिकारी तथा सामन्त—सामन्ती व्यवस्था का विलास वैभव और नारी—मुस्लिम दर्शन और अरबी फारसी भावधारा का प्रभाव—इस्लाम के अन्तर्गत नारी—इस्लामी परम्परा एवम् लोकोक्तियो मे नारी के प्रति दृष्टिकोण—हरम की महिलाओ का जीवन—भारतीय सामन्तो मे इस्लामी सभ्यता का अनुकरण—राजस्थान की नारी—निष्कर्ष।

पृ० २८–५८

साहित्यिक प्रतिक्रिया पृ० ५९–६५

३ वीरकाव्य में नारी

हिन्दी के आदिकाल मे ही वीर-काव्य का आविर्भाव—राजपूत नारी मे त्याग एव बलिदान की भावना—आलोच्य वीरकाव्य मे नारी के दो रूप—वीर और शृगारी, नारी का शृगारिक रूप—नारियो की दिनचर्या, तत्कालीन समाज मे नारी, भूषण द्वारा नारी-चित्रण—नारी शृगार का उपकरण, नारी का असत् रूप—नारी का वीर रूप, निष्कर्ष। पृ० ६६–७५

४. निर्गुण भक्ति-काव्य में नारी

प्रकरण १ : सन्तकाव्य में नारी

निर्गुण भक्तिमार्ग का साहित्य ही सन्त साहित्य है, सन्त-काव्य की पृष्ठभूमि, सत-कवियो का जीवन के प्रति दृष्टिकोण—सतो का नारी के प्रति दृष्टिकोण, नारी का सत् और असत् रूप—प्रतीक रूप मे नारी, दाम्पत्य भाव, स्वकीया भाव से उपासना—प्रेम के दो रूप-सयोग और वियोग, विरह चित्रण—उद्दीपन रूप, मिलन से पूर्व की तैयारी, पति-व्रता का प्रतीक—माता का रूपक, श्लेष रूप मे नारी—निष्कर्ष ।

पृ० ७७–६५

प्रकरण २ सूफी-काव्य में नारी

लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का चित्रण, सूफी-काव्य की पृष्ठभूमि—सूफी जीवन-दर्शन—दाम्पत्य भाव का प्रतीक—प्रेम-गाथाओ की परम्परा और आध्यात्मवाद—आध्यात्मिकता के विषय मे मतभेद—सूफीकाव्य मे नारी—लौकिक और अलौकिक दोनो रूप, अलौकिक रूप, लौकिक रूप—कवियो की नारी विषयक उक्तियाँ—नारी का सत् एव आदर्श रूप—नारीगत् आदर्श—असत् रूप—निष्कर्ष । पृ० ६६–११३

५. सगुण भक्ति काव्य में नारी

प्रकरण १ रामकाव्य में नारी

रामकवियो द्वारा राम के लोकरक्षक स्वरूप का अकन—राम-काव्य की पृष्ठभूमि—जीवन के प्रति दृष्टिकोण—रामकवि और नारी—नारी भावना के चार रूप—इष्ट सबधित नारी—नारी का सत् रूप एवम् नारी-आदर्श की व्याख्या—समकालीन नारी की स्थिति—परपरागत नारी-निन्दा—केशव की नारी-भावना—निष्कर्ष ।

पृ० ११४–१३६

प्रकरण २ · कृष्णकाव्य में नारी

कृष्णकाव्य मे उपासना के सामान्य मार्ग का विधान—राधा-कृष्णोपासना का विकास—कृष्णकाव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि—जीवन के प्रति दृष्टिकोण—कृष्णभक्त कवि और नारी—नारी का असत् रूप—मधुर भाव की भक्ति का सिद्धात—राधा परमानन्द शक्ति की प्रतीक—प्रेम के विभिन्न रूपो मे नायिका भेद—नारी आदर्श (लौकिक)—निष्कर्ष । पृ० १४०–१५६

६. रीति-काव्य में नारी

विलास एवम् श्रृगारमयी परिस्थितियो मे रीति-काव्य का सर्जन—रीतिकाव्य की पृष्ठभूमि—जीवन के प्रति दृष्टिकोण—रीति-कवि और नारी—रीतिकाव्य मे नायिका भेद—स्वकीया के आदर्श की स्वीकृति—श्रृगार एव विराग की दो विरोधी प्रवृत्तियाँ, रीति-कवियो का नारी के प्रति दृष्टिकोण दैहिक एव उपभोग का—पुरुष के विलास के साधन के रूप मे। पृ० १५७–१७०

७. साहित्य में नारी के विविध रूप

माता, प्रेयसी, पत्नी रूप, वैवाहिक आचार और नारी—शिक्षा और नारी—नारी के विविध पारिवारिक सबध—नारी की केलि-क्रीडाए और उनकी स्थिति पर प्रकाश—नारी-सौन्दर्य—वस्त्राभूषण तथा श्रृगार के साधन। पृ० १७१—२३६

उपसहार पृ० २४०–२४२

सहायक ग्र थ-सूची पृ० २४३–२४६

: १ :

आलोच्यकाल से पूर्व नारी की स्थिति

परमब्रह्म ने सृष्टि-निर्माण के लिए एक दूसरे के पूरक दो रूपो की रचना की, पुरुष और नारी। इन्ही पृथक् गुण एवम् प्रकृति वाले भिन्न रूपो का मिलन मानव सृष्टि का आधार है। पुरुष कठोरता, सक्रियता, शक्ति एव शौर्य का परिचायक है, नारी कोमलता, मधुरता एवम् सुकुमारता का मूर्त्त रूप। पुरुष मे मस्तिष्क पक्ष की प्रधानता है, कर्मण्यता का प्रवाह, शौर्य का सयोग है और नारी मे उसकी निर्ममता, कठोरता, रूक्षता को अपनी स्वभावगत स्निग्धता से मृदुल बनाने की क्षमता विद्यमान है। नारी आदि-शक्ति के रूप में पुरुष का अर्धांग, तथा जीवन का सर्जन एवम् पोषण करने वाला मातृपक्ष है। जीवन वात्सल्य और ममता के इसी मधुमय प्रवाह का मुखापेक्षी है। भारतीय सस्कृति मे नारी के प्रति यही दृष्टिकोण प्रधान रहा है। स्नेह एवम् ममता, करुणा और वात्सल्य, उत्सर्ग और त्याग की स्वभावगत विशेषताओ के कारण माता, पत्नी, पुत्री और भगिनी के रूप में समादरणीय होकर वह रमा, जगदम्बा, एवम् अन्नपूर्णा के नाम से अभिहित हुई।

प्रागैतिहासिक युग : ३२५० से २७५० ई० पू०

प्रागैतिहासिक युग का इतिहास, इतने अन्वेषण के उपरान्त भी अनुमान पर आधारित है। प्राप्त अवशेषो, चिन्हो, चित्रो द्वारा सभ्यता के उस आदि युग-विषयक ज्ञातव्य सूचनाओ का अनुमान लगाया गया है। मातृदेवी की उपासना के विकास से सभावना की जाती है कि प्रागैतिहासिक युग मे मातृसत्तात्मक समाज था। उस आदि युग में माता ही समस्त शक्ति और सत्ता की केन्द्र थी। माता की इस शक्ति के मूल में दो कारण निहित हैं, उसकी आर्थिक उपादेयता, और विवाह सबधी नियमो की शिथिलता। समाज में माता की इन अविकारपूर्ण, सत्तात्मक स्थिति से आश्चर्य और भय की आदि भावनाओ से अनुप्राणित हो मानव ने अदृश्य शक्ति की कल्पना माता की प्रतिमा में ही की थी।[1] सभ्यता के इस आदिकाल मे समाज में विवाह की प्रथा थी, अथवा नैतिक उच्छृङ्खलता फैली थी इस विषय में मतभेद है। महाकाव्यो मे प्राप्त कुछ उदाहरणो के आधार

---

१ शशिभूषणदास गुप्ता—इवोल्यूशन आफ मदर वरशिप इन इण्डिया पृ० ४९-५० : ग्रेट विमेन आफ इण्डिया में सग्रहीत १९५३ कलकत्ता

पर अल्टेकर सभावना करते हैं कि तत्कालीन समाज में विवाह की पद्धति नहीं थी।[1] मनुष्य, स्त्री-पुरुष के छोटे-छोटे सामाजिक समूहो में प्रकृति से सघर्ष करता हुआ, साथ-साथ श्रम करता और रहता था। यौन सवधो में वह अर्धमानव अर्ध-पशु था[2]। यह तो स्पष्ट ही है कि नारी की स्थिति पुरुष के समकक्ष ही नही प्रत्युत् उससे श्रेष्ठ थी। आर्थिक, सामाजिक जीवन में उसे विशेषाधिकार उपलब्ध थे।

वैदिक युग : १६०० ई० पू० ऋग्वैदिक काल

ऋग्वेद भारत का ही नही, अपितु ससार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। ऋग्वेद का युग मानव-सभ्यता का मधुमय विहान था। प्रकृति के सौन्दर्ययुक्त, विस्मयोत्पादक दृश्य दृष्टिगत कर उसके लोमहर्षक भयोत्पन्नकर्ता स्वरूप का साक्षात्कार कर, उसकी उर्वरा शक्ति मे जीवन का वरदान पाकर आर्यों के भाव-कुसुम गति एव लय का अवलम्ब लेकर ऋग्वेद मे प्रस्फुटित हो उठे। आर्यों ने प्रकृति की आश्चर्यजनक शक्तियो को दैवी शक्ति का प्रतीक मानकर उनमे देवत्व का आरोप किया। अदिति को मातृत्व का प्रतीक माना। रात्रि, प्रभात, निशा, सूर्या, इन्द्राणी, वाक, इला, भारती, सरस्वती आदि वैदिक देवियो में अधिकाश प्राकृतिक शक्ति की प्रतीक हैं। वैदिक दिव्य प्रतीको को भावना एव भक्ति का अर्घ्य मिला।

ऋग्वेद काल की नारी भावना का पूर्ण परिचय ऋग्वेद में वर्णित इन प्रतीको से मिलता है। आर्यो द्वारा सर्जित और पूजित इन देवियो मे, उनके गृह एवम् यज्ञ की शक्ति ही प्रतिबिंबित हुई है[3]। इन्द्राणी भारतीय पत्नी की प्रतीक है, वह गृह की एकछत्र स्वामिनी, पति में शक्ति का सचार करने वाली, एवम् उसके सम्पूर्ण हृदय के प्रेम की अधीश्वरी है[4]। उस समय के समाज का आधार पितृसत्ताप्रधान परिवार था[5]। पुरुष और नारी विवाह के अविच्छिन्न पवित्र सस्कार के बधन में बद्ध हो जीवन-पथ पर अग्रसर होते थे। ऋग्वेद मे प्रदत्त विवाह की ऋचा के अनुसार वधू पितृगृह से पतिगृह जाती थी। अपने नवगृह में वह सास-ससुर, ननद-देवर सब पर शासन करती हुई समादरणीय स्थान प्राप्त

एच० सी० राय चौधरी—एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० २०, १९५३ लदन

राधा कुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन, १९५० बम्बई, पृ० २३

१ ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ़ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ३५, १९३८ बनारस

२ एस० ए० डागे—इण्डिया फ्राम प्रिमिटिव कम्यूनिजम टू स्लेवरी पृ० ११८-२८, १९४९ बम्बई

३. भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद, पृ० ३, १९४१ बनारस

४ भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद, पृ० २१, १९४१ बनारस

५ राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २७, १९५०

करती थी[1]। दम्पति शब्द पति पत्नी के सम्मिलित स्वामित्व का द्योतक था। पत्नी पति के इगित पर सचालित होने वाली काष्ठ-पुत्तलिका न होकर, सुख-दु ख में पति की सहभागिनी थी। उस समय नारी का चरम विकास मातृत्व में स्थापित हो गया था। माता श्रद्धा एवं आदर की पात्री थी[2]। माता का आशीर्वाद जीवन में सौख्य एव कल्याण का आवाहक था। पुत्र-जन्म अधिक आनन्द-जनक अवश्य था, किन्तु उत्पन्न होने के उपरान्त पुत्री असीम ममता एव स्नेह की भागिनी हो कर कनिका नाम से अभिहित होती थी।

सामाजिक जीवन में स्त्रियो को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था[3]। यह उन्मुक्त प्रेम का युग था। सवन नाम के सार्वजनिक उत्सवो में स्त्रियां भी भाग लेती थी[4]। वैदिक-सस्कृति मे स्त्रियां पुरुषो के ही समान उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। वेद और शास्त्रो में पारगत होने के अतिरिक्त वे ऋचाओ की रचना भी करती थी[5]। साहित्य के साक्ष्य के अनुसार विश्ववरा, लोपामुद्रा, सिक्ता निवा-वरी और घोषा ऋग्वेद की प्रतिभाशालिनी कवयित्रियां हैं। उन लेखको एवम् विद्वानो में जिनकी स्मृति में ब्रह्मयजन के अवसर पर नैत्यिक श्रद्धाजलि अर्पित की जाती है, सुलभा, मैत्रेयी, वाक, प्राचितेई, एव गार्गी वाचकनवी हैं[6]। समाज में एक पत्नीव्रत की मर्यादा मान्य थी, बहुपतित्व की प्रथा अप्रचलित थी। काला-न्तर में अभिजात वर्ग में बहुविवाह प्रचलित हो गया[7]। कन्या एव पति दोनो को ही अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी[8]। बाल विवाह की प्रथा

---

१ सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव,
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु। ऋग्वेद १०।८५।४६

२ सी० वंडर—विमेन इन एशियन्ट इडिया पृ० ६३, लदन १९२५

३ सगठन के सिद्धान्त और व्यवहार में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊंचा था, किसी प्रकार का परदा नहीं था। साधारण जीवन के अलावा समाज के मानसिक और धार्मिक नेतृत्व में भी स्त्रियो का हाथ था।—बेनीप्रसाद —हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृ० ५०, प्रयाग १९३१

४. भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद पृ० ४५, बनारस १९४१

५. हारानचन्द्र चकलेदार—सोशल लाइफ इन एशियन्ट इडिया, कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया भाग ३, पृ० १९७ में सग्रहीत

६ ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १२, १९३८ काशी

७. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ७२, १९५० बम्बई

८ राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ७२, १९५० बम्बई
भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद पृ० ४५, १९४१ बनारस

नही थी[१]। विधवा को पुनर्विवाह अथवा नियोग का अधिकार था[२]।

वैदिक युग की नारी धार्मिक जीवन में पति की सहयोगिनी होती थी[३]। उसे अकेले उपासना करने का अधिकार प्राप्त था[४]। स्त्रियो का भी पुरुषो के समान ही उपनयन होता, उसके उपरान्त वे वैदिक शिक्षा के साथ ही यज्ञादि सम्पादन कर सकती थी। सामान्यत धार्मिक उपासना तथा प्रार्थना दम्पत्ति मिल कर करते थे। पारिवारिक यज्ञो में नारी का क्रियात्मक सहयोग रहता था। साम के मन्त्रो के रागात्मक उच्चारण के अतिरिक्त वे चढाए जाने वाले चावल को पीसती और बलि-हेतु प्रस्तुत पशु को स्नान कराती थी[५]।

उत्तर वैदिक युग

ऐसे साक्ष्यो का अभाव नही है जिनसे स्त्रियो के आदरपूर्ण स्थान का परिचय प्राप्त होता है, तो भी धीरे-धीरे वर्ण-व्यवस्था के नियमो में कडाई के साथ स्त्रियों के पद में क्रमिक ह्रास होने लगा था। अन्तर्वर्ण विवाह प्रचलित तो थे, किन्तु उनसे उत्पन्न सन्तान निकृष्ट मानी जाती थी। अनुलोम विवाह प्रथा के कारण स्त्री का पद और भी हीन हो गया था। तप और विराग की बढती हुई प्रवृत्ति के कारण स्त्री को अनादर की दृष्टि से देखा जाने लगा था। मैत्रायणी-सहिता स्त्रियो को शराब और जुए के समान बताती है[६]। सामाजिक जीवन में स्त्रियो का भाग कम हो गया था। विवाह में आशिक स्वतन्त्रता विद्यमान थी। परिपक्व अवस्था होने पर विवाह होता था[७]। अभिजात वर्ग एव पुरोहितो में

---

१ ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ५८, १९३८ काशी

२ भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद पृ० ९२, १९४१ बनारस

३ राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ७३, १९५० बम्बई

४ ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ३२३

५ "Women participation in Vedic Sacrifices was thus a real and not a formal one, they enjoyed the same religious privileges as their husbands"
ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २३३-२३४, १९३९ बनारस

६ वेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृ० १६६, १९३१ प्रयाग

७ वेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ० १०३, १९३९ प्रयाग
ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४११, १९३८ काशी

अनेक विवाह करने की प्रथा थी। विधवा-विवाह मान्य था[1]। स्त्रियाँ वस्त्र रगने, कढाई, विडालाकरी अथवा डलिया बनाने आदि के व्यवसायो में सहायता देती थी[2]। स्त्री-धन का अभाव था। धार्मिक स्वप्नो और विशेषाधिकारो में भी अन्तर आ गया था। कुछ यज्ञ, यथा, रुद्र यज्ञ तथा सीता यज्ञ केवल स्त्रियो द्वारा ही सम्पादित होते थे। जब पति यात्रा को चला जाता था वे बलि-अग्नि की उपासना करती थीं। सस्कृत परिवारो में स्त्रियाँ प्रात और साय पूजा की प्रार्थनाओ का पाठ करती थी, किंतु बलिदान के अनेक ऐसे कार्य जो केवल स्त्रियाँ ही कर सकती थी, कालान्तर में पुरुषो द्वारा सम्पादित होने लगे[3]।

उपनिषदो के युग में नारी में सहशिक्षा का प्रचार बराबर बना रहा। स्त्री विद्यार्थिनी दो प्रकार की होती थी—ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाह। ब्रह्मवादिनी जीवनपर्यन्त धर्मशास्त्र एवम् दर्शन का स्वाध्याय करती रहती थी, दूसरे वर्ग की स्त्रियाँ ८, ९ वर्ष तक सस्कारों की विधि, तथा वैदिक ऋचाओ एवम् मत्रो की उच्चारण विधि सीख कर गृहस्थ जीवन को अपनातीं। उपनिषद्-युग में दार्शनिको की सभा में विद्वतापूर्ण विषयो पर भाषण दे सकने की क्षमता रखने वाली गार्गी, एव ब्रह्म के उच्चतम ज्ञान का साक्षात्कार करने वाली मैत्रेयी के समान विदुषी नारियो के उदाहरण उपलब्ध हैं[4]।

यद्यपि अब भी समाज में नारी को समादरणीय स्थान प्राप्त था, उसे पुरुष की समानता प्राप्त थी। विवाह में पति निर्वाचन की स्वतन्त्रता थी। बाल-विवाह का प्रचार नहीं था, बौद्धिकता में भी वह पुरुषो से हीन न थी, तो भी इस युग मे उसकी अवस्था में क्रमिक ह्रास होने लगा था और कन्या का जन्म दुख का कारण समझा जाने लगा था। नारी की स्थिति के पतन का वपन-काल उत्तर-वैदिक युग ही माना जाए जो अनुचित न होगा।

सूत्रकाल

इस काल में नारी की स्थिति में उत्तरवैदिक युग से भी अधिक अपकर्ष हुआ। राजनीतिक शान्ति और आर्थिक निश्चिन्तता के इस युग में आर्यो का ध्यान साहित्य के परिष्करण की ओर गया। ब्राह्मण-काल में वैदिक साहित्य अधिक

---

१ बेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ० १०७, १९३१ प्रयाग
ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४११, १९३८ काशी

२. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ९७, १९५० बम्बई

३. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४११, १९३८ बनारस

४ राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १११, १९५० बम्बई
ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेश पृ० १४

विस्तृत एव जटिल हो गया था। उसकी शाखाएँ प्रशाखाएँ एव उपशाखाएँ विकसित हो गयी थी। तत्कालीन जनभाषा और वैदिक ऋचाओ की भाषा के अन्तर में वृद्धि होती जा रही थी। वैदिक कर्मकाण्डो की जटिलता भी बढ गयी थी। उनका सम्यक् रीति से सम्पादन पूर्ण ज्ञाता ही कर सकता था। वैदिक काल के सरल कर्मकाण्ड का अध्ययन स्त्रियाँ १६-१७ वर्ष की विवाह अवस्था तक कर लेती थी[1]। इस युग के विस्तृत कर्मकाण्ड के वृहत् साहित्य का अध्ययन तभी सम्भव था जब स्त्री २२ या २४ वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहती। देश की समृद्धि और आर्थिक उन्नति के साथ विलासिता की प्रवृत्ति बलवती हो रही थी। अत स्त्रियो के उपनयन और शिक्षा पर आघात पहुँचा।

आर्यों की दस्यु-विजय के उपरान्त ही अनुलोम विवाह प्रचलित हो गये थे। इन अनार्य स्त्रियों की विद्यमानता ने नारी के पतन में योग दिया। अनार्य स्त्री सस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव में धार्मिक प्रक्रियाओं में भाग लेने में असमर्थ थी। उसे धार्मिक प्रथाओ के लिए अवैधानिक घोषित कर दिया गया था, किन्तु आर्य अपनी विशेषप्रिय अनार्य पत्नी को ही यज्ञ में भी सहयोगिनी बनाना चाहता होगा। अत इसके समाधान में समस्त स्त्री जाति को ही धार्मिक प्रक्रियाओ की अनाधिकारिणी घोषित कर दिया गया[2]। सूत्र काल तक आते-आते गण-राज्यो का सरल युग समाप्त हो चुका था। राज-दरबारो की शोभा और ऐश्वर्य में अभिवृद्धि हुई। राजाओ के अन्त पुर के आकार और रानियों की सख्या में भी वृद्धि स्वाभाविक ही थी। अभिजातवर्ग ने उनका ही अनुकरण किया। बहु-विवाह की इस प्रचलित प्रथा के कारण स्त्रियो की स्थिति को बहुत आघात पहुँचा। यद्यपि विद्वान् स्त्रियो को धार्मिक विशेषाधिकारो से वचित करने के पक्ष मे थे, किन्तु उन्हे यज्ञादि धार्मिक प्रक्रियाओं की अनाधिकारिणी घोषित करने का मत समाज ने मान्य नही स्थिर किया। इस युग के प्रथम चरण में स्त्रियो ने वैदिक-शिक्षा में विशेषता प्राप्त की, किन्तु अधिकाश स्त्रियो के विवाह समय ही उपनयन की औपचारिकता का सम्पादन हो जाता था[3]।

महाकाव्यकाल : ५०० ई० पू०

महाभारतकाल तक स्त्रियो की शिक्षा व आध्यात्मिक उन्नति में क्रमश

---

१ अल्टेकर–पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २३, १९३८ बनारस

२ अल्टेकर–पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २४३, १९३८ बनारस

राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १६६, १९५० बम्बई

३ अल्टेकर–आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ पृ० ३४ . ग्रेट विमेन आफ इडिया में सग्रहीत

ह्रास होने पर भी उनको समाज में प्रतिष्ठित स्थान उपलब्ध था[1]। नारीत्व का उच्चतम आदर्श समाज के समक्ष था। भारतीय मनोवृत्ति म दो भिन्न रूपों, प्रबल विरक्ति एव उत्कट अनुरक्ति के मिश्रित नारी विषयक दो विरोधी मत प्रचलित हो गए। महाभारत में नारी के ये दो रूप स्पष्ट हैं —एक ओर नारी को अनन्त गौरव और सम्मान की पात्री बताया गया, दूसरी ओर उन्हे व्यभिचारिणी, पाप और सब दोषो का मूल बताया गया है[2]।

इस काल में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। नैतिकता के मापदण्ड परिवर्तित हो गए थे। स्त्री के भी कई पति होते थे। स्त्री के लिए पातिव्रत ही सर्वोच्च धर्म, पूजा, उपासना एव स्वर्गप्राप्ति का साधन था[3]। यद्यपि सिद्धान्त रूप से मनु द्वारा स्त्रियाँ धार्मिक प्रक्रियाओ व यज्ञादि में भाग लेने की अनधिकारिणी घोषित की गई थी किन्तु रामायण और महाभारत दोनो में ही स्त्रियाँ उपासना, यज्ञादि में सहयोग प्रदान करती रही। रामायण में कौशल्या अकेले ही स्वस्ति यज्ञ करती हैं, तारा सावित्री यज्ञ करती हैं[4]।

बौद्धकाल

वैदिक-धर्म के विस्तृत कर्मकाड बाह्याडम्बर की जटिलता, तथाकथित पवित्रता एव ऊच-नीच की प्रतिक्रिया में बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। नारी, जो

---

१ हेमचन्द्र राय चौधरी–महाभारत एण्ड इट्स कल्चर, कल्चरल हैरिटेज आफ इडिया भाग ११ पृ० १०३ कलकत्ता

२ 'कुलीन, रूपवती और जीवित पति वाली स्त्रियां मर्यादा में नहीं रहती यह उनका पहला दोष है। स्त्रियों से बढकर कोई पापी नहीं है, क्योंकि स्त्रियां सब दोषों का मूल हैं।'

अनु० द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी—हिन्दी महाभारत . अनुशासन पर्व

'स्त्रियाँ लक्ष्मी स्वरूपिणी हैं अतः धनकामी व्यक्तियों को स्त्रियो का सत्कार करना चाहिए।'–वही—पृ० १९०

स्त्री को किसी भी अवस्था में स्वतत्र नही रहना चाहिए।

वही—पृ० १९०

३. स्त्रियो को कोई भी यज्ञ, क्रिया, श्राद्ध, उपवास आदि करने की न तो आवश्यकता ही है और न अधिकार ही है। अपने पति की सेवा करना ही उनका धर्म है। पति सेवा ही उसके लिए स्वर्ग का साधन है।

अनु० द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी—हिन्दी महाभारत खंड ६ पृ० १८९-९०, १९३० इलाहाबाद

४. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन, पृ० २३५ १९३८ बनारस

हारानचन्द्र—सोशल लाइफ इन एशियेन्ट इडिया

चकलादार—कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया भाग ३, पृ० २०३ कलकत्ता

पुरुष के अत्याचारो के बोझ से दबी जा रही थी, शास्त्रकारो ने जिसे व्यक्तिगत आराधना का भी अधिकार नही दिया था, उसे भी बौद्धकाल में सवेदना का संदेश मिला[1]।

समग्र मानवता के उपासक बुद्ध ने इस सत्य पर बल दिया कि पुरुष के समान स्त्री भी अपने पूर्व जन्म के सद्-असद् कर्मों के फल भोगती है। उसे भविष्य के लिए अपने कर्मों पर ही निर्भर रहना चाहिए। पुत्र द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है इस कथन का उन्होने विरोध किया, अत पुत्र की तुलना में अत्यन्त दीन और दयनीय पुत्री की स्थिति में अन्तर हुआ। ब्राह्मणो के कर्मकाण्डो में केवल पुत्रवती सधवा ही भाग ले सकती थी। बुद्ध द्वारा इस बात के खडन से विधवाओ की हेय दशा में अन्तर आया। धर्मशास्त्रो ने स्त्रियो के लिए विवाह अनिवार्य माना था, किन्तु बौद्धधर्म में यह केवल एक शृखला ही मानी गई। बौद्ध-धर्म का द्वार विवाहित, अविवाहित, विधवा, वन्ध्या, वेश्या और पतिता सभी के लिए उन्मुक्त था। दीक्षा ले लेने के उपरान्त उनके प्रति किसी प्रकार की अश्रद्धा अथवा अनादर की भावना नही रह जाती थी।

किन्तु यह एक विचित्र बात है कि यद्यपि बौद्ध धर्म ने अपने सर्वजन-हिताय वाले सिद्धान्त से नारी की स्थिति में सुधार किया, तो भी भिक्षु सस्थाओ में उनका स्थान अपेक्षाकृत हेय रहा[2]। उनके ऊपर अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए। वयस्क एव योग्य भिक्षुणी को भी अपने से लघु भिक्षु के समक्ष झुक कर नमस्कार करना पडता था। एक भिक्षुणी किसी भी परिस्थिति में किसी भिक्षु की अवज्ञा नही कर सकती थी। अर्धमासोपरान्त होने वाले उपास्या एव अवेद के लिए भिक्षुणी को एक भिक्षु से ही निर्देश लेने पडते थे। वस्तुत अनधिकारियो द्वारा दुरुपयोग के भय से पहले भगवान् बुद्ध भी स्त्रियो को सघ में दीक्षा देने के विरुद्ध थे। साथ ही प्राणीमात्र की एकता को मूलमन्त्र मानने के कारण उन्हें बौद्ध धर्म का द्वार स्त्रियो के लिए भी प्रशस्त करना पडा। किन्तु स्त्री पुरुष के ससर्ग से उत्पन्न दोपो के निराकरण के लिए उन्हें इतने कडे नियम बनाने पडे[3]।

भगवान् बुद्ध द्वारा प्रचलित इस विराग-प्रधान धर्म में आत्मिक उन्नति के चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर लेने वाली नारियाँ ही प्रसिद्धि पा सकीं। पाँच सौ बाइस पदो की छोटी सी पुस्तक थेरीगाथा से तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति पर प्रकाश पडता है। इतिहासो के वृत्त से ज्ञात होता है कि नारी का पुनर्विवाह होता था। थेरीगाथा में वर्णित थेरियो के जीवन बौद्ध युग के समाज में नारी की हेय, करुण स्थिति से अवगत कराते हैं। नारी पत्नी अथवा गृह की रानी न होकर

---

१ रामधारी सिंह दिनकर—सस्कृति के चार अध्याय
पृ० १५५, १९५६ दिल्ली

२ ए० एल० बाशम—द वडर दैट वाज इडिया, पृ० १७७, १९५४ लदन

३ राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २५३, १९५०

केवल विलास का उपकरण मात्र थी। सब परिजनो की सेवा-परिचर्या करके भी वह जीवन निर्वाह में अशक्य थी। वह उपेक्षा और अनादर के ही अक में पलती थी। इन बौद्ध भिक्षुणियो में अधिकाश ने अपने यौवन के स्वर्णिम विहान में ही ससार के प्रलाभनो का परित्याग कर, तप एव विरागमय जीवन को श्रेयष्कर समझा था। इस सबध में दत्ता, अनुपमा सुमेधा और जयन्ती के नाम उल्लेखनीय हैं। समाज के सभी वर्गों की नारियो ने सर्वजन-सुलभ बौद्ध धर्म का आश्रय लेकर अपने दुखो को बिसराया। वैभव के स्वप्निल प्रागण राजप्रसाद, शृगार की रुनझुन से झकरित वेश्यालय दारिद्रय के रौरव, और पारिवारिक प्रपीडन से निष्कृति पाकर नारियो ने बौद्ध धर्म की शरण ली। सामाजिक दृष्टिविन्दु से अस्पृश्य नारियो को भी अभ्युत्थान का अवसर मिला[1]। बौद्ध धर्म तप और विराग पर अधिक बल देता है, अत इसकी धार्मिक पुस्तक जातको मे स्त्री-निन्दा के अनेक कथन उपलब्ध हैं[2]। बौद्ध धर्म के सघो में नारी का प्रवेश युग की नैतिकता के लिए घातक सिद्ध हुआ, इसका सविस्तार वर्णन यहाँ अपेक्षित नही है।

जैन-काल

जिन भगवान् ने हिंसा दावानल में दग्ध विश्व के समस्त प्राणियो को अहिंसा व साम्य का उपदेश दिया। जैन मतावलम्बियो में नारी के माता रूप के लिए अपरिसीम श्रद्धा और आदर की भावना विद्यमान थी। उनके तीर्थंकरों में उन्नीसवी 'मल्लीनाथ' थी। उसके जीवनवृत्त से ज्ञात होता है कि उस समय भी उच्चवर्ग की नारी में शिक्षा का अभाव न था। जैन धर्म ने भी पातिव्रत तथा पत्नी की एकनिष्ठा को बहुत महत्त्व दिया। जैन-साहित्य में बहुत-सी भिक्षुणियो एव श्राविकाओ का उल्लेख मिलता है, जिन्होने जैन धर्म और साहित्य की उन्नति में क्रियात्मक योग दिया। स्थूलभद्र की सात बहिनें यक्षादि एवम् याकिनी महत्तरा की रचना महत्त्वपूर्ण है। जैन-काल की नारी में उत्सर्ग और कर्तव्य पालन की भावना विद्यमान थी। केवल साहित्यिक एव धार्मिक क्षेत्र में ही नही प्रत्युत् राज्य-नीति और प्रशासन में भी स्त्रियाँ निपुण थी। राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय के

---

१ शकुन्तलाराव शास्त्री—विमेन इन वैदिक एज पृ० ६८, १९५४ बम्बई

२ 'स्त्रियाँ असाध्वी पापिनी होती हैं'

अनु० भदन्त आनन्द कौशल्यायन—जातक प्रथम खण्ड पृ० ३७०

असातमन्त्रजातक

स्त्रियों में काय प्रगल्भता, वाक प्रगल्भता मन प्रगल्भता होती है।

अडभूत जातक पृ० ३७८

स्त्रियाँ आए हुए क्रोध को रोक नहीं सकतीं, बडे से बड़े उपकारो को भूल जाती हैं। पृ० ३८७

पुर्नविवाहप्रथा पति और पुत्र तो बराबर मिल सकते हैं पर भाई नहीं।

उच्छग्रजातक पृ० ३९९

समय में अपने मृत पति के स्थान पर जक्कय बे नगर-खड की अधिकारिणी नियुक्त की गई[1]।

किन्तु इतना सब होते हुए भी, अन्य धार्मिक मतो के समान जैन धर्म भी नारी को काम का साधन, वासना का मूल समझ कर उसे त्याज्य बताता था। हमारी भारतीय सस्कृति में गृहस्थ धर्म स्पृहणीय कहा गया है, किन्तु बौद्ध और जैन दोनो धर्मों का यही विश्वास था कि मोक्ष के लिए सन्यास आवश्यक है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार तो नारी भिक्षुणी हो सकती थी, किन्तु दिगम्बर पन्थ वालो ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि मुक्ति नारियो के लिए नही है। उनके लिए सीमित धर्म का पालन ही श्रेयस्कर है, जिससे वह पुरुष का जन्म प्राप्त कर सकें, क्योकि मोक्ष-लाभ पुरुष-जन्म में ही सभव है[2]।

ईसवी शताब्दी से इस्लाम के साथ सम्पर्क तक नारी

नारी स्थिति सबधी उपर्युक्त सक्षिप्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसवी सन् के प्रारभ होने के समय, उपनयन के स्थगित हो जाने, विराग की भावना, बाल विवाह तथा विलासभावना के कारण नारी अपने पूर्व गौरव तथा मर्यादा से वचित हो चुकी थी। ईसवी शताब्दी के प्रारभिक काल में कन्याएँ १७-१८ वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रह सकती थी। बहु विवाह तथा असवर्ण विवाह ने सामाजिक व्यवस्था को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। विवाह-अवस्था कम कर देने के कारण स्त्रियो की शिक्षा एव सस्कृति को बहुत धक्का पहुँचा[3]। शारीरिक पवित्रता पर अधिक बल दिया गया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनसे आज्ञाकारिता की अपेक्षा की जाने लगी। सामाजिक जीवन मे भी उनका आदरणीय स्थान नही रह गया था। विलासी समाज मे नारी केवल काम एव उपभोग के उपकरण रूप में थी। अन्त पुर मे सुन्दरी स्त्रियो की सख्या बढ रही थी। सौन्दर्य पर अधिकार-स्थापन की स्पृहा ने अन्त पुर प्रथा को जन्म दे दिया था। वासना का उपकरण बनकर नारी स्वर्ण की शृङ्खलाओ की बन्दिनी-सी बन गई थी। उस समय के समाज में परदा प्रथा थी या नही इस पर स्वय अर्थशास्त्र की ही विरोधी सम्मितियाँ हैं[4]। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार

---

१ उमाकान्त प्रेमानन्दशाह—ग्रेट विमेन इन जैनिज्म। ग्रेट विमेन आफ इडिया में से पृ० २८४, १९५३ कलकत्ता

२ रामधारी सिंह दिनकर—सस्कृति के चार अध्याय, पृ० १४१, १९५६ दिल्ली

३ अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १८, १९३८ काशी

४ ए० एल० बाशम—द वन्डर दैट वाज इडिया पृ० १७९-८०, १९५४ लदन

तत्कालीन समाज में परदा उस रूप में नही था जिस रूप में आज है[1]। जवाहर-लाल नेहरु के अनुसार उच्च-वर्ग में स्त्रियो के पृथक्करण की प्रथा अवश्य थी किन्तु परदा प्रथा नही थी[2]। ईसवी शताब्दी के प्रारंभिक काल में कुछ विश्रुत स्त्री लेखिकाएँ भी हुई। शील भट्टारिका आदि प्रसिद्ध साहित्यकार हुई[3]। राजशेखर की पत्नी कवयित्री तथा आलोचिका थी[4]। शकराचार्य एव मडन मिश्र के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ की मध्यस्थ होने के उपयुक्त मडन मिश्र की पत्नी उभयभारती ही को माना गया[5]। किन्तु नवी शताब्दी से उच्च-शिक्षा केवल उच्च वर्ग में ही सीमित रह गई। उनकी संख्या उत्तरोत्तर कम ही होती गई[6]। स्त्रियो में सगीत आदि ललित-कलाओ का प्रचार था। राज-प्रासादो में ललित-कलाओ के शिक्षण के लिए सगीत-शालाएं होती थी। कालिदास के युग में स्त्रियां नृत्य-कला से भी अभिज्ञ होती थी[7]। धार्मिक क्षेत्र में उन्हे कोई विशेषाधिकार प्राप्त नही थे। स्त्रियो के समस्त सस्कार (विवाह को छोडकर) अमत्रक पहले ही होने लगे थे[8]। अब उप-नयन की औपचारिकता का भी अन्त हो गया था। वैदिक-प्रक्रियाओ का विधि-पूर्वक सपादन करने वाली, वैदिक ऋचाओ की रचनाकर्त्री नारी को मत्रो के

१ 'शकुन्तला जब दुष्यन्त के दरबार में जाती है तब वह अवगुण्ठनवती है और अपने को पहचनवाने के लिए उसे अवगुंठन हटाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भी स्त्रियों के रहने का स्थान शुद्धात अन्त पुर अवरोध आदि कहलाता था। इन नामो में वही ध्वनि है, पर जिस रूप में पर्दा उत्तर भारत में आज है, वैसा ही पहले भी रहा होगा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।'—भगवतशरण उपाध्याय—कालिदासयुगीन भारत पृ० १२७-२८, १९५६ इलाहाबाद।

२ जवाहरलाल नेहरु—डिसकवरी आफ इडिया, पृ० २८१, १९४५ कलकत्ता

३. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिंदू सिविलिजेशन, पृ० २८१, १९३८

४ ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ विमेन इन सोशल लाइफ ग्रेड विमेन आफ इडिया, पृ० ४२, १९५३

५ अतुलानन्द—द पोजीशन आफ विमेन इन एशियट इडिया कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया भाग ३ में संग्रहीत पृ० २१८

६. ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ, ग्रेट विमेन आफ इडिया में सग्रहीत पृ० ४१

७ भगवतशरण उपाध्याय—कालिदासयुगीन भारत, पृ० १४५, १९५५ इलाहाबाद

८ राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १६६, १९५० बम्बई

उच्चारण का भी अधिकार न रहा, और वह शूद्र के स्तर पर आ गई[1]। शासक वर्ग मे स्त्रियो को प्रशासकीय और सैनिक शिक्षा दी जाती थी। राजपूत कुमारियाँ अस्त्र-शस्त्र सचालन मे निपुण होती थी, एव अवसर पडने पर सैन्य सचालन व प्रशासन दोनो ही कार्य योग्यतापूर्वक कर सकती थी। चालुक्यवशीय विजयभट्टारिका, लक्ष्मीदेवी, अन्नादेवी, मलियादेवी के नाम उल्लेखनीय हैं[2]।

बौद्ध तथा जैन साहित्य में कही सती प्रथा का उल्लेख नही है। महाभारत मे, जिसका वर्तमान रूप ईसा की तीसरी शताब्दी का है, केवल एक माद्री के सती होने का उदाहरण मिलता है[3]। प्राचीनकाल में सती प्रथा के उदाहरण न्यून हैं। मानव धर्म के विधायक मनु ने विधवा स्त्रियो के आचारो का निर्देश किया है। उन्होने उसे तप, विराग, प्रार्थना एव प्रायश्चितपूर्ण जीवन व्यतीत करना उचित बताया है। कालान्तर में पवित्रता और विराग की भावना के कारण नियोग एव विधवा विवाह की प्रथा निन्दनीय समझी जाने लगी थी। कालिदास के युग में भी विधवाओ का जीवन निष्कासन, अपमान एव वेदना का जीवन था। मागलिक कार्यो में उनका सम्पर्क वर्जित था[४]। कालिदास के नाटको में सती-प्रथा का उल्लेख मिलता है[५]। धर्मशास्त्र के प्रारम्भिक लेखक बालविधवा के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखते थे। ६०० ईसवी से विधवा-विवाह की प्रथा समाप्त हो गयी। ११०० ई० से बाल-विधवा के विवाह का भी निषेध हो गया था[६]। ४०० ई० से सघर्षप्रिय क्षत्रिय-जाति में यह प्रथा अधिक प्रचलित हो गयी थी। मेघातिथि, विराट के अनुसार सती निकृष्ट कोटि का धर्म है[७]। अभाग्यवश उदार सुधारको के द्वारा सती प्रथा का यह विरोध सफल न हो सका, तथा राजपूत जाति एव उनके अनुकरण पर प्रतिष्ठा का चिन्ह समझ कर उच्च वर्ग में यह प्रथा लोकप्रिय हो गई।

---

१ राधाकुमुद और रमेशचन्द्र मजुमदार—द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी सामाजिक जीवन पृ० ५६४

२ अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ ग्रेट विमेन आफ इडिया पृ० ४२-४३

३ सी वेंडर—विमेन इन एशिएन्ट इडिया पृ० ४६५, लदन १६२५

४ अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २३४, १६३८ बनारस

५ भगवतशरण उपाध्याय—कालिदासयुगीन भारत पृ० १२७, १६५५ इलाहाबाद

६ ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १८१

७ ए० एम० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १४५, १६३८ बनारस

अपकर्ष एव पतन के इस युग में सपत्ति सबधी अधिकारो के क्षेत्र में अवश्य प्रगति हुई। वैदिक-युग के पितृसत्ता-प्रधान परम्परा में सिद्धान्त रूप से दम्पति सम्पत्ति एव गृह के सम्मिलित स्वामी थे, किन्तु स्त्री धन की सीमा सकीर्ण थी। विधवा को उत्तराधिकार नही था। विष्णु स्मृति (१०० ईसवी) मे विधवा के उत्तराधिकार का समर्थन हुआ। विष्णु और याज्ञवल्क्य दोनो ने ही विधवा के उत्तराधिकार का पक्ष ग्रहण किया[1]। स्त्रीधन की परिभाषा हुई। स्मृतिकाल (६०० ईसवी) स्त्री धन का क्षेत्र विस्तृत हुआ। स्मृतिकारो ने विधवा के उत्तराधिकार की सार्वदेशिक स्वीकृति के लिए बल दिया। इसके मुख्य समर्थक बृहस्पति, प्रजापति और कात्यायन थे[2]। विज्ञानेश्वर ने स्त्री धन की व्यापकता पर बल दिया और विधवा के उत्तराधिकार के इतने प्रबल समर्थन के उपरान्त ११५० ई० में गुजरात और १२०० ई० मे सम्पूर्ण भारत में विधवा का उत्तराधिकार मान्य हो गया। भाई के अभाव में बहिन का उत्तराधिकार पहले से ही मान्य था।

सच तो यह है कि ६०० ईसवी से ही नारी की सामान्य स्थिति मे अधिकाधिक पतन प्रारम्भ हो गया था। राजाओ के अन्त पुर सुन्दर स्त्रियो से परिपूर्ण थे। वासना और विलास की समाजमें प्रधानता होती जा रही थी। राजपूतो में तो नारी विजय की अनुगामिनी ही बन गयी थी।

संस्कृतकाव्य की नारी भावना

कालिदास, अश्वघोष, माघ आदि सस्कृत काव्यकारो ने नारी के शास्त्रीय आदर्श को ही मान्य स्वीकार किया है। अत उनकी नारी मे अनन्त ममता, त्याग, वात्सल्य, धरित्री-सी सहनशीलता, निस्पृह सेवाभाव और मौन आज्ञाकारिता आदि विशेषताओ का ही विकास हुआ है। नारी का सत्तापूर्ण रूप कही दृष्टिगत नहीं होता। इन काव्यो में नारी सुकुमार, परिश्रमी, कोमल और पराधीन है। उसकी चरम महत्ता गृहिणी रूप में, और मातृत्व के विकास मे ही है। वह प्रेम करने के लिए बनी है। नारी कवयित्री, दार्शनिक दिग्गज, विदुषी ब्रह्मवादिनी हो सकती है। किन्तु अपने युग की प्रतिक्रियावादी परम्पराओ में पोषित न होने के कारण सस्कृत काव्यकारो ने भी कही उसका सभा में वाक्चातुर्य,

---

१ ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ प्रेट विमेन आफ इण्डिया. पृ० ३६, १९५३ कलकत्ता

२ ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ प्रेट विमेन आफ इण्डिया· पृ० ४५, कलकत्ता

प्रतिमा-प्रदर्शन नहीं दिखलाया है[1]। कालिदास की नारी में सहिष्णुता की सजीव भावना है, वह पत्नी, मन्त्रिणी एकान्त की सखी और प्रिय शिष्या है[2]।

मन्त्रयान, वज्रयान और सहजयान मेनारी

अनुदान और जागीर की उपलब्धि से धन का केन्द्र बन जाने से बौद्ध मठो में कादम्ब और कामिनी का उन्मुक्त विलास होने लगा था। त्याग और तप प्रधान धर्म की वास्तविकता को भूल कर सन्यासी वर्ग, भोग को स्पृहणीय समझ कर, मन्त्राचार और योग की आड में सुख भोगने लगा[3]। वैष्णवो और हिन्दी साहित्य पर भी सहजिया सम्प्रदाय ने अपना प्रभाव प्रदर्शित किया[4]। वज्रयान ने शून्यता को प्रज्ञा और करुणा को उपाय की सज्ञा दे दी। उपाय का प्रतीक स्वय साधक होता और प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व कोई स्त्री करती जो साधक की महामुद्रा कहलाती।

मानव सभ्यता के स्वर्ण-विहान में भारतीय नारी के जीवन में सुख और शान्ति का आलोक बिखरा हुआ था। वैदिक युग की नारी को जीवन के सभी क्षेत्रो में पुरुषो के समान अधिकार उपलब्ध थे। धार्मिक प्रक्रियाओ और कार्यों की विधात्री स्वय नारी ही थी। ब्रह्मज्ञान द्वारा पराविद्या की उपलब्धि कर

---

१. "Her claim to recognition lies through her service of her lord and through her being the mother of a good son, wise or valient like Rama, Shanker, Chaitanya, on the heroic Bharat as the case mav be This is the attitude even of romantic love stories"
शिवप्रसाद भट्टाचार्य—'ग्रेट विमेन इन सस्कृत क्लासिज्म' पृ० २५२
ग्रेट विमेन आफ इडिया में सग्रहीत

२ 'गृहिणी सचिव सखीमित्र, प्रिय, शिष्या ललिते कला विधौ'
भगवतशरण उपाध्याय—कालिदास और उनका युग
पृ० ८१, १९५५ इलाहाबाद

३ हीन से महान्, महान् से मत्र, और मत्र से वज्र तथा वज्र से सहज यह प्रक्रिया ही बनाती है कि सयम और तपस्या से लोग आजिज आ गए थे, और वे धीरे-धीरे भोगवाद का समर्थन ढूढ रहे थे।
रामधारी सिंह दिनकर—सस्कृति के चार अध्याय पृ० १९३,
१९५६ दिल्ली

४ सहजिया सम्प्रदाय केवल बौद्धो तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि यह वैष्णव धर्म में भी आया, और वैष्णव धर्म में परकीयावाद तथा अन्य विशेषताएँ उसी की देन हैं।
रामधारी सिंह दिनकर—सस्कृति के चार अध्याय पृ० १९५

अविवाहित रह कर आध्यात्मिक हित-साधन भी कर सकती थी। वस्तुत वह गृह-कक्ष की शोभा, विलास का उपकरण मात्र न होकर सुख-दुख की समभागिनी पत्नी थी। परवर्ती युग की नारी के समान वह अशक्त और परमुखापेक्षी न होकर व्यक्तित्वमयी थी। जैसा कि इसी अध्याय में बताया जा चुका है, नारी को अपना जीवन साथी निर्वाचित करने का अधिकार उपलब्ध था। उपनयन के उपरान्त वेदो का अध्ययन कर परिपक्व बुद्धि व सतुलित दृष्टिकोण को लेकर वह अपने गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ करती। नव-गृह मे आदर और मगल-कामनाएँ उसका स्वागत करतीं, और वह पति के साथ गृह की सम्मिलित स्वामित्व प्राप्त करती। युग ने करवट ली, इतिहास के पृष्ठो पर विभिन्न जातियो के उत्कर्ष-अपकर्ष की कहानी लिख गयी। इन परिवर्तित होती हुई परिस्थितियो से उद्भूत कारणो-अनार्यो का सम्पर्क, आर्थिक समृद्धि शिक्षा का अभाव, और उपनयन का स्थगित हो जाना—आदि . ने उसकी प्रगति में अवरोध प्रस्तुत किए। अवरोध प्रथा के आरम्भ, शिक्षा के अभाव नें कोमल नारी को पराश्रयी बना दिया। उसकी सहज समर्पण और सेवा की भावना को दासत्व की स्वीकृति मानकर उसे जीवन किसी भी अवस्था में स्वतत्र रहने का निषेध किया। ज्ञान के आलोक के अभाव में जीवन के ककरीले-पथरीले मार्ग, ऊँची-नीची पगडडियो पर जब उसके शृखला-बद्ध पग डगमगाए, अभिभावक और सरक्षक कही जाने वाली पुरुष जाति ने उससे संवेदना के दो शब्द भी नही कहे। प्रत्युत् उसकी स्वभावगत् सुकुमारता को दुर्बलता की सज्ञा दी। शिक्षा और सस्कृति के अभाव में नारी मे स्वय ही हीनता की भावना ने जड पकड ली थी। पुत्री-जन्म दहेज-प्रथा, विवाह विषयक अन्य कठिनाइयो के कारण एक अभिशाप था। विवेकशील कवि अब भी यही मत रखते थे 'कन्या कुलस्य जीवितम्'। पुरुष के अत्याचारो, सामाजिक प्रतिबन्धो के भार से दबी हुई नारी का स्थान केवल वासना के एक उपकरण के रूप मे था। ६०० ईसवी मे पूरे भारतीय समाज के ही चरित्र में पतन स्पष्ट दृष्टिगत होने लगा था। राजनीतिक सुरक्षा, आर्थिक समृद्धि और वैभव के उत्कर्ष के होते हुए भी समाज का कोई आदर्श नही रह गया था। नैतिकता के बन्धन शिथिल हो गए थे। अमर्यादित समाज के वैभव-विलासमय वातावरण में नारी के प्रति दृष्टि-कोण मे विलासिता की प्रधानता स्वाभाविक ही था।

: २ :

आलोच्यकालीन जीवन और नारी

इस्लाम के आक्रमण-काल का भारत

पाँच शताब्दियो से अधिक तोरमण से महमूद गज़नवी के आक्रमण तक भारत वाह्य आक्रमणो से सुरक्षित था। शाति और सुरक्षा की मादक क्रोड मे स्वभावत ही भारतीय जनसाधारण में निश्चिन्त अकर्मण्यता की भावना व्याप्त हो गई थी। आपत्तिकाल में विष्णु-पुराण (१०० ई०) में समग्र भारतवर्ष की अखण्डता की जो महिमा गाई गई थी उसे भारतीयो ने विस्मृत कर दिया था। अन्य देशो के साथ विचारो के आदान-प्रदान न होने के कारण वाह्य आक्रमणो के अभाव में भारतीयो में सकीर्णता, अनुदारता तथा मिथ्याभिमान की भावना आ गई थी। वाह्य ससार की गतिविधि से अपरिचित भारत के विकास की गति अवरुद्ध हो गई थी। आन्तरिक सुख और समृद्धि के मध्य विलास की प्रवृत्ति को मान्यता मिल रही थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जीवन के सभी क्षेत्रो में ६०० ईसवी से पतन और अपकर्ष का क्रम चल रहा था।

ऐसे अगतिशील समाज में पूर्वयुग की मान्यताओ का अक्षरश पालन होने लगा था। छुआछूत और कर्मकाण्ड लोकप्रिय हो रहे थे। समाज में नैतिकता के मान उपेक्षणीय थे। धर्म के क्षेत्र मे गुह्य समाज की उपासना-विधि से पचम-कार ग्राह्य थे। उनके अनुसार नारी विलास-कामनापूर्ति का साधन रह गई थी। धर्म का पुनरुद्धार कर शकराचार्य (८ वी शताब्दी) द्वारा स्थापित उपासना के महत् केन्द्र अपनी अतिशय समृद्धि में विलास और व्यभिचार का केन्द्र वन गए थे। देवदासी प्रथा की धार्मिक मान्यता के कारण देव मन्दिर नूपुरों की रुनझुन में मधुर विलास की तन्द्रा लेकर भक्ति का उपहास कर रहे थे। क्षेमेन्द्र (११ वी शताब्दी) की कृतियाँ 'समय-मात्रिका' और कुट्टनी-मित्तम, तत्कालीन समाज के नैतिक अपकर्ष और भोग-परक मनोवृत्ति का आभास देती हैं। पाँच शताब्दियो में एकत्रित धनराशि से भारत समृद्ध और सम्पन्न था किन्तु समाज में आर्थिक असमानता विद्यमान थी। भारत के समस्त राज्य अर्ध-सैनिक आधार पर सगठित थे। राजनीतिक दृष्टि से देश में विघटन था। व्यक्तिवाद की भावना से पूर्ण, ब्रह्म की उपासना करने वाले, खण्ड राज्यो के स्वामी वाह्य शक्ति का सामूहिक प्रति-रोध करने मे असमर्थ थे। योरुप के मध्ययुगीन सामन्तो के समान इनके जीवन का मुख्य विषय युद्ध और प्रेम था। वलशाली, शक्ति प्रयोग द्वारा अपनी अभीप्सित सुन्दरी को हस्तगत कर लेता था। उस समय समग्र आर्यावर्त की स्पृह-

णाय भावना सघशक्ति का अभाव था।

साहित्य के क्षेत्र में भी भावो की मार्मिकता का स्थान भाषा की कृत्रिमता, पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने ले लिया था। बाण के काव्य में भी पूर्ववर्त्ती कवियो के समान भावो का परिष्कार नही दृष्टिगत होता। युग की मुख्य प्रवृत्ति विलासिता, खण्ड राज्यो के उत्तरदायित्वहीन नरेशो के राजमन्दिरो की शृगार-रस-मयी काम-लीला तत्कालीन साहित्य में प्रतिबिम्बित हुई है। भवन-निर्माण कला में भी स्त्रियो की अनावृत प्रतिमाओं का निर्माण विलासिता की प्रवृत्ति की ओर सकेत कर रही थी।

इन्हीं परिस्थितियो के मध्य भारत का इस्लाम के साथ सपर्क हुआ। अरब और भारत के व्यापारिक सबध बहुत पहले से ही थे। ७१२ ई० में पहला जहाजी बेड़ा आया, पुन ७१२ व ७२५ में क्रमश मुहम्मद बिन कासिम और उम्मया द्वारा आक्रमण हुए। नागभट्ट प्रथम द्वारा ७२६ ई० मे अपने नवीन प्रयास में पराजित होने पर, कूच विजय की चेष्टा को छोड कर, २७५ वर्ष तक भारत इस्लाम के आक्रमणो से सुरक्षित रहा। इन तीन शतको में भारतवासी पुन निश्चिन्त विलास में व्यस्त हो गए। खण्डराज्यो के व्यक्तिगत वैमनस्य शत्रुता में परिणत हो रहे थे। उनको ईर्ष्या-जर्जर दृष्टि भारत के क्षितिज पर छाए हुए प्रलय-पयोदो को देखने में असमर्थ रही। फलत, इस्लामी राज्यशक्ति के सरक्षक बन कर, महमूद ने काफिरो के देश को पदाक्रान्त किया। उनकी अन्ध धार्मिकता ने देव मन्दिरो में स्थापित धर्म-भावना के प्रतीक बुतो को ध्वस्त किया। प्लेग, दुर्भिक्ष के समान यह आक्रमण भी दैवी आपदाओ के रूप में आने लगे थे। ११६१ को तराइन के मैदान मे भारतीय स्वतत्रता आलोक की अन्तिम रश्मि भी गहन-कालिमा के अचल में प्रच्छन्न हो गई। इसके बाद का भारतीय इतिहास इस्लामी शक्ति और भारतीय नरेशो के सघर्ष तथा उभय-पक्ष की विजयाविजय का इतिहास है। इतिहास के इस सामान्य पक्ष की पुनरावृत्ति करना यहाँ आवश्यक नही प्रतीत होता है।

आलोच्यकाल का राजनीतिक जीवन : १५०० से १७५० ई०

आलोच्यकाल के प्रारम्भ में दिल्ली के साम्राज्य पर लोदी वंश का शासन था। १५२६ में तैमूर के वशज जलालुद्दीन बाबर ने इब्राहीम लोदी को पराजित कर मुग़ल-साम्राज्य की स्थापना की। उसका पुत्र हुमायू (१५३०–४०) शेर खा द्वारा पराजित हुआ, और १५४०–५५ ई० तक दिल्ली सूरवंश के आधिपत्य मे रही। १५५६ में पुन जय-पराजय का चक्र चला, और विजयलक्ष्मी ने मुग़लवशी जलालुद्दीन अकबर (१५५६–१६०५) का वरण किया। तदोपरान्त आलोच्यकाल की शेष शताब्दी मुगल साम्राज्य के उत्कर्ष और अपकर्ष की साक्षी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोच्ययुग का राजनीतिक जीवन वस्तुत मुगल शासन-काल की ही व्याख्या होगी। यद्यपि दिल्ली मे केन्द्रीय शक्ति मुगलो की थी, किन्तु इतस्तत विखरे हुए अन्य राज्य भी थे। बगाल, बिहार और उड़ीसा में अफ़ग़ानो

के स्वतन्त्र राज्य थे। राजस्थान तथा मध्यभारत में राजपूतो के छोटे-बड़े स्वतन्त्र राज्य थे। गुजरात, सिन्ध, दक्षिण में खानदेश, अहमदनगर, बीदर बरार, बीजापुर एव गोलकुण्डा मे मुसलमानो के राज्य थे। मध्यप्रदेश में गोडवाना का शासक हिन्दू था, दक्षिण मे मराठो का अभ्युदय हो रहा था।

स्त्रियो का सहयोग

मुगलो से पूर्व सुलतानो के शासन मे उनकी बेगमों का कोई स्थान न था। उनकी राजनीति नारी के निर्देश एव परामर्श की अपेक्षा नही करती थी। रजियाबेगम उनकी इस नीति का अपवाद थी[1]। मुगल मध्य एशिया के निवासी थे। उनके पशुचारण के समाज में स्त्रियो का पूर्ण पृथक्करण अथवा पर्दा सम्भव न था। वे शाति और युद्ध की प्रत्येक समस्या से पुरुषो की ही भाति अभिज्ञ थी। फरगना के राज्य को हस्तगत करने में बाबर को अपनी मा और बहिन के परामर्श से बहुत लाभ हुआ था। मुग़ल सम्राट अपने परिवार की वयस्का महिलाओ और अपनी बहिनो के प्रति अत्यन्त आदर और श्रद्धा का भाव रखते थे। हुमायू ने अपने परिवार की स्त्रियो से मिलने के तीन दिवस नियत किए थे। बादशाह उनसे राजनीतिक विषयो पर भी परामर्श लेता था[2]। अकबर के समय भी सलीमा बेग़म, हमीदाबानू और माहम अनग का राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रहा। पूर्ववर्ती सम्राट् अपनी सहृदयता से गृह की महिलाओ की भावना का आदर करते थे। परवर्ती सम्राटो की प्रवृत्ति मे अन्तर आ गया। जहागीर (१६०५-१२२७) विलास और वैभव की रगीनी में अपने को आत्म-विस्मृत कर देना चाहता था। वह स्वय मदिरा की मादकता में पड़ा रहता था, जबकि साम्राज्य का शासन अपने सौन्दर्य द्वारा उसके हृदय को विजय कर लेने वाली नूरजहा करती थी[3]।

---

१ Although the Albari Turks had accepted a woman as their sovereign, yet ordinarily the fair sex was not expected to meddle with politics During the Turkish and Afgan period woman exercised but little influence in politics

रामप्रसाद त्रिपाठी—सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिस एडमिनिस्ट्रेशन इन इडिया पृ० १४८, १९३६ इलाहाबाद

२ "In the pre-Mughal period Haram played little part in public affairs, but after the arrival of Mughal it became a power in the state"

रामप्रसाद त्रिपाठी—सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन इन इडिया, पृ० १४८

३ आर० सी० मजूमदार एण्ड अदर्स—ऐन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० ४६६, १९५३ लन्दन

शाहजहा-काल (१६२८–१६५७) में उसकी पुत्री जहानारा का उसकी नीति-निर्धारण में भाग रहा। औरंगजेब (१६५८–१७०७) अपनी बहिन रोशन-आरा के मत को महत्त्व देता था। परवर्ती मुगल शासक स्वयं ही सामन्तो के हाथो की कठपुतली बने हुए थे। वह राजशक्ति-भार को वहन करने में असमर्थ थे। परवर्ती युग में सम्राटो का शासन अल्पकालीन और नाममात्र का होता था। अत: उसमें सरदारो, अमीरो का ही प्रभुत्व था। उनकी बेगमो में कोई ऐसी प्रभावशाली व राजनीतिज्ञा नही हुई जो परिस्थितियो की अनिश्चितता पर विजय पा सकतीं। इस वातावरण के मध्य स्त्रियो के सहयोग का कोई प्रश्न ही न था।

राजनीति को खिलौना समझने वाली मुस्लिम महिलाएँ

इन नारियों में नूरजहाँ का नाम अग्रगण्य है। इसने मुगल-राजनीतिक जीवन मे अपने प्रवेश से एक क्रान्ति प्रस्तुत की। फारस के एक सामान्य व्यापारी की पुत्री अपने विश्वमोहिन सौन्दर्य से जहागीर की पत्नी बनी, तथा सूक्ष्मदर्शिता और प्रत्युत्पन्नमति से साम्राज्य की भाग्यविधात्री[1]। शासन कार्य का नियन्त्रण अपने हाथ मे रख कर उसने अपने समर्थको के प्रबल दल का सगठन किया। कालान्तर मे उसे सभी अधिकार मिल गए, केवल नाममात्र को ही जहागीर सम्राट् रह गया था[2]। नूरजहाँ प्रथम और अन्तिम मुगल स्त्री थी, जिनका नाम सिक्को पर अकित हुआ था।

सोलहवें शतक की मुस्लिम नारियो में चाँदबीबी अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। वह अहमदनगर के हुसैनशाह की पुत्री और बीजापुर के अली आदिलशाह की पत्नी थी। पति के जीवन काल में ही वह उनकी परामर्शदात्री थी[3]। पति की हत्या के उपरात इब्राहीम आदिल की सरक्षिका नियुक्त की गई। अपने जीवन-काल में ही चादबीबी को शासन एव युद्ध सबंधी अनेक विषम परिस्थितियो का सामना करना पडा। अपने जीवन के इन उतार चढावो में वह सदैव जागरूक और प्रयत्न-शील रही। अपने ही एक दास के विश्वासघात के कारण मुगल सेना-नायको से लोहा लेने वाली वीरनारी का जीवन असफलता की करुण गाथा मात्र रह गया[4]।

साहिबा जी (सत्रहवीं शती) शाहजहा के दरबार के एक अमीर की पुत्री और काबुल के गवर्नर अमीर खा की स्त्री थी। अपने पति की मृत्यु के उपरात नया गवर्नर पहुचने के समय तक उसने अफगानो के समान दुर्दान्त और

---

१. जदुनाथ सरकार—नूरजहाँ एण्ड जहागीर : स्टडीज फ्राम इडिया, पृ० ४, १६१६ कलकत्ता

२ बर्नियर—ट्रैवल्स इन मुगल इण्डिया, कास्टेबल सम्पादित पृ० २७४-२७५

३. मुहम्मद वाहिद मिर्जा—ग्रेट मुस्लिम विमेन आफ इडिया, ग्रेट विमेन आफ इडिया में सकलित पृ० २६१, १६५३ कलकत्ता

४ एस० आर० शर्मा—मिर्रर इन इडिया पृ० ३६७, १६३७ बम्बई

सघर्षप्रिय जाति पर अपनी राजनीतिज्ञता से नियत्रण रखते हुए शासन किया[1]।

राजनीति के क्षेत्र में हिन्दू नारी

राजनीतिक पराभव के कारण सास्कृतिक दृष्टिबिन्दु से हिन्दू जाति अपकर्ष के गर्त में पडी थी। किन्तु उनकी महिलाओ में प्राजल आदर्श, शासन की योग्यता, युद्ध सचालन की क्षमता विद्यमान थी। उनमें कर्तव्य और शौर्य के लिए मोह था। मराठा जाति के उन्नायक शिवा जी की जननी जीजाबाई (१५९४—१६७६) कुशल राजनीतिज्ञा, प्रभावशाली शासिका के रूप में हमारे समक्ष नही आती। किन्तु महावीर शिवा को राजनीतिक सफलता का मूलमन्त्र देने वाली जीजाबाई ही थी। जीजाबाई के स्नेहमय, किन्तु सतर्क निरीक्षण में ही शिवा के चरित्र का निर्माण हुआ। शिवा ने शासन के सिद्धात शाह जी की पूना की जागीर की प्रबन्धक जीजावाई ही से सीखे थे[2]। राजा होते पर भी वही शिवा को राजनीतिकविषयो पर परामर्श देती, और अपनी सूक्ष्मदृष्टि से उसे निर्देश देती थी।

ताराबाई शिवा जी के पुत्र राजाराम की पत्नी थी। उसमे प्रतिभा और प्रशासकीय क्षमता थी। उसने राजनीति तथा युद्ध दोनो मे ही प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया था। उसके प्रयास के कारण राजाराम की मृत्यु के सात वर्ष उपरात तक औरगजेब जैसा प्रभावशाली शासक भी दक्षिण में साम्राज्य की स्थापना न कर सका[3]।

गोंडवाने के माडलिक साम्राज्य की स्वामिनी रानी दुर्गावती केवल जननी-जन्मभूमि हित आत्मोत्सर्ग करने वाली वीरागना ही नही थी, प्रत्युत शासन और राजनीति में भी निपुण थी। पति की मृत्यु के बाद उसने साहस और निपुणता से शासन किया। आसफ खा के आक्रमण का वीरता से प्रतिरोध कर उसने मुगल आक्रमणकारियो को हराया[4]। अपने सरक्षण-काल के १५, १६ वर्ष उपरान्त इस वीर शासिका ने शत्रु द्वारा अपमान के भय से स्वय तलवार द्वारा जीवनान्त कर लिया। मेवाड की रानी कर्णावती ने भी अपने पुत्र के कुप्रवन्ध के दोषो को दूर करने का प्रयास किया था। सुल्तान वहादुरशाह द्वारा आक्रमण करने पर राजपूत-स्वदेशाभिमान से प्रेरित हो कर इस

---

१ जदुनाथ सरकार—स्टडीज इन मुगल इडिया पृ० ११५, १९१८ फलकत्ता, मुहम्मद वाहिद मिर्जा—ग्रेट मुस्लिम विमेन आफ इडिया पृ० ३९४

२ कमलावाई देशपाण्डे—ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र, पृ० ३५७ ग्रेट विमेन आफ इडिया से सकलित

३ कमलावाई देशपाण्डे—ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र पृ० ३५८, १९५३ कलकत्ता

४ अबुलफजल—आइनेअकवरी ब्लीचमेन द्वारा अनुवादित भाग १, पृ० ४१९

वीर नारी ने उसका सामना किया। उसने बहादुरशाह के विरोध में राखी भेज कर हुमायूँ द्वारा सैनिक सहायता मांगी थी, अन्त में १५३५ में जौहर द्वारा कर्णावती ने प्राणोत्सर्ग कर दिया।

अहल्याबाई भी (१७१५-९५) कुशल राजनीतिज्ञा एवं प्रशासिका थी। अपने पति की मृत्यु के उपरान्त मल्हारराव की संरक्षिका के रूप में वास्तविक शासिका वही थी। उसकी चरित्र-विषयक समीक्षा करते हुए कहा जा सकता है कि अपने सीमित क्षेत्र में वह अत्यन्त आदर्श एवं पवित्र शासक थी[1]। आलोच्य युग के राजनीतिक जीवन में महिलाओं का सहयोग और प्रभाव बराबर रहा। मुगलकाल में यद्यपि नारी को सिंहासनारोहण का अधिकार न था किन्तु वह बराबर राजनीति को प्रभावित करती रही[2]। अपने सौन्दर्य एवं अधिकारपूर्ण व्यक्तित्व के बल पर नूरजहां ने परोक्ष रूप से शासन भी किया। उनके विवरण से यह स्पष्ट है कि गृह-जीवन में पुरुष की वासना के साधनमात्र नारी में राजनीतिक दांव-पेंचो के संचालन की क्षमता थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों में राजनीति और शासन में नारी ने केवल भाग ही नहीं लिया, प्रत्युत पुरुष से कहीं अधिक योग्यता, क्षमता और कौशल दिखलाया। नूरजहाँ, साहिबाजी, अहल्याबाई, दुर्गावती, जीजाबाई इत्यादि राजनीतिज्ञा और साहसी नारियों के विवरण से यह स्वयंसिद्ध है कि तत्कालीन समाज में उच्चवर्ग में नारी को प्रशासनीय एवं अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा अवश्य मिलती थी।

आलोच्यकाल का आर्थिक जीवन : १५०० से १७५० ई०

तत्कालीन जीवन में सामान्यतः ऐश्वर्य व वैभव का उत्कर्ष हुआ था, आन्तरिक शान्ति के कारण धन की अभिवृद्धि हुई। परन्तु वस्तुत. समाज में धन की घोर असमानता और विषमता विद्यमान थी[3]। एक ओर राजा और अभिजात वर्ग वैभव एवं विलास की दोला पर तरंगित होते, उत्कृष्ट सामग्रियों, उपकरणों का उपभोग करते, हीरे और मोतियों की देदीप्यमान प्रभा नयनों को चकाचौंध करती थी। दूसरी ओर निम्न वर्ग का जीवन की आवश्यकताओं के चरम संघर्ष की कहानी थी। तब भी निम्नवर्ग में निरीह सन्तोष की विवशतापूर्ण भावना थी।

---

१. आर० सी० मजूमदार और एच० सी० राय चौधरी तथा अन्य—एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया पृ० ६७९-८०, १९५३ लंदन

२ "Although the Mughal did not recognise the right of woman to sovereign power, they were willing to allow them considerable influence in political matters".

रामप्रसाद त्रिपाठी—सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, पृ० १४८, १९३६ इलाहाबाद

३ आर० सी० मजूमदार—एण्ड अदरस—एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ५६७, १९५३ लंदन

वर्ण-व्यवस्था के नियम, जो अपने निर्माणकाल में व्यवहारिक की अपेक्षा शास्त्रीय अधिक थे, अत्यन्त कठोरता से पाले जाते थे। एक श्रमिक के पुत्र को इच्छा अथवा अनिच्छा से अपने पिता के व्यवसाय का ही अनुकरण करना पडता था[1]।

भारत एक कृषि-प्रधान देश है। उसकी अधिकाश जनसख्या उस समय भी कृषि द्वारा ही जीवनयापन करती थी। छोटे-छोटे ग्रामो में अधिकाश निवासी अपनी परिमित आवश्यकताओ एव साधनो सहित निवास करते थे। ग्राम-जीवन इच्छित एव सामजस्यपूर्ण सहयोग पर आधारित था। प्रत्येक व्यक्ति का एक निश्चित कार्य होता था। स्त्रिया खेत के कार्य के परिश्रम में सहयोग प्रदान करती और कृषि के पशुओ एव घर की देखभाल करती थी। भारतीय ग्राम अपने में ही सीमित इकाई थे। कुम्भकार, चर्मकार, रजक, ज्योतिषी, वैद्य और ग्वाला सभी को मिला कर वह अपने में ही पूर्ण थे। खेत में उत्पन्न वस्तुओ के आधार पर छोटे-छोटे घरेलू धधे भी थे, उदाहरणार्थ टोकरी और रस्सी बनाना, भेडो की ऊन के द्वारा कम्बल आदि बुनना, इत्र एव तेल खीचना आदि। नियमित मेलो से ग्रामवासी अपनी आवश्यकता की वस्तुओ को क्रय कर लेते थे। इनके पारस्परिक मनोमालिन्य एव मतभेदो का निर्णय ग्रामपचायत करती थी[2]।

मुसलमानो के आगमन से भारत की आर्थिक प्रणाली में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ, क्योकि वह अपने साथ कोई आर्थिक अथवा राजनीतिक सगठन नही लाए थे। धार्मिक क्षेत्र में समानता को स्वीकार करते हुए भी उनमें दो वर्ग थे, और उनका दृष्टिकोण सामन्ती था[3]। उनके भवनो में शिल्प की उत्कृष्टता का साक्ष्य देती हुई कलाकृतियो के निर्माणकर्ता शिल्पकार भारतीय ही थे। आर्थिक-दृष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज को ९ भागो में विभाजित कर सकते हैं —

१. प्रथम श्रेणी में राजा, महाराज तथा सम्राट के मसबदार।
२ शाही सेना, तथा शाही शासन विभाग के मध्यम वर्ग के पदाधिकारी।
३ तीसरी श्रेणी के राजकर्मचारी जिनमें विभिन्न श्रेणियो के सैनिक चपरासी, हरकारे, चौकीदार, भिश्ती आदि हैं।
उस समय के कम आय वाले अध्यापक भी तृतीय के अन्तर्गत आते हैं।
४ व्यापारियो के दो वर्ग, धनी और निर्धन।
५ कई श्रेणियो वाले कारीगर, ऊनी, रेशमी कपडो एव ज़री का कार्य करने

---

१ पेल्सवर्ट—जहागीर्स इडिया, स० मोरलैन्ड पृ० ६०, कैम्ब्रिज १९३५
२ के० एम० अशरफ—लाइफ एण्ड कन्डीमन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल पृ० १९७, १९३५
३ जवाहरलाल नेहरु—डिस्कवरी आफ इडिया पृ० ३१२, १९४५ कलकत्ता

वाले, भवन निर्माण कला मे निपुण इजीनियर आदि।

७. हकीमों के दो वर्ग।

८ बढई, सोनार, लोहार, चर्मकार, सामान्य राज जुलाहा।

९ कृषक वर्ग।

वैभव की स्वर्णिम आभा, शिल्पकला की उत्कृष्ट कलाकृतियो के निर्माण सगीत तथा ललितकलाओ के प्रश्रय के लिए मुगल शासनकाल को स्वर्ण युग की सज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। किन्तु सामान्य जन के जीवन में कभी हर्ष और आह्लाद का वसन्त नही आया। अल्पसख्यक, किन्तु अत्यधिक धनी उच्च-वर्ग था, जो अत्यन्त अपव्ययी था, उसके सुख और विलास की सीमा न थी। इसके अतिरिक्त एक मितव्ययी मध्यमवर्ग तथा बहुसख्यक निम्नवर्ग था।

मध्ययुगीन आर्थिक जीवन मे नारी का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान न था। निम्नवर्ग की नारी पति के साथ क्षेत्र में परिश्रम करती तथा अन्य सहायक धन्धे करती थीं। वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बिनी हो सकती थी। उच्चवर्ग की नारी के लिए जीविकोपार्जन का कोई साधन न था और न आवश्यकता ही थी। व्यवसाय के रूप मे सगीत केवल वेश्याए ही सीखती थी। वस्तुत आलोच्य-युग की नारी की कोई आर्थिक स्थिति नही थी। वह सम्पूर्णत पुरुष के ही अधीन थी, और उसी की मुखापेक्षी थी। आलोच्य युग में साधारणत नारी कोई स्वतत्र व्यवसाय आदि नही करती थी। हा, निम्नवर्ग की नारी को अवश्य राजमहलो के विस्तृत अन्त पुरो में ताम्बूल-वाहिनी, छत्रवाहिनी, पुष्पवाहिनी आदि के रूप में कार्य मिल जाता था। बहुधा, राजमहल के विलासपूर्ण वातावरण में उन्हें अपने चरित्र की रक्षा करना कठिन होता होगा[1]। अभाग्य अथवा आपत्ति में पडी हुई उच्च-वर्ग की नारी अपना जीवन-निर्वाह किस प्रकार करती होगी, इतिहासकार इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं डालते हैं। कौटिल्य के काल में दुर्दैव-बाधित होने पर अभिजात वर्ग की नारी भी कपडा बुनने आदि का कार्य करती थी[2]। सभव है आलोच्यकाल में भी नारी को आवश्यकता पडने पर शिल्प का ही अवलम्बन लेकर जीविका उपार्जन करनी पडती हो। आपत्ति काल में चरखा तो नारी का आर्थिक क्षेत्र में सहायक था, यह तो मान्य ही है[3]। वस्तुत तत्कालीन समाज की सयुक्त-परिवार प्रणाली में नारी को किसी प्रकार के व्यवसाय के ग्रहण करने की आवश्यकता ही कम पडती थी। तत्कालीन नारी का पुरुष से स्वतत्र कोई आर्थिक जीवन था ही नहीं।

---

१ अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ ग्रेट विमेन आफ इडिया में सकलित पृ० ४२, १९५३ कलकत्ता

२ बाशम—'द वन्डर दैट वाज इडिया' पृ १८०, १९५४ लदन

३ अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ ग्रेट विमेन आफ इडिया में सकलित: पृ० ४२, १९५३ कलकत्ता

आलोच्यकाल का सामाजिक जीवन १५०० से १७५०

भारत पर यवन आधिपत्य स्थापित हुए तीन शतक व्यतीत हो चुके थे। इतिहास की पृष्ठभूमि पर भीषण नर-सहार, धर्मोन्मान्द एव पराधीनता का दानव नृत्य कर रहा था। सास्कृतिक एव राजनीतिक द्वन्द्वो के मध्य समाज के भावो तथा मानदण्डो मे परिवर्तन होना अनिवार्य था। इस्लाम के प्रवल, अप्रतिहत प्रवाह को हिन्दू-सस्कृति की शान्तधारा अपने में मिला न सकी। फलत बौद्ध, और जैन धर्म के आघातो, हूण शक तथा यूनानी सभ्यताओ के प्रभाव के समक्ष अपनी एकता को अक्षुण्ण रखने वाला समाज शीर्ष से खीची हुई दो रेखाओ के समान दो भागो मे विभाजित हो गया। हिन्दू एव मुसलमान दो परस्पर विरोधी बिन्दु पर इन रेखाओ की स्थिति थी। समाज में पवित्रता की रक्षा के लिये वर्ण-व्यवस्था में सकीर्णता एव कठोरता आ गई। ऊँच-नीच की भावना प्रमुख हो गई। किन्तु इन परस्पर विरोधी सिद्धान्तों पर आधारित धर्मों के अनुयायियो में शीघ्र ही परस्पर सद्भाव एव सवेदना का उद्रेक होना अनिवार्य था[1]। इसलिये हिंसा के प्रभजन के उपरान्त सदाशय-शासको ने जन-हृदय के स्पन्दन को सुना।

वर्ण-व्यवस्था

वर्णाश्रम धर्म से तात्पर्य उस धर्म से रहा है जो समाज के प्रत्येक वर्ग और जीवन की प्रत्येक दशा के अनुकूल हो। वैदिक युग में जीवन की जटिलताओ, श्रम के सम-विभाजन के आधार पर इसका जन्म हुआ था। इसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णों के पृथक-पृथक कार्य थे। अनार्यों के सम्पर्क के साथ वर्ण-व्यवस्था कडी हो गई। द्विज (यज्ञोपवीत का अधिकार प्राप्त) जातियो, और शूद्रो मे अन्तर परिवर्द्धित हो गया था। आर्येतर जातियो का समावेश इसी शूद्र वर्ण में हुआ। उनका कार्य अन्य तीनो वर्णों की सेवा करना था जवकि अधिकार कुछ नही थे। स्त्रियो का उपनयन स्थगित हो जाने के उपरान्त (२०० ई० से) वह भी शूद्रो के समकक्ष समझी जाने लगी थी। समय के साथ खान-पान तथा विवाह आदि व्यवहारो में कडाई के कारण वर्ण-व्यवस्था का अर्थ परिवर्तित हो गया, वह जाति-व्यवस्था वन गई। इस्लाम के आगमन के समय तक हिन्दू जाति मे अनेक जातिया, उपजातिया वन गई थी। इस्लाम धर्म की समानता

---

१ 'कुतवुन' जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध रूप दिखलाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओ को सामने रखा, जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव पडता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने रख कर अजनवीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पडेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओ की कहानियाँ हिन्दुओ की ही वोली में पूरी सहृदयता कहकर उनके हृदय की मर्म-स्पर्शिनी दशाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामजस्य दिखा दिया।'—रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १०१, स० २०१२ काशी।

और भ्रातृत्व की भावना भारतीय वर्ण-व्यवस्था के लिए एक चुनौती थी। द्विज-जाति से प्रपीडित व्यक्ति का स्वागत इस्लाम कर रहा था जिसमें प्रवेश कर लेने पर किसी प्रकार का सामाजिक भेद-भाव नही था। अत इस्लाम के आकर्षक स्वरूप के प्रलोभन अथवा स्वधर्मियो के प्रपीडन से निम्नवर्ग द्रुत गति से इस्लाम की दीक्षा ले रहा था। इस्लाम के आगमन से उत्पन्न नवीन समस्याओ के समाधान के प्रयास में जाति प्रथा और कडी हो गयी[1]।

परिवार

सामतवादी व्यवस्था में स्त्रियो की परिवार में स्थिति पति पर ही अवलबित थी। उनका सर्वोच्च कर्तव्य पति-सेवा ही था। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पति के ऊपर ही निर्भर थीं। सयुक्त परिवार प्रणाली में उनका स्थान सदा आश्रित के रूप में था। बाल्यावस्था में पिता के सरक्षण में रहती थी, यौवन में पति, और वृद्धावस्था में पुत्र अथवा अन्य कोई सम्बन्धी उनकी रक्षा करता। पुत्री का जन्म अशुभ माना जाता था। हिन्दू आदर्श के अनुसार नारी की सार्थकता पुत्र की माता होने में थी। पुत्र उत्पन्न होने पर उसकी प्रतिष्ठा वढ जाती थी[2]। ५०० ई० के उपरान्त स्त्री का क्षेत्र गृह की क्षुद्र सीमा ही रह गया था और उत्तरोत्तर उसकी सामाजिक स्थिति में पतन होता गया[3]। सामाजिक, सास्कृतिक क्षेत्र में वहिष्कृत होकर अशिक्षित, अपरिपक्व वुद्धि वाली नारी परिवार में भी आदरणीय न हो सकी। युग की भोग-प्रधान वासनात्मक मनोवृत्ति के अनुसार नारी केवल वासना काम-तृप्ति का साधन मात्र रह गई थी। सामतवादी आदर्श के अनुसार वैभव और विलास की अनिवार्य सामग्रियो में से एक नारी भी थी।

पर्दा

प्रथम अध्याय के मध्य सकेत किया जा चुका है कि प्राचीन भारत में पर्दे की प्रथा नही थी। यद्यपि जफर के मतानुसार पर्दे की प्रथा का प्रारम्भ धूमिल

---

१ मुसलमानों के आगमन के कारण हिन्दू समाज में आत्मरक्षा की प्रवृत्ति भी वडी तीव्र प्रतिक्रिया के रूप में हुई। उनकी जातिप्रथा अधिक कसी जाने लगी। छूत का भय व वर्णसकरता की भावना ने समूचे समाज को ग्रस लिया। —हजारीप्रसाद द्विवेदी
मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० ९१, १९५२ इलाहाबाद

२ के० एम० अशरफ—लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान,
जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी वगाल
पृ० २४०, १९३५

३ ए० एस० अल्टेकर—आइडियन एण्ड पोजीशन आफ इण्डियन विमेन इन सोशल लाइफ ग्रेट विमेन आफ इण्डिया में स०
पृ० ४६, १९५३ कलकत्ता

अतीत से हुआ है[1]। वस्तुत भारत में अभिजात वर्ग की स्त्रिया अन्त पुर में रहती थी। सम्मानस्वरूप, गुरुजनो के समक्ष अवगुठन से मस्तक ढक लेती थी। किन्तु एक प्रथा के रूप मे पर्दे का प्रारम्भ मुसलमानो के शासन काल मे हुआ[2]।

कृषक स्त्रियाँ अथवा निम्नवर्ग की स्त्रियाँ अन्त पुर में नही रहती थी न वह किसी विशेष प्रकार का अवगुठन ही धारण करती थीं। अपरिचित के समक्ष वह अपने मुख को धोती के किनारे से ढक लेती थी। उच्च वर्ग साधन-सम्पन्न होने के कारण पर्दा-प्रथा का अनुकरण करता था। फीरोजशाह (१३८८) पहला बादशाह था, जिसने पर्दे को सार्वजनिक रूप से लागू किया था। मुस्लिम स्त्रियो के सन्तो के दरगाहो तक जाने में भी इसने प्रतिबन्ध लगा दिया था। पूर्ण-रूपेण वस्त्रो से आवृत्त, पर्दे पडी हुई डोलियो में यात्रा करनेवाली मुस्लिम स्त्रियाँ हिन्दू अभिजात वर्ग के लिए आदर्श बन जाती थी। अनिश्चित परिस्थितियो के मध्य, विजेता की कामलोलुप दृष्टि से अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए हिन्दू जनता को पर्दे का अवलम्ब लेना पडा।

विवाह, सती और जौहर

अपने वर्ण अथवा जातीय उपशाखाओ में ही विवाह हो सकता था। विवाह की आदर्श वयस ८, ९ अथवा १० वर्ष की थी। बालको का उसी अवस्था में उपनयन होता और बालाओ के लिए विवाह ही उपनयन का स्थानापन्न था, पति ही गुरू था[3]। विवाह मे पिता और माता अथवा अन्य गुरुजनो का मत ही मान्य होना था। कन्या को अपना वर चुनने की स्वतत्रता न थी। ईसवी शती से विधवा की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। १००० ईसवी से उसकी दशा में उत्तरोत्तर पतन होता जा रहा था। सती की प्रथा सुदूर अतीत की कुछ परपराओ पर आधारित है। इस प्रथा को सहमरण के गौरव से विभूपित कर, पति-पत्नी की अविच्छिन्न एकता का प्रतीक बताया गया। विधवा स्त्री कभी-कभी स्वत ही सहमरण को गौरवपूर्ण समझ कर अपने जीवन को अग्नि की भेंट कर देती थी। प्राय समाज के अनादरपूर्ण जीवन, परिवार में प्रतीक्षा करती हुई लाछना तथा तिरस्कार का भय उन्हें इस उपाय के ग्रहण के लिए विवश करता था और वह अपने दु ख, वेदना और अपमानमय जीवन का अन्त कर देती[4]। प्राय शक्ति-प्रयोग द्वारा उन्हें बाधित भी किया जाता था।

---

१ जफर—सम कल्चरल ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया पृ० १७७-७९, १९३९ पेशावर।

२ ए० एस० अल्टेकर –पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २४४, १९३८ बनारस।

३. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४२९, १९३८ बनारस

४ के० एम० अशरफ —लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान जरनल रा० ए० बगाल १९३५ पृ० २५८

विदेशी यात्रियो के इसके आख देखे विवरण उपलब्ध है[1]। जौहर की प्रथा का प्रचलन राजपूतो में ही था, यद्यपि आलोच्यकाल से पूर्व अन्य जातियो में भी छिटपुट उदारण मिलते हैं। तैमूर के आक्रमण के समय भटनेर के गवर्नर कमालुद्दीन द्वारा जौहर हुआ था। अकबर ने सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाया पर सफल न हो सका।

वेश्यावृत्ति

प्राचीन भारत में सामाजिक नियमो और प्रतिबन्धो से परे स्त्रियो का एक वर्ग था, जिसके कारण उच्चवर्गीय नारी की स्वतन्त्रता सीमित रह गई थी। यह वेश्या या गणिका कहलाती थी[2]। मुसलमान सुलतानो की हरम प्रथा, बहु-विवाह की वृत्ति, तथा विलास-लालसा ने इस प्रथा को अधिक प्रोत्साहन दिया था। आलोच्यकाल से पूर्व ही नारी की गणना नित्य हाट से क्रय कर लाई, किन्तु आवश्यक सामग्री मे होने लगी थी, जैसा कि कुवर मुहम्मद अशरफ की पुस्तक मे अलाउद्दीन और उसके दरबारी के वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है[3]। राज्य की ओर से वेश्यावृत्ति पर कोई प्रतिबन्ध नही लगाया गया। विलासोन्मुख वृत्ति के कारण, और दरबारी सामाजिक मनोरजन मे सगीत और नृत्य की अनिवार्यता के कारण वेश्याओ की सख्या में अभिवृद्धि होती गयी। अकबर ने तो उनके लिए शैतानपुरी नाम की एक पृथक बस्ती ही बसा दी[4]।

शिक्षा तथा सार्वजनिक जीवन

मध्य युग (आलोच्यकाल) में शिक्षा राज्य के इच्छित अथवा आवश्यक कर्तव्यो में से न थी, प्रत्युत वह एक व्यक्तिगत समस्या थी। मुस्लिम बादशाह और हिन्दू राजा धार्मिक कर्तव्य समझ कर मसजिदो और मन्दिरो को अनुदान देते थे जिससे उनमें सलग्न पाठशालाएं अथवा मकतब होते थे। काशी, श्रीनगर, पुरी, हरिद्वार, शृगेरी आदि स्थानो में प्रकाण्ड पडित वेद का अध्ययन, अध्यापन करते थे। बर्नियर ने बनारस में उन विद्वानो के प्रमुख से मिलने का उल्लेख किया है[5]। धनिक लोगो द्वारा प्रदत्त उद्यानो अथवा ग्रीष्म आवास में अध्यापक, प्राचीन काल के समान शिक्षा दान करते थे[6]। इस्लाम के आगमन के साथ

---

१. बर्नियर—ट्रैवल्स इन इन्डिया पृ० ३१२, ३१५ कासटेवल द्वारा सपादित

२ बाशम—द वण्डर दैट वाज इण्डिया पृ० १८३, १९५४ लदन

३ अशरफ—लाइफ एण्ड कण्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान, पृ० ३२०

४ के० एन० अशरफ—लाइफ एण्ड कण्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान पृ० ३२१

५ When going down to the river Ganges, I passed through Banaras and called upon Chief of the Pandits who resides in that celebrated place of learning"

बर्नियर—द ट्रैवल्स इन मुगल इण्डिया पृ० ३४१, कासेटबल द्वारा सम्पादित

फारसी राजकीय कार्यों का माध्यम थी। अत पुरुषो के लिए उसका ज्ञान अनिवार्य था। वस्तुत राजनीतिक क्रान्ति के साथ ही हिन्दू अभिजात वर्ग नष्ट-सा हो गया था। नवोदय हिन्दू अभिजात वर्ग का शिक्षा के प्रति उतना आग्रह न था।

स्त्री-शिक्षा

इस काल में हिन्दू स्त्रियो में साक्षरता केवल राजपूत और ब्राह्मण महिलाओ में थी[1]। नर्तकी-वर्ग तथा वेश्याओ में ही शिक्षा एव ललितकलाओ के प्रचार के कारण शिक्षित होना असम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। पर्दे की प्रथा के प्रचार ने भी स्त्रियो की शिक्षा में अवरोध प्रस्तुत किए। उच्च वर्ग मे गृह पर ही अध्यापक अथवा महिला अध्यापक के द्वारा ही शिक्षा मिलती थी। सामान्य हिन्दू नारी भी गुरुजनो द्वारा साधारण शिक्षा एव अपने कर्तव्य का ज्ञान कर ही लेती थी। राजपूत एव मरहठा परिवारो में लडकियो का विवाह अपेक्षाकृत अधिक वयस १६, १७ वर्ष में होता था। उनको प्रशासकीय एव अस्त्र-शस्त्र सचालन की शिक्षा पहले की भाति दी जाती थी। जवाहरबाई, ताराबाई, अहिल्याबाई आदि की कुशलता इसकी साक्षी है[2]। जफर के मतानुसार मुसलमान स्त्रियो के लिए पृथक मकतब थे, तथा वह प्रारम्भिक शिक्षा लडकों के साथ ही प्राप्त करती थी[3]। मुगल स्त्रियाँ शिक्षित होती थी, तथा साहित्य और कला का सरक्षण करती थी[4]। पर्दे के कारण सार्वजनिक जीवन में नारी का कोई भाग न था।

सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो में भी इस युग में कोई प्रगति नही हुई। वस्तुत वेश्या की प्रथा, पर्दे के प्रचार, जातिव्यवस्था की सकीर्णता, सामन्ती प्रभाव मे वर्द्धित होती हुई विलासिता, मदिरा पान आदि ने आलोच्य युग मे नारी की सामाजिक स्थिति को आघात पहुँचाया। इन्ही विभिन्न कारणो से क्रमश नारी की स्थिति में अधिकाधिक पतन होता गया।

आलोच्यकाल का धार्मिक जीवन

आलोच्यकालीन जीवन राजनीतिक उत्कर्ष, जनसाधारण की आर्थिक समृद्धि के लिए स्पृहणीय न होने पर भी आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से नगण्य न था। दासता और परतन्त्रता के गहन तम में निर्गुण और सगुण ब्रह्म की दीप्ति

---

१ अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ हिन्दू विमेन इन सोशल लाइफ, ग्रेट विमेन आफ इडिया में स० पृ० ४२, १९५३ कलकत्ता।

२ अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ हिन्दू विमेन इन सोशल लाइफ ग्रेट विमेन आफ इडिया में स० पृ० ४२, १९५३ कलकत्ता।

३ सम कल्चर ऐस्पेक्ट्स आफ मुसलिम रूल इन इडिया पृ० ७७, १९३९ पेशावर

४ पानिकर—ए सर्वे आफ इडियन हिस्ट्री, १९५४ बम्बई पृ० १६३

से हिन्दू धार्मिक नेताओ ने जनजीवन का पथ प्रशस्त कर दिया था। राजनीतिक ऊहापोह, आशा-निराशा के द्वन्द्व में हिन्दू जाति किंकर्तव्य-विमूढ हो रही थी। उपयुक्त अवसर पर ही भक्ति, परम दयामय स्नेहसिन्धु भगवान की कृपा और करुणा उसका अवलम्ब बनी।

प्राय तीन सहस्र वर्ष से हिन्दू सस्कृति की धारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित हो रही थी। अपनी समन्वयकारिणी प्रवृत्ति के कारण उसने अपने सम्पर्क में आई हुई द्रविण, हूण, यूनानी, शक आदि की सभ्यताओ से सत्य, शिव सुन्दर का चयन कर लिया था। बारहवी शताब्दी में उसका सम्पर्क इस्लाम से हुआ। इस्लामी सस्कृति एकेश्वरवाद, प्राणिमात्र की समानता, नवस्फूर्ति एव धर्मोन्माद से प्रेरित थी। भारतीय सस्कृति इस नवीन सस्कृति को आत्मसात् करने में असमर्थ थी। किन्तु इस्लाम के साथ सघर्ष होने के कारण, भारतीय सस्कृति के अनेक ऐसे पक्ष सामने आए जो नवागत धार्मिक, दार्शनिक और सास्कृतिक परिस्थितियो के बहुत कुछ अनुरूप थे और उनसे टक्कर ले सकते थे। फलत उपनिषदो में मान्य एकेश्वरवाद का सिद्धान्त पुन लोकप्रिय हो गया। प्राणिमात्र की समानता एव स्वधर्माभिमान की भावना का उदय हुआ। धार्मिक नेताओ ने प्रत्यक्षत अथवा परोक्ष रूप से मानवमात्र को भक्ति का अधिकारी बताया। इन नवीन धार्मिक आन्दोलनो का आधार बाह्याचार, उपासना पद्धति की जटिलता न होकर भक्ति था।

इस्लाम के साथ सपर्क होने से भारतीय धर्म के सगठन मे परिवर्तन होना अनिवार्य था। इस्लाम के रूप में हिन्दू धर्म को एक ऐसे सुसगठित मजहब का सामना करना पडा जिसमें प्रवेश मात्र से प्रत्येक के लिए बहिश्त का द्वार खुल जाता था। भारतीय पण्डितगण, शास्त्रज्ञो ने इसी के समानान्तर अपने धर्म का आचार-प्रवण रूप स्थिर करना चाहा। अपनी आधारशिला, धार्मिक सगठन को दृढ बनाने के लिए समस्त शास्त्र पुराणादि का मन्थन करके, बाह्याचार और उपासना, व्रतो और उपवासो को महत्व देने वाला मत सगठित किया[1]। इस्लाम के आगमन के साथ ही आत्मरक्षा की प्रवृत्ति से हिन्दू-धर्म आचार-प्रवण तो हो ही गया था, इसी समय ऐसे धार्मिक आन्दोलन हुए जिन्होने धार्मिक क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन प्रस्तुत किए।

---

१. 'हेमाद्रि से लेकर कमलाकर और रघुनदन तक बहुतेरे पण्डितों ने बहुत परिश्रम के बाद जो निर्णय किया वह यद्यपि सर्ववादिसम्मत नहीं हुआ, किन्तु निस्सदेह स्तूपभूत शास्त्रवाक्यों की छान-बीन से एक बहुत कुछ मिलता जुलता आचरण-प्रवण धर्ममत स्थिर किया जा सका। निबध ग्रन्थों की यह बहुत बड़ी देन थी। जिस बात को आजकल हिन्दू सोलिडैरिटी कहते हैं उसका प्रथम भित्ति स्थापन इन्हीं निबन्ध ग्रथो द्वारा हुआ था।'

—हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृ० १७३, १९४७ द्वि० स० बम्बई

तत्कालीन भारत के धार्मिक क्षेत्र में उदभूत होनेवाला यह आन्दोलन नवीन अथवा आकस्मिक न था शतियो से इनके लिए भूमि प्रस्तुत हो रही थी, और इनका वपन हो चुका था। बहुत पूर्व से दक्षिण भारत में आलवार भक्तो मे उपासना और भक्ति का सामजस्य था। उनमें आन्दाल नाम की एक महिला भक्त भी हुई है। इन्ही की परम्परा मे रामानुज (१०१६ ई०) आविर्भूत हुए। दक्षिण के इसी भक्ति मार्ग को उत्तर भारत में दार्शनिक रूप मिला। भक्ति के क्षेत्र मे शकर के अद्वैत सिद्धान्त की जीव और ब्रह्म की एकता ग्राह्य न थी अत बारहवी शती से ही उसकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। उसके प्रतिरोध में उदित चार वैष्णव सम्प्रदाय दार्शनिक दृष्टिविन्दु से भिन्न होते हुए भी मौलिक एकता रखते हैं। इन्ही सम्प्रदायो के प्रवर्तको में श्री रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में रामानन्द हुए। रामानन्द ने समस्त प्राणियो की मूलभूत एकता पर बल दिया, और उच्चता का मानदण्ड कर्म को माना, जन्म नही। रामानन्द की ही शिष्य-परम्परा में कबीर, रैदास आदि हुए।

सन्त-सम्प्रदाय और नारी

खण्डनात्मक मनोवृत्ति को लेकर इन सतो ने शास्त्रगत सत्यो की अवहेलना करते हुए योग और विरक्ति प्रधान धर्म का प्रचार किया। यद्यपि समाज द्वारा उत्पीडित निम्नवर्ग के लिए इन सतो के हृदय में सवेदना थी और उन्होने जाति-पाति के भेद भाव का उग्र विरोध किया है, किन्तु नारी के प्रति उनकी दृष्टि अकृपा की ही रही। तप और विराग पर बल देने वाले सत-सप्रदाय में स्वभावत ही नारी को तपस्या का अवरोध, एव सत्पथ से च्युत करने वाला आकर्षण माना है। अत सतो के इस मत द्वारा नारी की स्थिति को आघात पहुचा। किन्तु अन्तत सत-सप्रदाय के सतो को मानना ही पडा कि पुरुष और नारी एक ही ईश्वर की रचना हैं, सब मे उस अनन्त की ज्योति परिलक्षित होती है[1]। सत-साधिकाओ के जीवन और काव्य साक्ष्य देते हैं कि सतो ने नारी-जाति के लिए भी भक्ति का द्वार उन्मुक्त कर दिया। सत सम्प्रदाय में सहजोबाई (१६८३ ई०) दयाबाई (१७१८ ई०) आदि नारी दीक्षित थी। कबीर की पत्नी लोई भी उनकी शिष्या थी[2]।

---

१ 'जेती औरत मरिदा सब में रूप तुम्हारा'।—कबीर
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १७६, २५६

२ 'इसके विपरीत स्त्रियो को इस बात के लिए उनका ऋणी होना चाहिए कि उन्होने उनके लिए भी भक्ति का द्वार खोल दिया है। निर्गुणियो ने स्त्रियों को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया था। दादू की कुछ स्त्री-शिष्याए थीं, जो उच्च परिवार की थीं। चरणदास की शिष्याए सहजोबाई एव दयाबाई निर्गुण पथ के परमोच्च रत्नो में से है। कबीर की स्त्री जिसका जो भी नाम रहा हो एक पूर्ण शिष्य का उदाहरण-स्वरूप थी'।—पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० २८८, स २००७ लखनऊ

रामानंदी भक्तो की दूसरी शाखा में राम की सगुणोपासना पर बल देने वाले महात्मा तुलसीदास हुए। लोक में वर्णाश्रम, और जाति-पाति आदि भेदभावो को मान्य स्थिर करते हुए भी उन्होंने उपासना के क्षेत्र में दूसरे आदर्श और मापदण्ड रक्खे हैं। उनके अनुसार शूद्र भक्त भी अत्यन्त आदरास्पद और अधम से अधम नारी भी राम-भक्ति से मुक्ति पा लेती है[1]। ब्रह्म, रुद्र, सनकादि समस्त सप्रदायो ने नारी को भक्ति का अधिकार दिया[2]। वल्लभ सम्प्रदाय मे वल्लभाचार्य ने गृहस्थाश्रम एव नारी को परित्याग करने का आदेश नही दिया है प्रत्युत वे भक्ति साधना के पूर्वकाल में गृहस्थ के कर्मों को भगवान कृष्ण का आदेश मान कर करने का उपदेश देते हैं[3]।

तत्कालीन धार्मिक जीवन में एक और उल्लेखनीय धार्मिक सम्प्रदाय सूफी सम्प्रदाय था। उद्गम स्थान अरब होने पर भी यह भारतीय परम्पराओ एव आदर्शों के अधिक निकट था। इस धर्म मे नारी के प्रति क्या दृष्टिकोण थे इस विषय में स्पष्ट सकेत नही मिलते। किन्तु अमर प्रेम साधिका राबिया की उपस्थिति यह निर्देश करती है, कि बन्दे और खुदा के एकीकरण, प्रेम को प्रमुखता देने वाले इस सम्प्रदाय का द्वार नारी के लिए उन्मुक्त होगा। कालान्तर में इन साधको ने हिन्दू जीवन की सवेदनामयी प्रेम कहानिया लेकर उनमें लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम का आभास दिया। इनकी प्रणयमूला रहस्यवादी भक्ति में खुदा नारी है और साधक पुरुष।

आलोच्य युग में अभी तक धार्मिक विशेषाधिकारो से वचित नारी को अपने हृदय की अनन्त श्रद्धा और अपरिसीम भक्तिमयी भावनाओ की अभिव्यक्ति का अवसर मिला। भक्ति के इस राजमार्ग पर अग्रसर होने के लिए किसी शास्त्रीय

---

१ "प्रेम पुलिकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दड प्रनामू ॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा, जनु महि लुटत सनेह समेटा ॥"—तुलसी,
—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २५२, प्र० स०
१९८० वि० स० काशी

२ "भक्तिमार्ग में स्त्री, शूद्र और वैश्य वर्ग को आत्मोन्नति का अधिकार दिया गया, यहा तक कि दुराचारियों को भी इस साधन से आत्मिक सुधार का अवसर मिला।"—दीनदयाल गुप्त
—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, दूसरा भाग
पृ० ५१६, २००४ प्रयाग

३ "भक्ति की प्रथम साधन अवस्था में आचार्य जी ने गृहस्थाश्रम में रह कर, धर्म पालन करने का उपदेश दिया है, और गृहस्थ के कर्मों को कृष्ण की इच्छा मान कर करने का उपदेश दिया।' —दीनदयाल गुप्त
—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, दूसरा भाग
पृ० ५१८, २००४ प्रयाग

ज्ञान, विद्वता की आवश्यकता न थी। अत सामान्य नारी के समक्ष भी यह स्वर्णिम अवसर था। राम के चरित्र की आदर्शात्मकता, गभीरता और महानता के साथ सामजस्य न कर सकने के कारण सामान्य नारी कृष्ण के सरल, स्वाभाविक नटवर-नागर रूप की ओर ही उन्मुख हुई[1]। यद्यपि रामकाव्य में भी स्त्री भक्त हुई[2]। मधुरअली (१५५८ ई०) इत्यादि ने अपने हृदय की भक्तिमयी भावनाओ की व्यजना काव्य के माध्यम से ही की। कृष्ण भक्ति अधिक लोकप्रिय हुई। कृष्ण के सौंदर्य, लोकरजक स्वरूप के समक्ष केवल हिन्दू ही नही, प्रत्युत मुस्लिम नारियो ने भी धर्म और जाति की क्षुद्र सीमाए तोडकर आत्मसमर्पण किया।

सिद्धान्त रूप से तो भक्तिमार्ग जनसामान्य और नारी के लिए भी उन्मुक्त था, पर व्यवहार में भक्त नारी का जीवन सामाजिक मर्यादाओ के सघर्ष एव द्वन्द्वों की कहानी था। कृष्णप्रेम की मतवाली मीरा को भक्तिमय जीवन अपनाने में अगणित बाधाओ का सामना करना पडा। वस्तुत तत्कालीन सामाजिक परम्पराओ, पर्दे आदि की मान्यतायो के मध्य नारी को केवल गृहस्थाश्रम में रह कर ही भक्ति करने का अवसर था।

उस समय व्रत और शान्ति की प्रक्रियाओ का विधान करने वाला पौराणिक धर्म लोकप्रिय हो रहा था। महाकाव्यो एव पुराणो का जनभाषा में अनुवाद हो चुका था। ग्रामों में पौराणिको द्वारा मन्दिरो में इनका प्रवचन होता था। भावना-प्रधान होने के कारण नारी को यह धर्म अधिक ग्राह्य हुआ। इस प्रकार नारी उसी धर्म की सरक्षिका बनी, जिसने वैदिक काल के उपरान्त उसे धार्मिक विशेषाधिकारो से वचित कर दिया था[3]। शिक्षाप्रद कथाओ से पूर्ण पौराणिक धर्म बौद्धिकता एव तर्क-वितर्क का आघात नही सह सकता था। स्वभाव से ही धार्मिक नारी भक्तिमयी होकर बौद्धिकता को तिलाजलि दे बैठी। वेदान्त के दार्शनिक मतो को समझने में असमर्थ नारी के लिए पौराणिक धर्म एक वरदान बनकर आया।

---

१ "शृखलित जीवन की मर्यादा और आदर्शों के बीच कृष्ण की यह लीलामयता मानों उसमें शुष्क जीवन की प्रेरक बन कर आई, तथा भारतीय नारी जगत कृष्ण प्रेम से आप्लावित हो उठा, साधारण व्यक्तित्व उनके गुणो को गाकर उन पर रचित काव्य और सगीत के आनन्द और उल्लास में डूब गए। तथा अनेक स्त्रियों की कुठित प्रतिभा को कृष्ण के आलम्बन रूप द्वारा विकास का साधन प्राप्त हुआ।"

सावित्री सिन्हा—'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० १०३, दिल्ली

२ सावित्री सिन्हा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० २२२ और २२६

३ अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ ग्रेट विमेन आफ इडिया में सकलित, पृ० ४१, १९५३ कलकत्ता

र्माधिकारी तथा सामन्त

इस्लाम के आगमन से भारतीय जीवन में कोई मौलिक क्रान्ति उत्पन्न हुई थी। शासन और समाज की व्यवस्था में भी विशेष अन्तर न था। मानव-माज के सगठन, सभ्यता और सस्कृति के विकास के साथ ही मानव समाज दो र्गों में विभाजित हो गया था। एक तो शासकवर्ग—जिसमें सामन्त, पुरोहित तथा ाजा थे, दूसरा शासित वर्ग। यह विभाजन ही सामन्तवादी समाज का मूल आधार ा। इतिहास के पृष्ठो तथा अतीत की अन्धकारमयी पीठिका पर यह सत्य स्पष्ट ंकित है कि समाज को प्रत्येक देश एवम् समाज में शतियो तक सामन्तवाद का भुत्व रहा। भारत का इतिहास इस सत्य का अपवाद नही है। गणतन्त्रो के र्वणिम उपाकाल के उपरान्त राजतत्र का दैदीप्यमान आलोक क्रमश सामन्तशाही ी रजनी के घन कुहुक मे निमग्न रहा।

सामन्तवाद में धर्म का वडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। दलित शोषित वर्ग ी वर्तमान दशा की व्यवस्था का सबसे सरल उपाय धर्म है, जिसके अनुसार वर्त-ान स्थिति उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल है, जिसमें कोई परिवर्तन सभव नही ै। मनु तथा दूसरे शास्त्रकारों ने इस सामन्तवादी प्रथा का समर्थन कर राजा प्रजा े कर्तव्यो की विशद व्याख्या की है। शासक वर्ग क्षत्रिय और पुरोहितो ब्राह्मणो ा यह समझौता सर्वदेशीय होने पर भी भारत में बहुत गहरा था। भारत के राजपूत युग (८०० ई०-१२०० ई०) तक समाज के आधार सामन्ती आदर्श ही थे। ुरोप के साहसी वीरो के समान यहा के राजपूतो के जीवन का उद्देश्य युद्ध और प्रेम ही था। राजपूतो के अतिशय विलास, वैयक्तिकता, एव अनैक्य की भावना से उनका अपकर्ष हुआ और भारत पर मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना हुई। सामाजिक व्यवस्था वही रही। समाज अब भी दो वर्गों में विभक्त था—शोषित और शोषक। राजपूत सामन्ती सस्कृति के ध्वसावशेष पर जिस इस्लामी शक्ति का निर्माण हुआ, उसमें सामन्ती सभ्यता के सभी तत्व विद्यमान थे। धार्मिक तथा राजनीतिक अधिकार एक ही सत्ता में केंद्रित थे[1]। मुगल शासन-काल (१५२६) में भी समाज का आधार सामन्ती ही था। राजा सर्वोच्च स्थान पर था, उसके पश्चात् उसके सामन्त उमरा और मनसवदार आते थे। यद्यपि मुगल शासनकाल में उलमा को पठान-शासन काल (१४४१–१५२६) के समान निरकुश अधिकार एवम् महत्ता प्राप्त नही थी, किन्तु धर्माधिकारियो का सहयोग राजा की शक्तिवर्धन में सहायक था।

यद्यपि मुगल सम्राट पवित्र सच्चे धर्म के सरक्षक थे किन्तु धार्मिक क्षेत्र

---

१ भारत में मुसलमान राज्य धार्मिक राज्य ही बना रहा, मुसलमान शासक के रूप में सीजर और पोप दोनों ही एकत्र हो गए थे, परन्तु धार्मिक विषयो में उनके विचार शरीयत नियन्त्रित थे।

ईश्वरीप्रसाद—मध्ययुग का इतिहास, पृ० ८१३, १९५५ इलाहाबाद

मे उन पर बाह्य नियत्रण नही था। उल्मा-गण कभी मुगल शासको पर अपना नियत्रण न कर सके। सिकन्दर लोदी (१५१७) के समय की दशाश भी शक्ति उल्मा में नही थी। प्राप्त प्रमाणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आलोच्य युग मे राज्य धर्माधिकारियो के नियत्रण से परे था[१]। साथ ही फारसी जीवन के वैभव विलास की स्वर्णिम आभा से अभिभूत, भारत के सामन्ती वातावरण मे मुगल सम्राटो के दरबार शोभा, सज्जा, चमक-दमक, ऐश्वर्य में अद्वितीय थे, जिसके वैभव की प्रशसा सभी विदेशियो ने मुक्तकठ से की है। इस वैभव की पृष्ठभूमि मे सम्राट के सामन्तो की शृखला भी थी। अन्तिम मुगल सम्राटो के काल में प्राचीन सामन्ती परम्परा के स्थानापन्न सामन्तो में वह विशेषताएँ न रही जिनके कारण वह राज्य के स्तम्भ थे, एवम् शक्तिवर्धन में सहायक होते थे। दुर्बल हाथो में राजदण्ड जाते ही मुगल सामन्तो में भी शौर्य का अभाव हो गया। स्वामिभक्ति कर्तव्यपरायणता की भावना न्यून हो गयी थी, और उनके निकृष्ट गुण प्रकाश मे आने लगे।

मुगल शासन की यह उल्लेखनीय विशेषता थी कि सभी कर्मचारी (सिविल आफिसर) सैनिक पदस्थ मनसबदार थे। शासन तथा अन्य क्षेत्रो में यह सामन्त अत्यन्त प्रभावशाली थे। महावतखाँ ने जहाँगीर को गद्दी पर से उतार कर नूरजहाँ सहित बन्दी बना दिया था। समय और अवसर पाकर ये अमीर अत्यन्त शक्तिशाली हो जाते थे। मुगल शासन की सन्ध्या में जब राजदण्ड पकडने वाले कर प्रकम्पित और अशक्त थे, सम्राट अमीरो के हाथो के खिलौने बने हुए थे। मुगल दरबार अमीरो की उच्चाकाक्षाओ की रगभूमि हो गयी थी। शक्तिशाली अमीर ही समस्त शक्ति के केन्द्र और सत्ता के नियामक थे। फर्रुख-सियर (१७१६) के समय सैयद भाइयो और तूरानी सरदारो की शक्ति निर्बाध हो गई थी। वस्तुत 'अपहरण की प्रथा' का सामन्तों की नैतिकता और स्वामिभक्ति पर घातक प्रभाव पडा[२]। सामन्त यह भलीभाति जानते थे कि परिश्रम अथवा

---

१ "The Mughal State never became a theocracy though the emperor was the guardian and protector of Islam The body of Ulma was mostly a time serving heirarchy, intent upon gaining court favour and therefore, incapable of maintaining high ideals"

खोसला—मुगल किंगशिप एण्ड नोबिलिटी पृ० १८८, १६३० इलाहाबाद

२ It also made the Mughal Nobility a selfish herd prompt in deserting to the winning side in every war of succession or foreign invasion, because they knew that their land and even personal property was not legally assured to them, but depended solely on the pleasure of the king de-facto

सरकार—मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १७६, कलकत्ता

अकर्मण्यता, स्वामिभक्ति अथवा प्रवचना, कर्तव्य-परायणता अथवा कर्तव्य-विमुखता का उनकी मृत्यु-उपरान्त एक ही निश्चित परिणाम होगा। उनकी सचित सम्पत्ति, धनराशि राजकोष में सम्मिलित कर ली जायगी। उनका परिवार उसके उपभोग से वचित हो जावेगा। अत वह अपने जीवन काल मे ही वैभव और विलास का आकण्ठ पान कर लेना चाहते थे।

सामन्ती व्यवस्था का विलासवैभव और नारी

उल्लिखित कारणो से सामन्तो में नैतिकता का कोई मूल्य ही नही रहा था। उनके जीवन का चरम उद्देश्य वैभव और विलास ही था। उनका आदर्श था, फारसी विलास-वैभव-प्रदर्शन की प्रवृत्ति को प्रधानता देने वाला मुगल शासक। अत उसके अनुकरण में फारसी मौलिकता और विलासिता इन सामन्तो के जीवन का एक आवश्यक अग वन गई थी। अनागत दु ख (अपहरण) के भय से पलायन कर इन सामन्तो ने नारी के सुरभित आचल एवम् मदिरा की मादकता का सहारा लिया। सम्राट के अनुकरण पर इनके अन्त पुर में भी विवाहिताओ एव रक्षिताओ का समुदाय था। नारी उनकी विलासिता का एक उपकरण, विश्रान्ति के क्षणो की सगिनी मात्र थी। विलास और वैभव की उस अतुलित राशि में निवास करने वाली नारी, उसका एक अग मात्र थी, उसकी उससे पृथक सत्ता अथवा व्यक्तित्व न था।

सन् ११९३ ई० को भारत के इतिहास के पृष्ठो पर हिन्दू जाति के पराभव की व्यगमयी कुटिल कहानी समय ने लिख दी थी। प्रेम और युद्ध को जीवन का लक्ष्य समझने वाले, व्यक्तिगत सत्ता एवम् अह के पोषक राजपूतो के ध्वस पर मुस्लिम साम्राज्य की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। शताब्दियाँ वीत चुकी थी, राज्याधिकारियो का परिवर्तन हो चुका था, किन्तु समाज अपने उन्ही अगतिशील सामन्ती आदर्शों पर स्थित था। अशिक्षा और मोह की छाया मे व्यक्ति जन्म लेता, पलता और मर जाता। फारसी जीवन-दर्शन और मुगलकालीन आन्तरिक शाति की क्रीडा में, विलास और वैभव को प्रधानता देनेवाली, किन्तु नारी और शोषितो के अधिकारो को कुचलने वाली, सामन्ती-परम्परा अपने अभिनव रूप में पनपी थी। शासक विलासप्रिय बने और शासित उनका अनुकरण करने में प्रतिष्ठा और गौरव समझते थे। अत विलास के इस उद्दामवेग के समक्ष, तत्कालीन समाज की परम्परा में नैतिकता और सदाचार के बन्धन और नियम केवल एक पक्ष पर ही घटित होने लगे। नारी तो वहुत पहले से ही पराधीन और विवश होकर अनादर की पात्री थी, शिक्षा और उपनयन के अभाव में उसकी गणना शूद्रो में होने लगी थी। यज्ञ उपासनादि धार्मिक कार्यों मे नारी पति की सहधर्मिणी न होकर जीवन के कतिपय मादक क्षणो की सगिनी थी।

तत्कालीन समाज के धार्मिक सम्प्रदाय तो नारी के प्रति विराग की भावना रखते ही थे, जैसा कि कहा जा चुका है। समाज में नारी के प्रति दो विरोधी मनोवृत्तियाँ समाज में व्याप्त थी। एक ओर आध्यात्मिकता को प्रधानता देने वाला

विरागी वर्ग उसको मानवोन्नति का अवरोध मान कर उससे दूर रहने का निर्देश देता था, दूसरी ओर विलास और भौतिकता-प्रधान वर्ग उसे जीवन की अत्यावश्यक सामग्री मानकर उसके सान्निध्य को सुखमय मानता था। इस रूढिग्रस्त वातावरण में नारी व्यक्तित्वहीन अशक्त थी। इन्ही अगतिशील परम्पराओ के मध्य वह जन्म लेती। निग्रह एवम् आत्मदमन, आज्ञापालन एवम् पतिपरायणता का उपदेश पाकर अपरिपक्व अवस्था मे श्वसुर-गृह मे प्रवेश करती। अपनी सामाजिक मर्यादाओ एवम् परम्पराओ में केन्द्रित, अनादर अथवा आदर प्राप्त कर जीवन व्यतीत कर देती थी। उसमे न स्वाभिमान की भावना ही होती और न मातृत्व के गर्व, पत्नी की गरिमा की अनुभूति ही। फिर भी उसका जीवन त्याग और बलिदान का जीवन था[1]।

भारत के इस्लाम के साथ सम्पर्क ने परोक्ष रूप से उसकी नारी-भावना को भी प्रभावित किया। राजधर्म के अनुकरण ने भारतीय समाज के आदर्शों की नीव हिला सी दी। इस्लामी सस्कृति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवजागृति का सदेश लिए थी। मुहम्मद साहब के औदार्य ने मुस्लिम नारी के पथ पर से अवरोध तिरोहित कर उसे प्रशस्त किया था। मुसलमानो के सामाजिक जीवन की मार्ग-निर्देशिका उनकी धर्म-पुस्तक कुरान है[2]। उसमें स्त्री-पुरुष को समान पद दिया गया है[3]। इस्लाम में नारी की कानूनी स्थिति श्रेष्ठ थी। जबकि हिन्दू स्त्री को साधारण दशा मे केवल माता के स्त्री धन पर ही अधिकार प्राप्त था, इस्लाम मे पुत्री माता बहिन तथा पत्नी के रूप मे नारी को सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त था[4]।

---

१ "७१२ ईस्वी के मुहम्मद बिन कासिम के अरब आक्रमण से लेकर १७०७ ई० में मुगल साम्राज्य के पतन तक भारतीय शालीनता का इतिहास नारी अपने रक्त से लिखती रही। यह इतिहास हजार वर्षों के जौहर का इतिहास था, ससार की जातियो का आना-जाना, भारत की बार-बार की पराजय का मूल्य, भारतीय नारी के गौरव का वितन्वक।"
भगवतशरण—भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण पृ० २६४, १९५० बनारस

२ जफर—सम कल्चरल ऐस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इडिया पृ० १९५, १९३१ पेशावर

३ 'Thou' art my wife, the wife must be of the same quality (as husband) in order that things may go rightly The married pair must match each an other look at a pair of shoes and boots"
जलालुद्दीन रूमी—मसनवीज़ आफ जलालुद्दीन रूमी पृ० १२६, निकल्सन सीरीज़

४ कैलाशनाथ शर्मा—भारतीय समाज सस्कृति तथा सस्थाएँ पृ० २६७, १९५२ कानपुर

मुहम्मद साहब के आविर्भाव के पूर्व अरब में नारी पुरुष वर्ग के अत्याचार, प्रपीडन से त्रस्त थी। पुरुष की विलासी प्रवृत्ति एवम् क्षुद्र स्वार्थ उसके जीवन को एक दु स्वप्न मात्र बनाए हुए थे। विवाह मानव विकारो को सयमित करने, पशुवृत्ति का विरोध करने वाले न होकर वासनापूर्ति के साधनमात्र थे। मुहम्मद साहब से पूर्व अरब में पुत्री-जन्म एक अभिशाप समझा जाता था। बर्बर अरब कन्या को उत्पन्न होते ही भूमि में गाड देते थे। उनके यहा कब्र ही सबसे उपयुक्त दामाद समझा जाता था[1]। अन्य भौतिक सम्पत्ति के समान विधवा भी अपने पति के उत्तराधिकारी को प्रदान कर दी जाती थी[2]। मुहम्मद साहब ने मातृ शक्ति का यह अनादर, नारी के नारीत्व का क्रूर उपहास, राष्ट्रविधात्री का यह शोषण देखा और उनके समदर्शी हृदय में करुणा, ग्लानि, दया की मिश्रित भावनाओ का उद्वेलन हुआ। उन्होंने मानवता के अत्यन्त महत्वपूर्ण अश नारी जाति के तमाच्छन्न जीवन में प्रभात का आलोक दान दिया। अमर्यादित सामाजिक जीवन की समाप्ति, विवाह की सख्या के सीमा निर्धारण के साथ ही इस्लाम में नारी अपने नूतन अधिकारो के साथ शक्तिमयी हो गई।

इस्लाम के अन्तर्गत नारी

मुहम्मद साहब ने पत्नियो की सख्या चार तक केन्द्रित कर दी। अरबो में पत्नी त्याग मन की तरग पर निर्भर था, उसका उन्होने नियमन किया। कन्याओ की जीवित समाधि का विरोध किया[3]। स्त्री और पुरुष दोनो पर पवित्रता का समान बन्धन था। प्रत्येक स्त्री को अपने दहेज, परिचारक, आवास पर अधिकार था। विवाह-विच्छेद तथा तलाक विहित था। पति की मृत्यु पर स्त्री को समस्त दहेज तथा पति की सम्पत्ति का भाग प्राप्त होता था। पत्नी अपने पति के नाम पर आवश्यक ऋण प्राप्त कर सकती थी। वय-प्राप्त कुमारी को विवाह के लिए बाधित नही किया जा सकता था। परित्यक्ता को पुनर्विवाह का अधिकार था। स्त्री को कानूनी अपराध अथवा नियम भग के लिए पुरुष का आधा दण्ड मिलता था।

अपने पति की अनुमति से नारी विवाह-विच्छेद कर सकती थी। किन्तु तो

---

१ अबू मुहम्मद इमामुद्दीन—इस्लाम और गैर मुस्लिम विद्वान (इस्लाम और स्त्री) पृ० १८०, १९४९ प्र० स० बनारस

२ अबू मुहम्मद इमामुद्दीन—इस्लाम और गैर मुस्लिम विद्वान (इस्लाम और स्त्री) पृ० १८०, १९४९ प्र० स० बनारस
सी. कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एण्ड हर वेज, पृ० ९७, लदन १९२२

३ अबू मुहम्मद—इस्लाम और गैर मस्लिम विद्वान पृ० १९०, १९५२ बनारस
सी कालिवर राइस—पर्शियन वूमन एण्ड हर वेज, पृ० ९६

भी इस्लाम के अन्तर्गत भी नारी के जीवन में अनेक विषमताएँ बनी रही। कोई भी स्त्री चार पत्नियो अथवा रक्षिताओ में से एक होने में विरोध नही कर सकती थी[१]। विवाहो की सीमा निर्धारित हो जाने पर भी सरल विवाह विच्छेद के कारण नारी की दशा एवम् सामान्य नैतिकता मे कोई उत्थान नही हुआ। पुरुष को विवाह-विच्छेद का निर्विरोध अधिकार था, किन्तु स्त्री को इस विषय में कोई विशेषाधिकार प्राप्त नही था। इस्लाम स्त्री-शिक्षा के विपक्ष में था। प्राचीन अरब में पर्दे का प्रचार न था किन्तु कुरान के चौबीसवें शरह के एक पद्य में पर्दा-प्रथा की घोषणा है[२]। यह नियम जब नवी ईसवी में इस्लाम के सन्देश के साथ फारस मे लागू हुए तो वहा की नारी के उत्थान में सहायक न हो सके[३]। फारस में स्त्रियो को पहले से ही यह इस्लाम प्रदत्त विशेषाधिकार उपलब्ध थे। इस्लाम के पवित्र नियमो ने पुरुषो को नवीन विश्वास एवम् दृढता प्रदान की, किन्तु नारी की दशा में दुख और दैन्य की ही प्रधानता रही[४]।

'हरम' शब्द पवित्रता का द्योतक है, किन्तु उसके साथ ही स्त्री-पुरुष के स्वच्छन्दतापूर्ण मिलन पर नियन्त्रण हो गया। 'हरम' के सीमित जीवन मे, विचारो के आयात-निर्यात का अवसर उपलब्ध न होने के कारण मुस्लिम नारी की बुद्धि सकीर्ण हो गई। उसकी धारणाए अगतिशील बन गईं, और जीवन के प्रति दृष्टिकोण सीमित और सकुचित हो गया। फारस की स्त्रियो के लिए तो पर्दा राष्ट्रीय गौरव ही रहा है[५]।

इस्लामी परपरा, एवम् लोकोक्तियो मे नारी के प्रति दृष्टिकोण

प्रत्येक जाति के इतिहास मे ऐसे युग आए जब विराग एवम् तप की

---

१. वाल्टर एम गैलिकन्स—विमेन अन्डर पोलोगैमी,
पृ० ३७, लदन १९५४

२ कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एन्ड हर वेज, पृ० १०२, १९२२ लदन

३ "It did very much to improve the position of Arabian Woman, but when the ammended laws and customs were passed on to the women of Persia it meant a retrograde step for them as they had long enjoyed an honourable and influential position"
सी० कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एन्ड हर वेज,
पृ० ६५, १९२२ लदन

४ सी० कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एन्ड हर वेज,
पृ० ६५, १९२२ लदन

५ "A Nation's greatest asset is a Pardanashin".
सी० कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एण्ड हर वेज, पृ० ९० १९२२ लदन

प्रवृत्ति, समाज मे निवृत्ति-मार्ग की भावना की प्रधानता के कारण नारी को कुप्रवृत्ति और पतन के प्रतीक रूप में चित्रित किया गया है। इस्लाम में भी परम्पराओ ने नारी को शैतान के कोडे बताकर उसे अविश्वसनीय तथा अपकर्ष का कारण घोषित किया[1]। एक ओर नारी को मानवता का अभिशाप बताया जा रहा था, वही मुहम्मद साहब जननी के चरणो तले ही स्वर्ग बता रहे थे[2]। नारी विषयक यह विरोधी भावनाए, उसकी प्रशसा और निन्दा की परम्पराएँ भारत के समान इस्लाम के प्रदेश में भी पनप चुकी थी[3]। ये ही परपराएँ भारत में आई और फलत भारतीय नारी की स्थिति में कोई सुधार उपस्थित न हो सका। मुस्लिम स्त्रिया की श्रेष्ठ कानूनी स्थिति भी नारी के लिए ग्राह्य न हो सकी। स्त्रियो के विषय में मुसलमानी परम्परा देश के अनुसार परिवर्तित होती गई। सामान्यत तुर्क अपनी स्त्रियो को अधिक स्वतन्त्रता देते थे। अपनी भारतीय वहिन की तुलना मे फारस की स्त्री उन्नति कर रही थी। भारत मे मुसलमानो ने अरबी आदर्श का अनुकरण किया, जिसने स्त्री को अत्यन्त निम्न स्तर में रखा था। विलासिता की प्रधानता के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अस्वस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत हुए। लोग स्त्रियो से उसी मात्रा में पवित्रता की आशा करते थे, जिस मात्रा में पुरुषो में इसका अभाव था[4]। मुगल शासको का प्रेरणा-स्थल फारस ही था। फारसी आदर्शों के आधार पर ही उनका एक बडा सा अन्त पुर होता था, जिसमें असख्य पत्निया एवम् रक्षिकाए प्रश्रय पाती थी। मुगल सम्राट अपने घर की वृद्धा महिलाओ माताओ एवम् वहिनो का अत्यन्त आदर करते थे, तथा उनकी भावनाओ

---

१ "Women are whips of Satan"
"Obedience to a woman will have to be repented".
"Trust neither a king, horse, nor a woman"
"What has a woman to do with the councils of a nation" —वाल्टर एम गैलिकन्स
विमेन अडर पोलीगैमी पृ० ४७, लदन १६१४

२ "Paradise lies at the feet of mother"
इस्लामिक कल्चर, १६५१ हैदरावाद

३ "I have not left any calamity more deterimental to mankind than woman" "A bad omen is found in a woman house and horses" "The world and all things in it are valuable but the most valuable than all is a virtuous woman"
कालिवर राइस—र्शियन वूमेन एण्ड हर वेज पृ० ६६, १६२२ लदन

४. दिनकर —सस्कृति के चार अध्याय पृ० ३६०, १६५६ दिल्ली

को ठेस नही पहुचाते थे[१]। वे समय असमय पर गृह अथवा राजनीति से सबधित विषयों पर उनसे परामर्श लेते थे। "राजनीतिक जीवन और स्त्रियाँ" के अन्तर्गत वताया जा चुका है कि मुगलो के शासन सचालन में उनकी गृह नारियो का भाग रहता था[२]। किन्तु अपनी विलासी प्रवृत्ति की परितुष्टि के लिए मुहम्मद साहब द्वारा निर्धारित चार पत्नियो की सीमा मुगल राजाओं के लिए अमान्य थी। ये इच्छानुसार विवाह करते तथा सुन्दरी दासियो को रक्षिता बना लेते थे। विवाह के मूल में राजनीतिक कारण भी होते थे। इन विस्तृत अन्त पुरो के प्रवन्ध के लिए अनेक दासियो तथा रक्षा के लिए नपुसक प्रहरी रखे जाते थे। साधारणत 'हरम' मे विभिन्न जातियो की २००० तक स्त्रियाँ होती थीं। उनसे प्रत्येक के पृथक कर्तव्य थे। कुछ राजा की पत्नी, पुत्री अथवा रक्षिताओ की सेवा में रहती, कुछ स्त्रियाँ सगीत का निरीक्षण करती, और कुछ राजपरिवार की महिलाओं को शिक्षा देने का कार्य करती। वादशाद दासियो द्वारा नगर व राज्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पत्र पढवा कर सुनता था[3]। महलो का जीवन विलास एवम् सौख्य से पूर्ण था। बेगमो को घन द्वारा प्राप्त समस्त सुख-सामग्री सुलभ थी।

वास्तव में मुगल सम्राटों के लिए नारी जीवन का एक आवश्यक उपकरण थी[४]। राज्य-विस्तार के लिए जाते समय, मृगया, युद्ध अथवा राज्यप्रवन्ध की यात्रा में सदा अन्त पुर (हरम) अपनी पूर्ण साज-सज्जा एवम् वैभव के साथ प्रस्तुत रहता था। नारी के प्रति उपभोग की भावना ही उनमें प्रधान थी।

---

१ "वाबर की सात वुआ हिन्दुस्तान आईं। इन सबके लिए जगह जागीर और पुरस्कार निश्चित हुए। चार वर्ष तक जव तक वह आगरा रहे हर शुक्रवार को अपनी बुआ से मिलने जाते थे।"
गुलवदन वेगम 'हुमायूनामा' सम्पादक ब्रजरत्नदास
पृ० २४, २५, ३३, स० १६८० काशी

२ रामप्रसाद त्रिपाठी—सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन
पृ० १०६

३ "These news-letters were commonly read in the king's presence by woman of mahal at about nine O'clock in the evening, so by this means he knows what is going on in his kingdom"
मनूची—स्टोरिया द मोगोर, वालूम दूसरा, पृष्ठ सख्या ३३१, विलियम इर्विन अनुवादित १६०७

४ "For all the Mohommadens are very fond of women who are their principal relaxation and almost their only pleasure"
मनूची—स्टोरिया द मोगोर, विलियम इर्विन अनुवादित पृ० ३४२

हरम की महिलाओं का जीवन

'हरम' शब्द की व्युत्पत्ति अरबी है जिसका अर्थ पवित्र है। क्रमश यह शब्द अन्त पुर के लिए प्रयुक्त होने लगा। 'हरम' में पर्दे का कठिन नियन्त्रण था। वह कोषागार था जहाँ सुन्दरतम नारियाँ मुगल शासको की वासना परितृप्ति के लिए वन्दी सी रहती थीं। मुगलकालीन चित्रकला के साक्ष्य पर उनको अपने प्रासाद के समीपस्थ उद्यान में भ्रमण की स्वतन्त्रता थी। राजकुमारियो, रानियो, अथवा रक्षिताओ को उनके पद के अनुसार वेतन अथवा पेन्शन मिलती थी। राजमहल के रोमानी वातावरण में रहनेवाली यह नारियाँ अपने सौन्दर्य परि-वर्द्धन एवम् रक्षण के लिए सतर्क रहती थी। अनेक प्रकार के उवटन, अगराग सुरमा, मिस्सी, इत्यादि उनके प्रसाधन थे। उनकी आभूषणप्रियता, वैभव एवम् प्रदर्शन की इच्छा चरम-सीमा पर रहती थी। वह दिन भर में कई बार वस्त्र परिवर्तन करती, उनके रत्न जटित वस्त्रो मे कवि की कल्पना मूर्त हो उठती। प्राय तीन से पाच लडियो के हार उनकी ग्रीवा से कटि तक लटका करते थे। एक मुक्ता-गुच्छ सिर के मध्य भाग से मस्तक के केन्द्र तक पहुचता था, जिस पर सूर्य या चन्द्र अथवा पुष्पो से सादृश्य रखनेवाला रत्न जटित आभूषण पहनती थी[1]। अवकाश के समय मे यदाकदा सगीत द्वारा वह अपना मनोरजन करती थी। उनके मनोरजन के अन्य साधन कबूतर उडाना, शतरज, चौपर, गजीफा खेलना, पतग उडाना आदि थे। काव्यरचना भी उनके अवकाश काल का एक आमोद था। गुलवदन बानू, सलीमा बेगम, जेबुन्निसा स्वय काव्य रचना करती तथा साहित्य को प्रश्रय देती थी। प्राय बेगमें अवकाश काल में फारसी प्रेम कथाए पढतीं अथवा सस्ता प्रेम काव्य सुनती[2]।

राजमहलो मे नैतिकता का कोई महत्व न था। मदिरा का निर्बाध प्रयोग होता था। केवल राजपूत रानियो को छोडकर राजभवन की महिलाए मदिरा का साधारण पेय के रूप में प्रयोग करती थीं। मुगल राजकुमारियो का जीवन समस्त भौतिक सुखो से परिपूर्ण होने पर भी रिक्त रहता। वैभव के विलास मन्दिर में भी सूनापन रहता था। अकबर ने राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा

---

१ मनूची—स्टोरिया द मोगोर, दूसरा वाल्यूम, पृ० ३३९, १९०७

२ "Among those some teach reading and writing to princess, and usually what they dictate to them are amourous verses And the ladies obtain relaxation in reading books called Gulistan and Bostan, written by an author called Seikh Sadi Chiragi and other books treating of love very much the same as our romances, only they are still more shameless"
मनूची:—स्टोरिया द मोगोर दूसरा भाग, पृ० ३३१

रोकने के कारण, अपने उत्तराधिकारियो के लिए पुत्रियो का विवाह न करने का नियम बना दिया था। इससे अवैध सबधो का आधिक्य हो गया। सौन्दर्य की हाट, रूप की प्रतिद्वद्विन्ता में प्रति क्षण एक दूसरे को तुच्छ बनाने को प्रस्तुत 'हरम' की स्त्रियो के समक्ष कर्मण्यता, अथवा उत्सर्ग का अवसर न था। यह अन्त पुर वैभव और विलास में इन्द्रलोक की समता करता था। किन्तु यह युद्ध प्रागण भी था, जहाँ ईर्षा एवम् द्वेप, कपट एवम् सन्देह के घात-प्रतिघात होते। नैतिकता के शव पर, वासना की झझा में कुचले हुए नारीत्व पुष्प धूल-धूसरित होते रहते।

भारतीय सामन्तो मे इस्लामी सभ्यता का अनुकरण

भारतीय सामन्तो एवम् उच्च वर्ग में भी दरबारी विलासिता प्रश्रय पा रही थी। राजा के अनुकरण पर छोटे रूप मे सामन्त भी उसी साज-सज्जा के साथ अन्त पुर रखते थे। उनके गृहो में भी वही हीरे मोती की जगमगाहट, मधुबाला के नूपुरो की रुनझुन थी। अरबी-फारसी सस्कृतियो के प्रभाव से उनके जीवन में भी अधिक कृत्रिमता, एवम् विलास की अभिरुचि प्रधान हो गई थी। राजा के अनुकरण पर अभिजात वर्ग में पर्दे का प्रचार अधिक हो चला। राजपूत सामन्तो में भी अनेक पत्नी एवम् रक्षिता होती थी। रक्षिताओ तथा पत्नीत्व की मर्यादा पा लेने वाली दासियो के कारण नारी के प्रति दृष्टिकोण में अनादर की भावना स्वाभाविक थी। अन्त पुर की असूर्यम्पश्या महिलाओ की पवित्रता की रक्षा के लिए यहाँ भी नपुसक दास थे। वाहर जाने के लिए पर्दा अथवा पालकी का व्यवहार होता था।

जिस प्रकार जीवन के सभी क्षेत्रो में सामन्त एवम् उमरागण मुगल शासको का अनुकरण करने का प्रयास कर रहे थे, उसी प्रकार राजमहल की रानियाँ, उनका वैभव पूर्ण कृत्रिम जीवन सामन्त नारियो के आदर्श बने थे। दिवस भर मे कई वार वस्त्र परिवर्तन करना, प्रसाधन के नवीनतम साधनो का प्रयोग करना, सुकुमारता की प्रतिमूर्ति वन कर सगीत तथा अन्य केलि-क्रीडाओ मे व्यस्त रहना ही उनकी दिनचर्या थी।

आलोच्यकाल में मुगल साम्राज्य की दुर्वलता से स्वतन्त्र सामन्त राज्यो की स्थापना होने लगी थी। स्वामिभक्ति, कर्तव्य-परायणता का परित्याग कर सामन्त राज्यलिप्सा के लिए निकृष्ट कार्य भी करने को तत्पर थे। जिस परम्परा अथवा काल में वह जन्म ले रहे थे, उस समय क्षुद्र स्वार्थ के लिए पुत्र पिता का विरोध कर रहा था। रक्त सम्बन्ध की ममता को त्याग कर वन्धु-वन्धु की हत्या कर रहा था। राजनीतिक षड्यन्त्रो, प्रवचनाओ के इस युग में सभ्यता सकुचित थी, मानव की रचनात्मक प्रतिभा कुठित हो गई थी। इस पृष्ठभूमि में पला हुआ पुरुप कई विवाह करता था, रक्षिताओ को प्रश्रय देता था। अनाचार को आश्रय देकर वह नारी से एकनिष्ठ-पतिव्रत की आशा करता था, यह तो स्वाभाविक ही

है। पेल्सएवर्ट ने इन सामन्त तथा उमराओ के गृहो की नारी के जीवन का सजीव चित्रण किया है[1]।

वैभव एवम् सामन्ती परम्परा में पली नारी शारीरिक परिश्रम को असम्मान-जनक समझती थी। उच्च वशो में विधवा विवाह की प्रथा नही थी। सामत की मृत्यु पर उसकी अनेक स्त्रिया अपने व्यक्तिगत वैमनस्य व द्वेप को लेकर एक ही चिता पर भस्म हो जाती थी। वैभव के स्वप्निल अचल, विलास के मधुकानन में विश्राम करने वाली इन नारियो का जीवन पुष्प-शैया की भाति न था। एक सामान्य सन्देह पर अथवा अकारण ही वह पति द्वारा परित्यक्त की जा सकती थी। ऐसी दशा में निरुपाय नारी, जिसने परिश्रम करना जाना ही नही था, पथ की भिखारिणी, दासी अथवा पतिता बन जाती थी, या आत्मघात कर लेती थी। विश्व के इतिहास में मध्ययुग सामन्ती सभ्यता का जीवन रहा है। समाज के अल्प-सख्यक वर्ग ने अपनी स्वार्थपूर्ति का आधार शोपण बनाया। इसी शोपित वर्ग में नारी भी थी, जो शताब्दियो से उसके अत्याचार प्रपीडन एवम् अन्याय को मूक होकर सह रही थी। स्वर्ण-रजत की जगमगाहट से नयनो को चकाचौंध करने वाले इस युग के समाज का मापदण्ड धन और स्वार्थ था। सुरा की मादकता, नूपुर-ध्वनि की मधुरता, और वासना की तरलता में समस्त विधि-निपेध और नैतिक आदर्श डूब गए थे। इस विलास-जर्जर सामन्ती परम्परा मे नारी की गरिमा एवम् गौरव विनष्ट हो गया था[2]।

मुग़ल साम्राज्य से प्रभावित सामन्ती जीवन में नारी अपने आदर्शों से अवश्य

---

१ उनके कुत्सित एवम् अनाचार पूर्ण जीवनका चित्रण कर पेल्सीवर्ट आगे कहता है —

"These wretched women wear indeed the most expensive clothes, eat daintiest food, and enjoy all worldly pleasures, except one and for that one they grieve saying they would willingly give anything in exchange for a beggar's poverty"

पेल्सवर्ट—'जहागीर' स इडिया स मोरलैन्ड पृ० ६६।

२ "सामन्त युग के स्त्री-पुरुष सम्बन्धी सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यन्त सकुचित लगता है। उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री का शरीर यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अचल छोर को हमारी मध्ययुग की सती और हमारी बाल-विधवा अपनी छाती से चिपकाए हुई है, और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या। "न स्त्री स्वतन्त्रयर्हति" के अनुसार उस युग के आर्थिक विधान में भी स्त्री के लिए कोई भी स्थान नहीं और वह पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती रही।"

पन्त—आधुनिक कवि भूमिका : पृ० २३, स० वि० २००३, इलाहाबाद

था[1]। उस रूढिग्रस्त वातावरण मे नारी की मर्यादा एवम् पवित्रता देव-मन्दिर में नूपुरध्वनि में अश्रु वहा रही थी। पवित्र उत्सवो पर मन्दिरो तथा सस्कारो मे, गृह में नर्तकियो का नृत्य धर्म एवम् समाज का अग वन गया था। वाल-विवाह, विपम-अवस्था के विवाहो से नैतिकता का स्तर और भी गिर गया था।

सामाजिक जीवन के अन्तर्गत कहा जा चुका है कि आलोच्ययुग मे सयुक्त-परिवार प्रणाली थी। पत्नी की स्थिति का निर्धारण पितृसत्ता-प्रधान आदर्श पर हुआ था। नारी का परिवार से पृथक कोई व्यक्तित्व नही था। उसके जीवन की पूर्णता, चरम सार्थकता आदर्श पत्नी एव माता वनने में ही थी। साधारणत पति के जीवन काल मे पत्नी को गृह व्यवस्था में पूर्ण अधिकार था। इस समय वह गृहलक्ष्मी, सास-श्वसुर की स्नेहपात्री तथा गृह के अन्य सदस्यो के आदर एवम् स्नेह की भाजन थी। वह अन्नपूर्णा कही जाती थी और ममता, कर्मण्यता और कर्तव्य-परायणता उसकी विशेपताएँ मानी जाती थी। निम्नवर्ग एवम् श्रमिकवर्ग की स्त्रियो का जीवन परिश्रम को पाप समझने वाली अभिजात वर्ग की स्त्रियो की तुलना में कठोर अवश्य था, किन्तु वह तुलनात्मक दृष्टि से आत्म-निर्भर थी। परित्यक्त किए जाने पर वह दूसरा विवाह कर सकती थी। जनसाधारण में नारी का जीवन सामान्यत सन्तोपमय था। उसे परिवार के व्यक्तियो का सौहार्द्र उपलव्ध था। उत्सव, पर्वों की व्यवस्था, धार्मिक कृत्यो के विधान मे उसे अपने सामाजिक अधिकारो का अभाव खटकता न था[2]। गृह-प्रवन्ध की सलग्नता में वह आत्म-तुष्ट थी, उस मूक पशु के समान जो किसी भी खूटे से वाध देने पर कुछ समय पश्चात् चवर्ण कार्य करने लगता है। परिवार की परम्पराओ मे सीमित नारी ने अपनी परिस्थिति से समझौता-सा कर लिया था। यद्यपि तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक विपमताओं मे उसे उन्नति एवम् गौरव-उपलव्धि के अधिक अवसर नही थे, किन्तु अपने परिवार के मध्य वह सुखी थी। अल्टेकर के अनुसार नारी जीवन की यह विपमताएँ केवल सैद्धान्तिक पक्ष ही में घटित होने वाली थी, अथवा उभयनिष्ट थी, केवल कुछ विराग-प्रधान प्रवृत्ति के व्यक्ति ही उसे शूद्र के समकक्ष घोपित करते थे। सामान्य व्यक्तियो के लिए वह पवित्रता, धार्मिकता एवम् आध्यात्मिकता की प्रतीक थी। वह राष्ट्रीय सस्कृति की सरक्षिका थी, एवम् सस्कारो के विधानो की विधात्री थी[3]।

०

---

१ तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, स० रामचन्द्र शुक्ल—पृ० २८६, संवत् १९८० काशी

२ अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४३६

३ अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४३६, ४३७

साहित्यिक प्रतिक्रिया

पाई है। तत्कालीन वातावरण में किसी अन्य प्रकार के साहित्य का सर्जन असभव था, द्विवेदी जी ने इस तर्क को निर्मूल सिद्ध किया है[1]।

तत्कालीन राजनीतिक जीवन में अवसाद एवम् नैराश्य की छाया व्याप्त थी। धर्म के क्षेत्र में भी वज्रयानी सिद्धो और नाथपथी योगियों द्वारा मन्त्र-तन्त्र एवम् कर्मकाण्डो को प्राधान्य दिया जा चुका था। जनसाधारण सिद्धो एवम् योगियों की बानियो तथा उनके सिद्धान्तो से अभिभूत था, किन्तु शास्त्रविद् पण्डित ब्रह्मसूत्रो, उपनिषदो और गीता पर भाष्य लिखकर भक्ति के नवीन सिद्धान्तो की उद्भावना कर रहे थे, इन सबसे पोपण और प्रौढता प्राप्त भक्ति के प्रवाह से जन-हृदय को शक्ति तथा सात्वना मिली। रामानुजाचार्य द्वारा शास्त्रीय पद्धति पर प्रतिपादित भक्ति निर्बल का अवलम्ब बनी। गुजरात के श्री मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित वैष्णव सम्प्रदाय से प्रेरणा पाकर जयदेव के कृष्ण-राधा प्रणय की रागिनी अमर हो उठी।

ईसा की पद्रहवी शती में रामानन्द की शिष्यपरम्परा में रामानुज ने विष्णु-अवतार राम की उपासना के लिए सम्प्रदाय की स्थापना की। वल्लभ ने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति लेकर कृष्णोपासना की नवीन परम्परा का प्रवर्तन किया। इस प्रकार सगुण भक्ति-मार्ग की राम-कृष्ण काव्यधाराओ का प्रारम्भ हुआ। इन विशिष्ट साधनाओं के अतिरिक्त जनसाधारण के लिए सुलभ सामान्य भक्ति-मार्ग निकालने का प्रयास हो रहा था। नाथपथी योगी जन-सामान्य के लिए जाति-पाँति के भेदभाव से परे एक सामान्य भक्तिमार्ग को निकालने की चेष्टा कर चुके थे, किन्तु उनकी साधना में हार्दिकता का अभाव था। कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्तिमार्ग मे हृदय पक्ष को प्रधानता दी गई[2]।

---

१. "मैं इन दोनों बातो का प्रतिवाद करता हूँ, अगर यह बातें मान भी ली जावें तो भी यह कहने का साहस करता हू कि फिर भी इस साहित्य का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि दस सौ वर्ष तक दस करोड़ कुचले हुए मनुष्यों की बात भी मानवता की प्रगति के अनुसन्धान के लिए केवल अनुपेक्षणीय ही नहीं बल्कि अवश्य ज्ञातव्य वस्तु है। ऐसा कहके मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"

हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २

२ "कबीर ने जिस प्रकार निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदान्त का पल्ला पकडा उसी प्रकार ईश्वर की भक्ति के लिए सूफियो का प्रेमतत्व लिया और अपना निर्गुण पथ बडी धूमधाम से निकाला।"

रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४,

स० २०१२ काशी

हिन्दी साहित्य में भक्ति की यह दो धाराएँ काव्य में प्रस्फुटित हो दो शताब्दियो तक बराबर समानान्तर चलती रही। निर्गुण काव्यधारा की दो शाखाएँ हो गई— सन्तकाव्य तथा सूफी काव्य। सगुण काव्य का पर्यवसान कृष्ण एवम् राम-भक्ति धारा में हुआ। प्रेम-मार्ग अथवा सूफी-काव्य में कवियो ने कल्पित प्रेम-कहानियो, हिन्दू घर की प्रचलित लोक कथाओ को लेकर लौकिक प्रणय द्वारा दिव्य प्रेम की व्यजना की। इन सूफी कवियो ने परमात्मा को स्त्री और जीवात्मा को पुरुष मान कर उसके प्रति प्रणय-निवेदन किया। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्त को लेकर, रामभक्त कवियो द्वारा दैनिक जीवन के कर्मक्षेत्र में राम के आदर्शात्मक चरित्र की अवतारणा की गई। तुलसी ने अविश्वास की झझा से त्रस्त जनता को जीवन-मार्ग पर चलने का मधुमय पुण्य प्रकाश रामचरितमानस द्वारा दिया। वल्लभ ने भगवान कृष्ण के आनन्दमय रसेश्वर स्वरूप को लेकर जिस प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रचार किया, अष्टछाप द्वारा अभिव्यजना पाकर वह जन-हृदय के अत्यन्त निकट थी।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही वीरकाव्य की गौरवमयी परम्परा चली आ रही थी। इस वीरकाव्य का वर्ण्य विषय युद्ध और प्रेम, वीर और शृगार ही था। नारी नख-शिख चित्रण, युद्धवर्णन इन वीर-गीतो के आवश्यक अग थे। आलोच्यकाल मे यद्यपि वीरता और शौर्य को प्रश्रय देने वाले राजपूत अधिकार-च्युत हो गए थे, किन्तु वीरगीतो की परम्परा अनवरत चल रही थी। पराभव के अवसाद के मध्य भी चारण-चारणी वीररसात्मक काव्य का सर्जन कर रहे थे। इन वीर-काव्यो में नारी के दो रूप मिलते हैं, युद्ध में विजेता की अधिकृत वस्तु बनने वाली रूपसी कामिनी और वीरता से पूर्ण आदर्श रूप।

आलोच्यकाल के अन्तर्गत मुगल शासनकाल में देश वाह्य आक्रमणों से सुरक्षित था, अत वैभव अपने चरमोत्कर्ष पर था। फारसी और ईरानी सस्कृति के सम्पर्क से विलासिता को प्रश्रय मिला। युग की प्रवृत्ति के प्रभाव से कालान्तर में कृष्ण-भक्ति शाखा की प्रेमलक्षणा भक्ति का पर्यवसान, रीतिकालीन नायक-नायिका प्रणय-लीला वर्णन में हो गया। शाही दरबारो में प्रश्रय पाए हुए साहित्य में सस्ते प्रेम एवम् विलासिता को प्रश्रय दिया गया। रीति एवम् अलकार को काव्य की आत्मा मानने वाले इन रीतिकालीन कवियो ने रस, अलकार और नायिकाभेद पर काव्य रचना की[१]।

---

१ "इसमें सन्देह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक् समावेश पहले-पहल आचार्य केशवदास ने ही किया। पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखण्डित परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के प्राय पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।"

रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३२
स० २०१२, काशी

रीतिकाल में कवि और आचार्य का एकीकरण हो गया। जब तक काव्य में अलकारों का निर्देश, नायिकाओ के नवीनतम भेदो की उद्भावना न होती, वह उस युग के मापदण्ड पर खरा न उतरता। इस युग में तीन प्रकार की कविताए सामने आती हैं —शृगार, भक्ति और रीतिविषयक। पर साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति रूढ़िवादिता और शृगार-परायणता थी। सस्कृत साहित्य के विभिन्न सम्प्रदाय और वादो में ध्वनि, रस और अलकार ग्रहीत हुए, शृगार का रसराजत्व सर्वमान्य था। शृगार के विभिन्न रूपों में उद्दीपन-विभाव ने ही कवियो को अधिक आकर्षित किया। नारी शृगार के उपकरण रूप में प्रस्तुत हुई।

साहित्य जीवन की ही अभिव्यक्ति होता है। युग की परिस्थितियो से प्रभावित मानव की आशाएँ, आकाक्षाएँ तथा विचारधाराएँ तत्कालीन साहित्य में व्यजना पाती हैं। कवि अथवा साहित्यकार अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता, एवम् आदर्शों को रखते हुए भी समकालीन परिस्थितियो के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता है। जिस देश एवम् काल में साहित्यकार उत्पन्न होकर, पालित-पोषित होता है, उसकी परिस्थितियाँ साहित्यकार के उपचेतन मन पर अपनी स्थायी एवम् अमिट छाप लगा देती हैं। आलोच्य साहित्य इस स्वयसिद्ध सत्य का अपवाद नही है। साहित्य की विभिन्न धाराओ के कवियो पर उनकी समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवम् धार्मिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्पष्ट है। आलोच्यकाल के प्रारभ में समाज मे धर्म को प्रमुखता मिली थी। इहलोक की असारता से विमुख मानव परलोक चिन्तन में रत था। अत स्वभावत ही वह आध्यात्मिक साधना में बाधक पुत्र-कलत्र-धन की मोहमाया के परित्याग के पक्ष में था। अत भक्तिकाव्य की सभी धाराओ ने सैद्धान्तिक मतभेद होते हुए भी विराग और सयमपूर्ण जीवन को ही काम्य बताया। आध्यात्मिक साधना के सर्वप्रमुख अवरोध, माया के सबसे प्रबल आकर्षण नारी के परित्याग की प्रवृत्ति सन्तकाव्य, रामकाव्य तथा कृष्णकाव्य में मिलती है। तत्कालीन सामाजिक विषमताओ के मध्य नारी की हीन, अनैतिक स्थिति ने ही उनको नारी के वासनामय, कृष्ण रूप के अकन की प्रेरणा दी।

समय के अनवरत गतिमान चक्र के साथ जीवनगत परिस्थितियो एवम् आदर्शों में भी अन्तर हुआ। मुगलो की सफल राजनीति की क्रोड में विश्राम करती हुई विलासिता की छाया ने युग और समाज को आच्छन्न कर लिया था। शृगार के मदमत्त प्रवाह में नैतिक मान बह गए थे। तत्कालीन समाज में व्यक्ति का उद्देश्य सौख्य एवम् विलास की उपलब्धि ही था। अन्य विलास सामग्रियो में नारी भी परिगणित की जाती थी। इन परिस्थितियों के मध्य विकसित साहित्य मे शृगार रस का बाहुल्य होना स्वाभाविक था। इन विलासपूर्ण परिस्थितियो का प्रभाव रीतिकाव्य की अतिशय शृगारिकता और विलास की भावना के रूप में स्पष्ट है। इन शृगारी कवियो ने शृगार रस के अग-उपागों पर काव्य रचना की। नायिकाभेद, ऋतुवर्णन,

नखशिख-चित्रण काव्य के आकर्षक अग बने। इन शृगारी कवियो का नारी के प्रति दृष्टिकोण कौतुक अथवा मनोविनोद का ही है। आलोच्य वीरकाव्य का अधिकाश भाग इसी भोग-प्रधान वातावरण में प्रणीत हुआ। अत उसमें वीर रस के उद्रेक के स्थान पर शृगारी भावनाओ का ही प्राधान्य है। इन वीरकाव्यो में वर्णित नारी का ओजस्वी, शौर्यपूर्ण रूप उसके कामिनी रूप में प्रच्छन्न हो जाता है।

: ३ :

वीरकाव्य में नारी

हिन्दी साहित्य के पुण्य प्रभात में रण और विलास दोनो में राजाओ के सहचर चारणो ने, मा भारती के चरणो मे वीरगाथा की श्रद्धाजलि अर्पित की। उस समय वीररस के आलम्बन थे सघर्ष प्रिय राजपूत सामन्त। सामान्य मानापमान पर शोणित की धारा बहा देना, मिथ्या अहम् की पुष्टि और सुन्दरी नारी की प्राप्ति के लिए सहार लीला करना जिनका सिद्धान्त था। इन वीरो के हृदय में शौर्य एवम् प्रताप का मदमत्त प्रवाह था और साथ ही स्वर्गादपि-गरीयसी जननी जन्मभूमि के लिए अनन्त अनुराग और श्रद्धा की भावना। अपनी कुल-मर्यादा के लिए प्राणोत्सर्ग करना अत्यन्त गौरवास्पद समझा जाता था। इनकी कुल-ललनाएँ भी सघर्ष और शौर्य की दोला पर आत्मोत्सर्ग एवम् देश-प्रेम के पाठ पढती थी। विलास-शैया की सुन्दरी जीवन-धन को अपने हाथो ही रणसज्जा मे सजाती। युद्ध में पति की गौरवमयी मृत्यु उनकी काम्य थी, चिता और सहमरण ही उनकी अनन्त सुहाग-शैया थी। राजस्थान का डिंगल-काव्य नारी हृदय की गौरवपूर्ण भावनाओ से आन्दोलित है[1]। रण के वाद्य सुनकर कामिनी भयभीत नही होती थी, प्रत्युत रण उनके क्षात्रधर्म के आदर्श के अनुसार एक महोत्सव था, जिसमें भाग लेकर वीरगति प्राप्त हुए पति की सहगामिनी बनना राजपूत रमणी के लिए पुण्य एवम् कल्याणमय था[2]।

समय ने हिन्दू जाति के गौरव पर पराभव की कालिमा को आच्छादित कर

---

१ "घर आगण माहे घणा, त्रासै पडिया पडाव।
युद्ध आगन सोहै, जिके गालम वास वसाव॥"
वाकीदास—डिंगल में वीर रस, पृ० ७५, प्र० स० १९९७
—मोतीलाल मेनारिया

२ "आज घरै सासू कहै, हरख अचानक काय।
वहू वलेंमा हूलसै, पुत्र मरेवा जाय॥"
सूर्यमल्ल—डिंगल में वीर-रस पृ० १०५

"नायण आज न माड पग, काल सुणीजे जग।
धारा लागी जै धणी, तो दीजै घण रंग॥"
सूर्यमल्ल—डिंगल में वीर-रस पृ० १०६

२ और ३ सख्या के उद्धरण कविराज सूर्यमल्ल की रचना से उद्धृत हैं जो आलोच्यकाल से आगे के हैं।

दिया। राजपूत-वशोत्पन्न मानसिंह महानता को विसरा कर विजेताओ के प्रताप से अभिभूत हो उनसे रोटी-वेटी के सम्वन्ध करने लगे। पराभूत देश के कवियो के समक्ष वीररस के आलम्वन न थे, भस्मावगुण्ठित अग्निकण के समान यत्र-तत्र शौर्य एवम् वीरत्व के छिट-पुट उदाहरण उपलब्ध थे। आलोच्यकाल में राजस्थान में कवियो ने चारणकाल की वीर एवम् शृगार रस की मिश्रित परम्परा को स्थायित्व दिया। राजस्थान में १५०० से १८०० तक वातो, ख्यातो, मुक्त छन्दो के रूप में वीर-काव्यो की परम्परा चलती रही। इस काल में वीर-काव्य का नेतृत्व व्रजभाषा के कवियो ने किया। व्रज की कोमलकान्त पदावली वीर रस की सम्यक अभिव्यक्ति करने में असमर्थ थी, अत प्राचीन डिंगल के अनुकरण पर व्रजभाषा को मोडा गया। किन्तु युद्ध-क्षेत्र की भीपणता के लिए प्रस्तुत नादात्मक कठोरता एक असफल प्रयास वन गई। इस काल के वीर काव्य-सृष्टा, एकाध अपवादो को छोडकर सामन्ती जीवन की निश्चिन्तता, वैभव एवम् विलास की भूमिका के अभिनेता थे। युद्धक्षेत्र का व्यावहारिक अनुभव उन्हें न था, अत वर्णन के लिए उन्होने पूर्ववर्ती चारणो का ही सहारा लिया। पर आलोच्यकाल के वीर-काव्य में भी नारी के दो रूप मिलते हैं—वीर और शृगारी[1]। यद्यपि इस समय भी नारियो के प्रताप और शौर्य के उदाहरण मिलते हैं, पर युग की परिस्थितियो तथ विलासिता के कारण वीर-काव्य में भी उसके शृगारिक रूप को ही अधिक प्रधानता मिली[2]।

परवर्ती वीर-काव्य का वर्णनीय विपय सामन्त-युग का उच्छृङ्खल शौर्य, नारीत्व की महिमा और वीरो का आत्मोत्सर्ग था, किन्तु इस काल में प्रशस्ति के रूप में व्रज-भाषा मे काव्य रचना की एक नवीन परम्परा प्रस्तुत हुई। इन कवियो की प्रवृत्ति चरित्र-चित्रण की ओर न थी। ऐतिहासिक सामग्री की वहुलता होने पर भी, इनके काव्यो में इतिवृत्तात्मक शैली का आश्रय लेकर व्यक्तियो, घटनाओ और वस्तुओ का उल्लेख मात्र मिलता है। मानव हृदय की सूक्ष्म वृत्तियो

---

१ "उपेक्षित नारीत्व इस प्रक्रिया के फलस्वरूप शृगार की प्रेरणा वन गया। एक ओर राजनीतिक विषमताओ ने जहाँ उसको जलकर भस्म हो जाने की शक्ति दी वहीं सामाजिक क्षेत्र में उसकी सुलभता, सरलता और सौन्दर्य ने उसके व्यक्तित्व को अनुरजक मात्र वना दिया। वाह्य और आन्तरिक कारणो के कारण उनका जो रूप वना उसमें दो भावनाएँ प्रधान थीं—शौर्य और शृगार।"

सावित्री सिनहा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० २४, १९५३ दिल्ली

२ "वीर-काव्य के नाम पर लिखे साहित्य में नारी के ओजस्वी रूप प्राय नहीं मिलते हैं। इस युग की हिन्दी रचनाओ में चित्रित नारी चण्डी और दुर्गा नहीं केवल कामिनी है।"

सावित्री सिनहा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० २५

के विश्लेषण, भावनाओ के घात-प्रतिघात के चित्रण की क्षमता इन कवियो में न थी। उन्होने अपने पात्र-पात्रियो की परम्परागत विशेषताओ का ही उल्लेख किया है। शृगारिक भावना के अनुरोध से नारी के रूप-चित्रण में नख-शिख एवम् सौन्दर्य का निरूपण हुआ। नायिका के रूप में उसका चित्रण कर नारी-भेदो का परिगणन हुआ। इन वीर-काव्यो में नारी का दूसरा रूप उज्ज्वल एवम् महान है। उसका विकास कर्तव्यपथ पर दृढ रहने वाली वीर क्षत्राणी, पतिहित सर्वस्वार्पण करने वाली सती, वीरता एवम् शौर्य के उन्मेष द्वारा कर्तव्य-भावना का जागरूक करनेवाली महिमामयी जननी के रूप में हुआ है[1]। रीतिकालीन युग के वासनात्मक शृगारपूर्ण वातावरण में नारी का यह रूप कमल-पत्रवत् के विलासिता की विषाक्त छाया से परे है।

इस युग में काव्य रचना करनेवाले चारण अथवा चारणी राज्याश्रित होते थे। विलास और यौवन की उग्र दीपावली मनानेवाले स्वामियो की छत्रछाया में शृगार काव्य की बहुलता अस्वाभाविक नही है। फिर भी वीर काव्यो का सर्जन होता रहा। वस्तुत आलोच्यकाल और उसके बाद के समय में पराभव की धूमिलता में भी कुछ चारण वीरता, पवित्रता और कल्याण के प्रतीक रहे हैं। नारी-भावना वीरता और शौर्य की भित्ति पर कर्तव्य के रगो से मूर्त हुई है।

नारी का शृङ्गारिक रूप

आलोच्यकाल हिन्दी साहित्य की दो धाराओ को मिश्रित करता है। उसका परवर्ती युग भक्ति-काल और उत्तरकाल रीतिकाल की सज्ञा से अभिहित हुआ। तत्कालीन समाज में शृगार का उन्मुक्त प्रवाह बह रहा था, राजाश्रय में रहने वाले कवियो का कार्य आश्रयदाताओ की विरुदावलि का गान तथा विभिन्न प्रकार के नारी-रूपो एवम् प्रवृत्तियो का ही वर्णन कर उनकी विलासभावना को उत्तेजित करना था। मुगल शासन की शान्ति में विलासिता की तन्द्रा में युग और समाज अगडाई ले रहा था। अत वीर-काव्य में भी नारी का शृगार-सौरभ की मादकता से बोझिल स्वरूप ही दृष्टिगत हुआ। उसके वीरागना, वीर माता और क्षत्राणी के प्राजल रूप को शृगार के धूम ने प्रच्छन्न-सा कर दिया। वस्तुत नारी का यह शृगारिक चित्रण रासो की परम्परा से उत्तराधिकार में प्राप्त था। इन रासो-ग्रन्थो में अभीप्सित सुन्दरी के नख-शिख का सागोपाग निरूपण होता था। इस प्रवृत्ति को उत्तरवर्ती वीर-काव्यो में प्रधानता मिली।

जटमल (१५६६-७१ ई०) १६२३-२८ स, मान (१६२० ई०) १६७७, स सूदन (१७६३ ई०) १८२० स० के आसपास, लाल (१७०७ ई०) १७६४ स० के आसपास और केशव (१५५५-१६१७ ई०) १६१२-७४ स०, यहा तक कि शृगार

---

१ छत्र-प्रकाश में छत्रसाल की माता लालकुंवरि ठकुरानी की प्रत्युत्पन्न मति, वीरता एव आत्मोत्सर्ग, पृ० ६३—६५ तक
लाल—छत्रप्रकाश (स० श्यामसुन्दर दास)

की तन्द्रा में वीरत्व का सिंहनाद सुनाने वाले भूषण (१६१३ ई०) १६७० स० भी नारी को विलास-शैया, प्रसाधन, कामकेलि एवम् दौर्बल्य से पृथक न देख सके। इन चारणो के आश्रयदाताओ में से अधिकाश ने मुगल आधीनता स्वीकार कर, उनके विलास एवम् वैभव की आधारशिला पर स्थित जीवन-दर्शन को आदर्श मान लिया था। अत उनके आश्रित कवियो के लिए नायिका-भेद-वर्णन[1], नख-शिख वर्णन का काव्य सर्जन स्वाभाविक ही था। इस काव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि स्वयवर की प्रथा उस समय केवल रूढि-निर्वाह मात्र थी। वस्तुत नारी भी अन्य उपभोग-सामग्रियो के समान एक आवश्यक उपकरण थी। जिसके पास शौर्य शक्ति एवम् धन की बहुलता होती, वही उसे हस्तगत कर सकता था। रूपवती नारी को देखकर अथवा उसका रूप-वर्णन सुन कामातुर व्यक्ति लालायित हो उठते। राघवचेतन अलाउद्दीन के समक्ष पद्मिनी के रूप का चित्रण करता है, यह चित्रण रीतिकालीन कविता के समान ही है[2]। मान के राजविलास में भी नारी का जो अल्प चित्रण हुआ है उसमें भी नख-शिख वर्णन की प्रधानता है[3]।

सूदन के सुजान-चरित में भी नारी के वर्णन में उसके भोगमय और शौर्य-पूर्ण दोनो रूप छिपे हुए हैं। युद्ध के लिए सन्नद्ध सुजानराज अन्त:पुर में जाकर पहले मदिरापान करता है, पुन उसके कक्ष में शृगार एवम् काम क्रीडा का नग्न चित्रण मिलता है। शृगार की मादकता में लीन कामिनी को पति को रण के लिए

---

१ जटमल कवि—गोरा-बादल की कथा—पृ० स० १०–१४ तक
स्त्री भेद वर्णन : १९९१ स० प्रयाग

२ "सेत स्याम अरु अरुण नैन राजीव विराजत
कीर चच नासिका, रूपा रमाहू लाजत
बीजा जिमि चमकत कान्ति जिमि कुन्दन सोहै"

जटमल—गोरा-बादल की कथा, पृ० स० ११

"हरि लक अक कचन वरण नार सकल सिर मुकुट मणि
अलावद्दीन सुलतान सुणि पदमिन लक्खण पद मणि"

जटमल—गोरा-बादल की कथा, पृ० स० १२

३ "भगिनी जस घर एक मन शुभ लच्छिमी समान,
वेष बाल षोरस वरस, नख शिख रूप निधान।
कहिए शुभ राजकुमारी, अच्छी अपच्छरी अनुसारी,
वपु शोभा कचन वसी, हरिहर ब्रह्मा मनहरनी।
सचि, सुरभि सुकोमल सारी, कब्बरि मनि नागिनि कारी,
सिर मोती मांग सुराजै, रावरी कनक माथ राजै।"

मान—राजविलास पृ० १०४, १०५ ना० प्र० स० काशी

प्रोत्साहन देने का अवकाश कहा है, राजा अवश्य उसे सात्वना देता है[1]। इन वीर काव्यों में नारी के शृगारी रूप की प्रधानता है। केशव के वीरसिंहदेव चरित में तो नारी केवल विलासिनी एवम् कामिनी के रूप में चित्रित हुई है। वह नित नूतन प्रसाधन, वेषभूषा से निज को सज्जित करती है, अनेक प्रकार से अपना मनोरजन करती है। वीरसिंहदेव का उसकी अनेक पत्नियो के साथ जलक्रीडा का विवरण भी मिलता है।

नारियों की दिनचर्या

कहीं वह परस्पर सलाप करती हुई, आनन्द एवम् हर्ष की दोला पर तरगित हो रही है, कही प्रिय के अवगुणो का कथन कर रही है और कही उसका गुणानुवाद। कही वीरसिंहदेव की अनेक पत्नियाँ शुक सारिकादि पढा रही हैं। उनकी पार्वती, पद्मावती आदि अनेक रूपसी स्त्रियाँ हैं जिनके साथ वीरसिंहदेव विहार करते हैं[2]। उनके प्रासाद की यह नारियाँ विविध ललित कलाओ मे पारगत हैं[3]। राजा वीरसिंह देव के अन्त पुर में रीतिकालीन वैभव एवम् विलास का वातावरण है उसमें सुन्दर मखमली गलीचो एवम् जडाऊ पलगो की सज्जा है। महाराजा वीरसिंहदेव अनेक सुन्दरियो द्वारा सेवित हैं[4]। केशव के वीरसिंहदेव-चरित में

---

१. "बैठे एक आसन सुवासन के वासन से,
भूषन उजासनु प्रकासु बहु कीनो है।
सरस विलोकि फेरि करके परस भए,
दरस परस दोऊ, रति मति कीनो है।"

सूदन—सुजान चरित पृ० ३५ से ३८ तक

२. "कहु माननि मान समेत, कहु मनावति सखि सुख हेत।
सारो कनि पढ़ावत एक, परवाने गुनि हसत अनेक॥"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २५१

"कोऊ उर सींचत तरुमूल, कोऊ तोरति फूले फूल।
एकै चतुर चुगावति मोर, लीनै सारो सुक चितचोर॥"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६८

३ "सूक्ष्म वाणी दीरघ अर्थ, पढ़ति पढावति सुकनि समर्थ।
दक्षिण दशा कहावै वाम्, गुन गन वलित सु अवलानाम्॥"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६९

४ "सदननि ते निकसी सुन्दरी महाराज के पायन परी।
मानो सेवति भांति अनन्त, निधिपति को निधि मूरति वन्त॥
बहुरि कुकुमा चन्दन वारि, चरण पखारे वारिय चारि॥"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६१

"अचल चित्त, चितवन चल वनी, सुन्दर चातुर बन मनघनी,
उर अन्तर मृदु उरज कठोर, सुद्ध सुभाव भाव चितचोर।"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६९

शृंगार एवम् विलास में रत रहने वाली रीतिकालीन नारी के रूढ रूप का ही चित्रण मिलता है। अग्निमालाओ को पुष्पशैया समझने वाली वीर, कर्तव्यपरायण नारी का अभाव है। इस सामन्ती वातावरण में नारी का कर्तव्य मान करने, गप मारने और शुकसारिका पढाने में ही सीमित है। सर्वत्र वह मानिनी अथवा सयोग प्रफुल्लिता नायिका है, जननी के कल्याण-विधायक रूप के दर्शन इस काव्य में कम होते हैं।

तत्कालीन समाज मे नारी

शृंगार के उस युग में जब मर्यादा और सीमा को तोड कर विलास का प्रवाह अबाध वह रहा था, पवित्रता के एकपक्षीय आदर्श तथा पातिव्रत पर अधिक बल दिया जा रहा था। पत्नी के वाछित गुण थे, मूक सहनशीलता धरती के सदृश धैर्य। पति को अनेक स्त्रियो से विवाह करने के लिए समाज द्वारा अधिकार था, साथ ही अपनी अतृप्ति और तृष्णा की पूर्ति के लिए वह रक्षिताओ को प्रश्रय दे सकता था। जब निरीह और मूक नारी एक ही व्यक्ति के साथ बन्धनबद्ध हो जाती थी और उससे अपेक्षा की जाती थी कि पति के निधन के पश्चात् उसके पार्थिव अवशेष के साथ वह अग्नि का आश्रय ले[1]। किन्तु यद्यपि नारी विलास परितृप्ति का साधन थी, बहु-विवाह भी प्रचलित था, किन्तु इन समस्त सामाजिक विपमताओ के मध्य भी मुख्य पत्नी पति के धार्मिक कार्यों में सहयोग देकर सह-धर्मिणी के आसन को सुशोभित करती थी[2]।

भूषण द्वारा नारी-चित्रण

युग और राज्य से विद्रोह करने वाले अमर वीरकाव्यकार भूषण (१६१३ ई०) १६७० स० ने भी नारी को उसकी तथाकथित सुकुमारता, दुर्बलता और हीनता से पृथक रखकर नहीं देखा। उन्होंने अपने चरितनायक छत्रसाल और शिवा में उदात्त विशेपताओ का समावेश किया, पर उन वीरो को जन्म देने वाली, मासपिण्ड में भावनाओ की दीप्ति देने वाली आदर्श जननी का त्याग और महत्त्व उनके युग की विलासिता की चमक से उद्भ्रान्त नयन देख न सके। उनके द्वारा वर्णित नारी रूप में प्रमुखत मुगल तथा यवन नारी की दयनीय दशा का ही चित्रण है। सभवत पर-दारा-हरण को पवित्र व्यापार समझने वाले शत्रु यवनो की असूर्यम्पश्या, ललित, कुसुम-कोमला नारी की दुर्दशा के अकन से राष्ट्रीयता के अमर पुजारी के आहत उर को यवनो के मर्मस्थान का स्पर्श करने में परितोप

---

१ "पति पतिनी बहु करै, पतिनी न पति बहु करहीं।
पतिहित पत्नी जरहि, पति न पत्नी हित बरै॥"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० १८,४ सं० २०१३ प्रयाग

२ "रानी पारवती तिहिकाल, बोली सुमति, सत्तितिहि बाल,
जोरी गाठ विवेक विचारि, वाम अंग सोभी सुखकारि॥"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० १८४

मिला होगा[1]।

नारी श्रृंगार का उपकरण

भूषण द्वारा प्रस्तुत विवरण से ज्ञात होता है कि नारी वैभव और विलास की दासी बन अपने नारीत्व एवम् महत्व को बिसरा बैठी थी। कवि ने इन भोग और विलास में रत अरिनारियो की आनंदमयी दिनचर्या के साथ उनकी वर्तमान दीन दशा की विषमता दिखाई। सूदन ने भी समान चित्रण किया है[2]।

---

१ "शिवा जी के भीषण आक्रमण के भय की अनवरत छाया में वैभव की उन सुकुमार प्रतिमाओं को ऐश्वर्य की नश्वरता व राजलक्ष्मी की चपलता का आभास मिलता है। घटित अघटनाओं का सघटन करने में निपुण निर्मम नीति का नग्न नृत्य देखने को बाधित होना पड़ता है।"

हरीश वत्रा—"रीतिकाल के दो अमर वीर काव्यकार
भूषण और लाल सप्तसिन्धु १९५५ पृ० ४१

"उतरि पलग ते न दियो है धरा पै पग
सोई निसिदिन सगवग चली जाती है,
आती अकुलाती, मुर्झाती न छिपाती गात
बात न सोहाती बोलें अति अनखाती है,
भूषन भनत बली ताहि के सपूत सिवा
तेरी धाक सुनें अरि नारी विलखाती है,
जोन्ह में न जाती, वे ही धूप में चलि जाती पुनि
कोऊ करे घाती, कोऊ रोती पीटि छाती॥"

भूषण—शिवा बावनी, पृ० ८ भूषण ग्र० हरिऔध

२ "भूषन भनत पति बाह बहिया न तेऊ
छहिया छबीली ताकि रहिया रुखन की,
बालिया बिथुर ज्यो आलिया नलिन पर
लालिया मलिन मुगलानिया मुखन की।"

भूषण—शिवा बावनी भूषण ग्रन्थावली पृ० ५

"अतर गुलाब रस चोवा घनसार सब
सहज सुवास की सुधि बिसराती है,
पल भर पलगा ते भूमि धरति पांव
भूली पान खात फिरै बान बिलखाती है।"

भूषण—शिवा बावनी, पृ० १०

"जार जार रोती क्यो बजार मीरजादी यारो
जिनका छिपाउ महताब आफताब से"

सूदन—सुजान चरित, 'राधाकृष्णदास पृ० १७१

नारी का असत रूप

आलोच्य वीरकाव्य में युग की आदर्शविहीन सस्कृति के प्रभाव से ऐसी नारियाँ भी मिलती हैं जिनके लिए क्षुद्र स्वार्थ ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। केशव के वीरसिहदेव-चरित की कल्यानदे और छत्रप्रकाश की हीरादेवी दोनो ही ऐसी नारी हैं। कल्यानदे क्षत्रिय आदर्शों को त्याग देती है[1]। हीरादेवी कपटपूर्ण है, और अपने स्वार्थ हेतु निकृष्ट कर्म भी करने को प्रस्तुत हो जाती है[2]।

नारी का वीर रूप

आलोच्य वीर-काव्य में नारी वीरागना, वीर प्रसविनी के रूप में बहुत कम दृष्टिगत होती है, किन्तु कही-कही पर उसका यह कल्याणमय रूप सुप्त कर्तव्य भावना को जाग्रत कर देश और समाज के उत्थान में सहायक होता है। लाल और मान, जटमल और सूदन इन समस्त कवियो के काव्य में नारी का वह सत और ओजस्वी रूप मिलता है, जो चिरकाल से वन्दना और उपासना का पात्र रहा है। रीतिकालीन वैभवमय, विलासयुक्त वातावरण में चित्रित नारी के इस रूप में सक्रियता और विवेक, त्याग और कर्मण्यता की भावना है। जननी और जाया दोनो ही रूपों में उनके चरित्र के इस पक्ष की सुन्दर व्यजना हुई है।

'गोरा-बादल की कथा' की पद्मिनी एक वीर नारी है। मर्यादा की रक्षा और वश का सम्मान उसके लिए सौख्योपयोग से बढ कर है। वह अपने पति से प्राणो के मूल्य पर भी सम्मान के गौरव की रक्षा करने की विनय करती है[3]। बादल की माता का वात्सल्यपूर्ण हृदय सहजभाव से अपने जीवन के आश्रय बालक की क्षेम के लिए चिन्तित है, वह बादल की स्त्री को उसे रण से विमुख करने को भेजती है। बादल की नव-विवाहिता पत्नी पहले अपने पति को विलास सुख के

"खारो खतरानी कतरानी सतरानी फिरै
बामनी बिन्यानी तुरकानी थररानी है।
काइथी अरोरी थोरी बैसनि तमोरी गोरी
काछिनी किरानी और भट्यानी महारानी है।
हीरी बहु कोरी नरनोरी तोरी पीरी भई
सूरज के तेज चन्द्रकला ज्यो परानी है।"

सूदन—सुजान-चरित, राधाकृष्णदास पृ० १६८

१ केशव—वीरसिह देव चरित—पृ० ६६-२०१३ स० प्रयाग

२ लाल—छत्रप्रकाश पृ० ५५, ५६, व ६८

३ "तजिए पीव प्रान, अवर को नार न दीजै,
काल न छोडै कोइ सीस दै जग जस लीजै।
मत कलक लगावो आपको भो सत खो बेजान,
कहै राणि पदमावती रतनसेन राजान।"

जटमल—गोरा-बादल की कथा पृ० २३

लिए आमन्त्रण देती है, किन्तु उसका वीर रूप जागरूक हो उठता है। उसके महिमापूर्ण नारीत्व में वीर क्षत्राणी बोल उठती है, विलासिनी कामिनी मूक हो जाती है[१]।

समर में विजय पाकर लौटे हुए पति का बादल की पत्नी अभिनन्दन करती है। युद्ध में वीरगति पाने वाले गोरा की पत्नी बादल से पूछती है कि "गोरा क्या रण से भाग गए अथवा समर भूमि में काम आए ?" यह विदित होने पर कि गोरा वीरतापूर्वक लड कर परलोक वासी हुए क्षत्राणी नारी का स्वाभिमान तुष्ट हो जाता है[२]। सूदन के 'सुजान चरित में' भी नारी स्वधर्मपालन में रत है[3]। पति मृत्यु के उपरान्त अग्नि का आलिंगन करना उस युग की परम्परा थी। सभी काव्यो में नारी जौहर करने अथवा सती होने को प्रस्तुत है। छत्रप्रकाश मे सभी रानियाँ पति-मृत्यु पर अग्नि में प्रवेश करती हैं[४]। इन वीरकाव्यो में नारी केवल सुकुमार, कामिनी विलास शैया की अकशायिनी, काष्ट पुत्तलिका मात्र नही है, उसकी प्रत्युत्पन्नमति आपत्तिकाल में भी जागरूक रहती है। छत्रसाल के पिता रोगक्लान्त हो 'सहरा' की ओर जा रहे थे, सेना विश्वासघात करती है। शत्रु द्वारा आक्रमण होता है। उस समय लालकुँवरि ठकुरानी कटार द्वारा शत्रु सेना का सहार करने को प्रस्तुत हो जाती हैं। सुमनादपि-कोमला नारी अवसर आने पर वज्रादपि कठोर होकर मूर्तिवती दुर्गा और रणचण्डी का रूप धारण करती है। वह वीर नारी पति-हित प्राणोत्सर्ग कर कवि की लेखनी में अमर हो गई[५], क्षत्रिय-जाति की पवित्रता, पातिव्रत तथा वीरता के प्राजल आदर्शों के अनुसार शत्रु-हस्त में पड़ने

---

१ "कन्ता रण में पैसता मत तू कायर होइ,
तुम्हें लाज मुझ मेहणो भलो न भावै कोइ।
कायर केरे मांस को गिरझवा कबहु न खाइ,
कहा कुपाइण मुख कहै हम हीं दुश्मन जाइ"।

जटमल—गोरा-बादल की कथा, पृ० २८

२. "भला हुआ जो भिड मुआ, कलंक न आया काइ,
जस जपै सब जगत में हिमरण दूढ़ों जाइ।"

जटमल—गोरा-बादल की कथा, पृष्ठ ३३

३ "वीर बाम विहँसि विहँसि कै विमान चली
हरिमन हरपि बजायो बीन हास में"।

सूदन—सुजानचरित पृ० २०७

४ लाल—छत्रप्रकाश पृ० ५७

५ "को हो तुम आवत बाढ़े चपति को हम तजै न काढ़ै
जौहर पहिल हमारे ह्वै है, और छाह तब इनकी छ्वै है।"

लाल—छत्रप्रकाश पृ० ६०

की अपेक्षा लालकुँवरि ने मृत्यु का आलिंगन श्रेयस्कर समझा[1]।

मान के राज-विलास में नारी के दृढ़तामय, आदर्शात्मिक रूप की किंचित झलक एक बार मिलती है, जब रूपनगर की राजकुमारी दिल्लीश्वर के विवाह-प्रस्ताव के साथ वैभव-लिप्सा को ठुकरा देती है एवम् स्वयवर का निश्चय करती है। क्षत्रिय कन्या के रूप में विधर्मी के साथ विवाह न करके राजसिंह को पत्र द्वारा पति निर्वाचित कर अपनी आन की रक्षा करती है[2]।

आलोच्य वीर काव्य में चित्रित नारी के दो रूप हैं रूप गौरव की आभा से दीप्त रूप और शृगारमय रूढ रूप। पद्मिनी, गोरा की पत्नी, लालकुंवरि आदि नारियो में राष्ट्र-गौरव, पातिव्रत और आदर्श के प्रति मोह है। गोरा की पत्नी का ओजस्वी रूप उन राजपूत कुमारियो का प्रतीक है जो सस्मित मुख से अग्नि-मालाओ का आलिंगन करती थी। यद्यपि समकालीन परिस्थितियो, युग की शृगार की व्यापक प्रवृत्ति के कारण इन कवियो की नारी-भावना नख-शिख, नायिका भेद से प्रभावित है। प्राय नारी का चित्रण केलिभवन की शोभावर्द्धक सामग्री के पूरक के रूप में हुआ है। जीवन्त चरित्रो से प्रेरणा के अभाव में इन कवियो ने वीरागना का अत्यल्प चित्रण किया है, किन्तु इस अत्यल्प चित्रण में ही सती के सतीत्व, पत्नी की दृढ अनुरक्ति, वीरागना के विकट साहस का आभास तो मिल ही जाता है। इन वीरकाव्यो में नारी के जीवन के दो पक्ष ही वर्णित हैं। एक विलास और सुखोपभोग के समय की कामिनी का, दूसरा पति के प्रति उत्कट भक्ति और अनुरक्ति का, जो उनमें जौहर की ज्वाला में जलने का साहस स्फुरित करता है। यत्र-तत्र प्राप्त कुछ वर्णनो के आधार पर तत्कालीन नारी की सामाजिक स्थिति का आभास मिलता है। पुरुष इच्छानुसार विवाह कर सकता था, नारी के पातिव्रत पर अधिक वल दिया जाता था। धर्म के क्षेत्र में उसे पति की सहधर्मिणी बनने का गौरव प्राप्त था। किन्तु आर्थिक एवम् जीवन के अन्य क्षेत्रो में उसकी क्या स्थिति थी, इस विषय पर वीरकाव्य प्रकाश नही डालता है।

●

---

१ "बाग छुअन पाई नहीं चढ्यौ मरन को चाउ
कटरा काढ्यौ पेट में दए घाउ पर घाउ
दै दै घाउ मरी ठकुरानी, चपतराइ दगा तव जानी
× × ×
धनि चंपति तुम राख्यौ पानी, धनि धनि लालकुंवरि ठकुरानी।"

लाल—छत्रप्रकाश पृ० ६५

२ "लहि औसर सुन्दर पत्र लिखे।
चित्र कोट धनी अवरुध रखे
हरि ज्यों सु रुकमनि लाज रखी
अवला यों राखहु आस-मुखी।"

मान—राजविलास, पृ० १०७, स० लाला भगवानदीन, काशी

निर्गुण भक्ति-काव्य में नारी

: ४ :

निर्गुण भक्ति

प्रकरण १

सन्त-काव्य में नारी

"जिसे हम आजकल सन्त-साहित्य कहते हैं वह वस्तुत 'निर्गुण-भक्ति-मार्ग' का साहित्य है[1] ।" रूढिगत सन्त शब्द की व्युत्पत्ति और उसके विभिन्न प्रयोगो को बताते हुए श्री परशुराम चतुर्वेदी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—"फिर भी पता चलता है कि सन्त शब्द का प्रयोग किसी समय विशेष रूप से उन भक्तो के लिए होने लगा था जो विट्ठल अथवा वारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी । इन लोगो में ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम जैसे सन्तो के नाम लिए जाते हैं, जो सभी महाराष्ट्र प्रान्त से सम्बन्ध रखते थे । सन्त शब्द क्रमश उनके लिए रूढ हो गया और कदाचित् अनेक बातो मे उन्ही के समान होने के कारण कबीर तथा अन्य ऐसे लोगों का पीछे से वही नामकरण हो गया[2] ।"

सन्त-काव्य की पृष्ठभूमि

अनन्त और असीम, अनादि और अपार्थिव की साधना मे रत भारतीय चिन्ता, आत्मा और परमात्मा की अभेदता एवम् एकता का निदर्शन करती रही है । अवसर एवम् स्थान के अनुकूल आध्यात्मिकता की यह धारा सतत प्रवाहित होती रही । पन्द्रहवी शताब्दी में इस धारा ने जो रूप धारण किया वह निर्गुण सन्त-सम्प्रदाय के नाम से अभिहित हुआ[3] । सन्त-काव्य का ब्रह्म सुरभि से भी सूक्ष्म, अतीन्द्रिय और गुणातीत है । सन्तो का यह निर्गुण ब्रह्म कोई अभूतपूर्व वस्तु नही है, प्रत्युत इसमें अनादि काल से आगत ब्रह्म-चिन्तन की धारा को ही सुसगठित आकार मिला है ।

---

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी—मध्यकालीन धर्म-साधना, पृ० ८७, प्र० स० १९५५ ई०

२ परशुराम चतुर्वेदी—उत्तर भारत की सन्त-परम्परा, पृ० ७ प्र० स० २००८ प्रयाग

३ पीताम्बरदत्त बडथ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १ प्र० स०, २००७ वि० लखनऊ

आदि पुस्तक वेद में बहुदेववाद को समर्थन मिला है, किन्तु ऋग्वेद के पश्चिमाश मे एकदेववाद की मान्यता के साथ सर्वात्मवाद के बीज भी उपलब्ध है। साम और ऋग्वेद काल में यज्ञो एवम् कर्मकाण्डो की जटिलता बढ गई थी और वही एकमात्र लक्ष्य रह गया। ऋग्वेद में सृष्टा की कल्पना हो चुकी थी तथा उसे पुरुष हिरण्यगर्भ, विश्वकर्मा एवम् प्रजापति की सज्ञा दी जा चुकी थी। अथर्ववेद में स्त्री देवताओ की प्रधानता मिली[1]। बुद्ध के उपरान्त बौद्ध साधना कामिनी और काचन का योग पाकर भ्रष्ट हो गई। सघ जीवन का आदर्श शृगार के प्रवाह मे बह गया, मठ विलास की रगभूमि बन गए। पच मकार उनकी साधना में सर्वथा ग्राह्य थे। जिस युग में निर्वाण के लिए प्रज्ञा-पारमिता का भोग आवश्यक माना जाता था, उसी योग की पृष्ठभूमि पर आविर्भूत हो गोरखनाथ ने इस वामाचार का खण्डन करते हुए ब्रह्मचर्य को श्रेयस्कर बताकर हठयोग का प्रचार किया। नारी को उन्होने सर्वथा त्याज्य बताया[2]।

सन्तकाव्य के उद्भव काल की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवम् राजनीतिक परिस्थितियो का विश्लेषण हो चुका है। राजनीतिक अध पतन, आर्थिक असन्तोष, धार्मिक अस्वास्थ्य, सामाजिक एवम् नैतिक पतन के मध्य सन्त कवियो ने निर्गुण ब्रह्म को अपने हृदय की अपरिमित श्रद्धा और भक्ति से ग्राह्य बनाकर सर्व-साधारण के समक्ष बाह्याचार एवम् कर्मकाण्ड से परे उपासना का एक सरल और सीधा मार्ग रखा। इन सन्त कवियो पर विभिन्न मतो एवम् सम्प्रदायो, विचारो एवम् दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रभाव पडा। उनका निर्गुण ब्रह्म उपनिषद् एवम् वेदो में वर्णित है। यौगिक क्रियाएँ-घट शून्य गगन मे विहार, उल्टवासियो की अटपटी बानी, हठयोगियो एव सिद्धो से स्पष्टतया प्रभावित हैं। इनका भाव-पक्ष एक ओर भारतीय वेदान्त के ब्रह्म को ग्रहण करता है, दूसरी ओर सूफियो की उपासना

---

१ "साराश यह है कि अथर्ववेद में हम उन सभी भावनाओं के अकुर पाते हैं जो पीछे चलकर शैवमत, शाक्तमत और तन्त्रमत के रूपो में विकसित हुई और जिसमें छन कर जिन्होंने सन्तमत के सिद्धान्तों को जन्म दिया।"

धर्मेन्द्र—सन्तकवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० ५५, पटना

२ "गुरु गोरखनाथ द्वारा निर्दिष्ट योगसाधना के अन्तर्गत बीज रूप में प्राय वे ही सब बातें प्रधानत दीख पडती हैं, जिनका प्रचार आगे चल कर कबीर साहब आदि सन्तों ने किया।"

परशुराम चतुर्वेदी—उत्तर भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५८, २००८ प्र० स० प्रयाग

पद्धति के प्रभाव से उसे प्रेम का विषय बनाता है[1]। इन सन्त कवियो मे कबीर १४५६ स० (१३९९ ई०), रैदास १६०० स० (१५४३ ई०), धर्मदास १५७५ स० (१५१८ ई०), नानक १५२६ स० (१४६९ ई०), दादूदयाल १६०१ स० (१५४४ ई०), सुन्दरदास १६५३ स० (१५९६ ई०), मलूकदास १६३१ स० (१५७४ ई०), अक्षरअनन्य १७१० स० (१६५३ ई०), प्राणनाथ १६७७ स० (१६२७ ई०), दरियाद्वय १७३१ स० (१६७४ ई०) और १८२७ स० (१७७० ई०) तथा कवयित्रियाँ दयाबाई १७७५ स० (१७१८ ई०), सहजोबाई १७४३ स० (१६८६ ई०) आदि हुई।

सन्त कवियो का जीवन के प्रति दृष्टिकोण

सन्तो के लिए इद्रिय-निग्रह का जीवन काम्य एवम् साध्य था किन्तु इन सन्तो ने बाह्य विश्व के कमनीय उपकरणो से पलायन नही किया। अधिकाश सन्त गृहस्थ-धर्म का पालन करते थे, उन्होंने अति मात्राओ का निषेध कर गृहस्थ जीवन में मध्य मार्ग को ग्रहण किया। दादू और कबीर के शब्दो में उनका उच्चादर्श ग्रहण और परित्याग के मध्य मार्ग द्वारा मुक्ति की उपलब्धि करना था[2]। ससार के कर्मक्षेत्र, काम, क्रोध, मद, मोह के सघर्ष से पराजय मान लेना वह कायरो का काम समझते थे, उनसे

---

१ "इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद के साथ हठयोगियो के साधनात्मक रहस्यवाद, और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पथ खड़ा किया।"

रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७७, द स, स० २०१२ काशी

"विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखने से पता लगेगा कि सत मत के प्रवर्तक तथा उनके सतो के अधिकांश मतव्य-यथा शून्यागमन में सुरति का आरोप तथा परमानन्द का आस्वादन योग की क्रियाए और उनका अभ्यास, भक्ति में रहस्यवाद, गुरू का गौरव जातपात, तीर्थ व्रत, आडबर-पूर्ण विधि-निषेध आदि पाखण्डों का खडन आदि उन्हें गोरखनाथ के दल से पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिले थे। इन योगियों ने उन्हे वज्रयानी व सहजयानी सिद्धों से लेकर, और उन पर आस्तिकता का रग चढा कर तथा उनकी अश्लीलता व ऐन्द्रिकता का परिहार करके उन्हे गौरवान्वित व परिष्कृत किया।"

धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी—सतकवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० ६८

२. "ना हम छाडे ना ग्रहै ऐसा ज्ञान विचार,
भद्धिभाव सेवै सदा दादू मुक्ति द्वार।"

दादू—दादूदयाल की बानी, पृ० १७०

"भजूं तोको है भजन को तजूं तोका है आन।
भजन तजन के मध्य में सो कबीर मनमान।।'
कबीर—कबीर वचनावली, पृ० २७ श्यामसुन्दरदास आ० स० ३९९६ वि० काशी

द्वन्द्व कर उन पर विजय पाना शूरवीर का कार्य है। अपने शरीर को ससार में रखते हुए अपने मन को राम में लगा दो। कष्ट, विपत्ति, अथवा उसकी ज्वाला तुम्हे स्पर्श भी नही कर पावेंगी[1]। सन्तो का मध्य-मार्ग जगत का सापेक्षिक दृष्टि से अस्तित्व मानता है। जब मानव जगत के मोहक प्रलोभनो से सघर्ष कर शाश्वत सत्य की उपलब्धि कर लेता है, तब उसके लिए इस जगत का कोई अस्तित्व नही रह जाता है। विश्व के सघर्ष से परागमुख होना भगवद्भक्तों के लिए अगौरव की वस्तु है उसे मानव के अभ्यन्तर में चलने वाले इस युद्ध में शूर का भाग लेना है, इसके लिए दृढता एवम् लगन आपेक्षित है। सन्तो का आदर्श ससार के मध्य निर्लिप्त एवम् अनासक्त भाव से रहना है। यह अनासक्ति वाह्य आचरणो से सबधित न होकर अभ्यतर की वस्तु है। इसी अनासक्ति का सबल लेकर सन्तो ने गृहस्थ जीवन में मुक्ति पा ली[2]। इन सन्त कवियो के अनुसार आत्मपीडन द्वारा कभी सम्यक मार्ग की प्राप्ति नही हो सकती। मानव तन परमात्मा तक पहुँचने की साधना का एक सोपान है, अत उनका पूर्ण सरक्षण एवम् सदुपयोग वाछित है। इन सन्तो की साधना अन्तर्मुखी थी। समस्त वाह्याचार आदि के वह घोर विरोधी थे, उनके अनुसार कावा और कैलाश, मन्दिर और मस्जिदो में ढूढने के स्थान पर भगवान से अपने हृदय में साक्षात्कार किया जा सकता है, केवल शुद्ध हृदय की एकनिष्ठ भक्ति वाछित है[3]। सन्तो में लोकहित की भावना अधिक मिलती है। वह अपनी समस्त कामनाओं और इच्छाओ को ईश्वर के अर्पित कर देते थे, प्रभु के साथ तादात्म्य पाकर उनकी इच्छा ईश्वरेच्छा हो जाती और उनकी समस्त विभूति सर्वजनहिताय थी। इन निर्गुण सन्तो की साधना का स्वरूप व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक प्रयासो में ही केन्द्रित था। उनका भगवद्-प्रेम विरागमूलक होते हुए भी सहजीवी प्राणियो के प्रति स्नेह का उद्रेक करता था। यह स्नेह निष्क्रिय न था प्रत्युत् अपने सहजीवियो के कष्ट परिहार के लाभपूर्ण परिणामों में प्रकट होता था। इन सन्तो ने कष्ट सहन करते हुए अज्ञान और कुसस्कारो को हटा कर सत्य का प्रचार किया। इन सन्तो का भी

---

१ "देह रहै ससार में जीव राम के साथ,
दादू कुछ व्यापे नहीं, काल झाल दुख त्रास।"

दादू—सन्त-बानी सग्रह भाग १ पृ० ९३

२ "सतिगुरु की असी वडाई, पुत्र कलत्र विचै मति पाई।"

नानक—ग्रन्थ साहब

३. "मोको कहा ढूढ़े वन्दे, मैं तो तेरे पास में,
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद ना कावे कैलास में।
ना तो जानो क्रिया कर्म में नहीं जोग वैराग में,
खोजी होय तुरतै मिलिहौं पल भर की तलास में।

कबीर—कबीर वचनावली, स० श्यामसुन्दरदास पृ० १०१, १०२
आठवां स० १९९६ काशी

व्यक्ति की पात्रता का मापदण्ड भक्ति ही था, तभी तो वह विपयलिप्त नृपनारी को निन्दनीय और भक्तिमयी दासी को आदरणीय बनाते हैं[1]।

संतो का नारी के प्रति दृष्टिकोण

धर्म, विराग और त्याग की भित्ति पर स्थित सत-सम्प्रदाय के विरागमूलक धर्म में नारी अपने कामिनी रूप तथा प्रलोभनो के साथ अवरोध सदृश थी। विश्व के प्रत्येक राष्ट्र एवम् युग के विरागियो ने नारी को कामिनी एवम् तप के मार्ग की बाधा मानकर उसे गर्हित बनाया है। युग-युगान्तर तक नारी पतनकारिणी, निन्दनीय एवम् त्याज्य समझी जाती रही। यह परम्परा सस्कृत के नीति-ग्रन्थो मे भी मिलती है। जैन और नाथ कवियो ने उसे योग-मार्ग की बाधा और समर्ग से पुरुप का नाश करने वाली बताया। नाथ एवम् पन्थियो का यह दृष्टिबिन्दु वज्रयानियो की घोर कामुकता एवम् इन्द्रियपरायणता की प्रतिक्रिया में विकसित हुआ था। नारी उपासना के दुष्परिणाम और अनाचारो को देखकर ही गोरख को घोपित करना पडा कि नारी के ससर्ग में लीन पुरुप सरिता के तट पर स्थित अनिश्चित जीवन वाले वृक्ष के समान है[2]। इसी परम्परा में सन्तो ने नारी को अविद्या का प्रतीक, माया का शस्त्र, मोह का आवरण मानकर उसकी भर्त्सना की। कबीर ने उसे नरक का द्वार माना, पलटू ने अस्सी वर्प की जराजीर्णा में भी काम-भावना की शका की। 'नारी निन्दा को अग' 'चितावनी के अग', के अन्तर्गत सन्तो ने पृष्ठ पर पृष्ठ भर डाले। सुदरदास ने तो उसके समस्त शरीर को घृणास्पद एवम् भयकर बताते हुए उसके सम्पूर्ण अगो की घातक वन से उपमा घटित की।

इन सन्तो ने नारी के कामजनित वासनात्मक स्वरूप को घृणास्पद और गर्हित बताया। उन्होने काम मात्र को घृणित बताया और पुरुप और नारी दोनो को ही एक दूसरे के लिए कल्याणकारी और बन्धन स्वरूप माना[3]। नारी का सत रूप,

---

१ "सय्यद शेख किताब नीरखं, पडित शास्त्र विचारैं।
सतगुरु के उपदेश बिना, तुम जानि के जीवहिं मारैं।
करो विचार विकार परिहरो, तरन तारनैं सोई।
कह कबीर भगवत भजन करु द्वितीयां और न कोई॥"

कबीर—कबीर वचनावली पृ० १४८, पद १२५

"नृप नारी क्यों निंदियें क्यों हेरि चेरी को मान।
ओह मांगु सवारै निपै को ओहु सुमिरै हरिनाम॥"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली (परिशिष्ट) पृ० २५५, साखी ८७

२ "नदी तीरे विरवा नारी संगै पुरुषा अलप जीवन की आसा"

गोरखनाथ—गोरखवानी, पृ० १३७, द्वि० स० २००३, प्रयाग

३ "नारी वैरणि पुरुप की, पुरुपा वैरी नारि।
अन्तकाल दुन्यू पचि मुए कछू न आया हाय॥"

दादू—दादूदयाल की बानी, प० १७२

उसकी कल्याण-विधायिनी-शक्ति उनके लिए वन्दनीय एवम् प्रशसनीय है। पतिव्रता को अत्यन्त आदर एवम् भक्ति की पात्र कहा है। नारी के जननी स्वरूप, उसके वात्सल्य की निन्दा से कबीर जैसे सन्त भी विद्रोह कर उठे। सती का आदर्श तो सन्तो को अत्यन्त ही प्रिय लगा, उन्होने अपनी साधना की तुलना सती की साधना से की है। सन्तो ने पतिव्रता शब्द का दुहरे अर्थ में प्रयोग किया, लौकिक और अलौकिक। यह तो स्पष्ट ही है कि सन्तों ने नारी को भी भगवान् की भक्ति का अधिकारी समझा, निर्गुण सन्त कवयित्रियो की साधना इसका प्रमाण है।

यद्यपि सन्तो ने नारी को माया का ब्रह्मास्त्र, काम की कामिनी, वासना की कलुषित छाया समझ कर उसकी भर्त्सना की, किन्तु निर्गुण और सगुण दोनो से परे, अपने असीमप्रियतम के प्रति अपनी कोमल-भावनाओ की अभिव्यक्ति स्वय नारी बन कर ही की। उन्होने ईश्वर को पति माना तथा स्वय पत्नी के हृदय के असीम अनुराग, एकनिष्ठा से उसकी आराधना की[1]। ब्रह्म की प्राप्ति का साधन प्रेम को माना है। आत्मा और परमात्मा का जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है, विरहिणी आत्मा प्रिय के नयनाभिराम रूप के दर्शनो की लालसा करती है। जीवात्मा का यह प्रेम पूर्वराग के रूप में प्रकट होता है। अन्तरात्मा अपने प्रिय से पृथक् होकर विरह वेदना से व्याकुल हो जाती है। विरह वेदना के यह विदग्ध चित्रण कबीर दादू सुन्दरदास, दरिया साहिब, रैदास आदि सभी सन्त कवियो एव कवयित्रियो में मिलते हैं। यह विरह वेदना-विदग्ध स्मृति पतिगृह आई हुई नारी के हृदय में प्रियतम की स्मृति के समान है[2]।

इन सतो ने नारी बन कर अपने अविनाशी प्रियतम के साथ अभिसार किया, फाग खेला और नाना विधि केलिक्रीडाएँ की हैं। इनका अतिम लक्ष्य अपने को

---

१ "सर्वात्ममूलक रहस्यवाद में माधुर्य भाव का उदय हुआ, जो कबीर और सब प्रेमाख्यानक सब मुसलमान कवियो में विद्यमान है। वैष्णवों और सूफियो की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिको ने परमात्मा को पुरुष और जगत को स्त्री रूप प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है, जिसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में उपासना होती है, और जगत के नाना रूप स्त्री रूप में देखे जाते हैं।"

श्यामसुन्दरदास—कबीर ग्रन्थावली भूमिका पृ० ५७

२ "नैहरवा हमको नहिं भावै
साई की नगरी परम अति सुन्दर जहां कोइ जाइ न आवै,
चांद सुरज जँह पवन न पानी को सदेस पहुँचावै।
दरद यह साई को सुनावै॥"

कबीर—कबीर साहेब की शब्दावली, भाग १, पृ० ७२
१९२२, चौथी बार इलाहाबाद

परमात्मा में लीन कर देना ही है। उपास्य के साथ एकीकरण, अभेदभाव की अनुभूति ही भक्त का चरम काव्य है। अनन्त प्रतीक्षा, अविरल साधना, विरह की मर्मान्तिक वेदना के उपरान्त वह चरमावस्था आती है, जब आत्मारूपी नारी का अनन्त के साथ चिर-अभिलाषित तादात्म्य हो जाता है। इस को सतो ने आध्यात्मिक विवाह कहा है[1]। भक्त रूपी दुलहिन इसके लिए अनेक प्रकार से सामग्री जुटाती है। भय, सकोच और लज्जा के विभिन्न भावो का स्वाभाविक अकन इन सतो के काव्य में हुआ है।

नारी का असत रूप

त्याग और विरागपूर्ण साधना द्वारा शुद्ध हृदय ही प्रभु-भक्ति का अधिकारी हो सकता है, विश्वमोहिनी माया अपने विभिन्न प्रलोभनो, मनोरम आकर्षणो से मन को पथभ्रष्ट करना चाहती है। कामिनी उसकी सबसे बडी सहायिका है। उसका आकर्षण पाश अत्यन्त कठिन है, उसकी माया से निष्कृति पाना दुर्गम है। वह मानव को सत से असत की ओर उन्मुख करती है, अत सन्तो के लिए कामिनी का सर्वथा त्याग अनिवार्य है।

कबीरदास ने नारी सग को अत्यन्त दूषित और अकल्याणकारी बताते हुए कहा है कि नारी की छाया मात्र से विषधर अन्धा हो जाता है। उन लोगो को ज्ञात नहीं क्या गति होगी जो अहर्निशि नारी के सहवास में रहते हैं[2]। कामिनी रूपी सर्पिणी से गुरु कृपा से ही निष्कृति पाई जा सकती है[3]। वह बाघिन, नित-नूतन शृगार कर समस्त लोक को उदरस्थ कर लेती है[4]। उस नारी—चाहे स्वर्ण द्वारा निर्मित सुगन्धमयी अपनी जननी ही क्यों न हो—के पास बैठने का निषेध कबीर करते हैं[5]। नारी जिस नर के ससर्ग में रहती है उसके तीन गुणो का नाश कर देती है, वह भक्ति और मुक्ति की ओर उन्मुख ही नही होता है[6]। इस भव को पार करने के मार्ग में दो दुष्कर घाटियां पडती हैं, एक कनक और दूसरी कामिनी[7]। त्यागमयी पत्नी की गरिमा की विडम्बना करते हुए कबीर उसे ससार की जूठन बता कर उत्तम व्यक्तियो को उससे पृथक ही रहने का निर्देश देते हैं[8]।

---

१ "दुलहिन गावहु मगल चार
हम घरि आए राजा राम भरतार।"
कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८७, पद १

२ कबीर-सतबानी सग्रह, प्रथम भाग, पृ० ५८

३ कबीर-सतबानी सग्रह, प्रथम भाग, साखी ३

४. कबीर-सतबानी सग्रह, प्रथम भाग, साखी ४

५. कबीर—सतबानी सग्रह, साखी ७

६ कबीर—सतबानी सग्रह, साखी ८

७. कबीर—सतबानी सग्रह, साखी १

८. कबीर—कबीर ग्रन्थावली पृ० ४० साखी १४ श्यामसुन्दरदास सपादित १९२८ प्रयाग

पर नारी और नारी का कामिनी रूप अधिक घृणास्पद एवम् निन्दनीय है। स्त्री ससर्ग का वाह्य रूप मनोहर है, किन्तु उसके अभ्यतर एवम् परिणाम में घोर नर-सहारक विष है[१]। कामिनी रूपी काली नागिन के घातक प्रभाव से केवल यह लोक ही नही, प्रत्युत् त्रिलोक अभिभूत है, केवल हरिभक्त, अपनी भक्ति के प्रभाव से इससे निर्लिप्त एवम् मुक्त रह सके[२]। चरणदास (१७०३ ई०) १७६० स० भी परस्त्री और अपनी पत्नी दोनों को ही घोर आपत्ति घोषित करते है। इस कामिनी के मनोमुग्धकारी स्वरूप ने सुर, असुर, यक्ष और गधर्व को भी वशीभूत कर लिया है[३]। मलूकदास आकर्षणमयी कामिनी के नयन कटाक्षो की ओर दृष्टि-पात करने का ही निषेध करते हैं[४]। महात्मा धरनीदास (१६५६ ई०) १७१३ स० नारी को बिजली एवम् धन को फाँसी बता कर राम की कृपा से ही दोनो से रक्षा होना सभव वताते हैं[५]। साथ ही वह हरिजन स्नेही वेश्या को हरिजन से लजाने वाली पत्नी से श्रेष्ठ बतलाते हैं[६]। भक्त दादूदयाल का कथन है कि कनक और कामिनी रूपी दीपशिखा की मनोहर ज्योति पर पतग बन कर सारा ससार जल मरता है। उन्होने नारी को नागिन और बाघिन बता कर उसके दश को निदानहीन बताया[७]। उसका मुख से नाम लेने, एवम् आख से देखने तक को वह अकल्याणकारी मानते हैं[८]।

नारी निन्दा, उसको घृणित बतलाने के विषय पर निर्गुण कवयित्रियाँ मौन हैं, केवल पार्वती ने चित्त को कामिनी के पास रखने का निषेध किया है[९]। विद्वान् कवि सुन्दरदास ने तो नारी शरीर को ही नारीत्व माना है। उसके वाह्य रूप मात्र को सुन्दर बताया है। उन्होंने उसके शरीर की उपमा सघन बन से दी है[१०]।

---

१. कबीर—कबीर ग्रन्थावली पृ० ३६, सा० स० ४

२ कबीर—कबीर ग्रन्थावली पृ० ३६, सा० स० १

३ चरनदास—चरनदास की बानी, पृ० २६ और १०६

४ मलूकदास—मलूकदास की बानी, पृ० ७३

५ धरनीदास—धरनीदास की बानी (सतबानी सग्रह) पृ० ११५

६. धरनीदास—धरनीदास की बानी (सतबानी सग्रह) पृ० ११६

७ दादूदयाल—दादूदयाल की बानी, पृ० १२३, सा० ७२

८ दादूदयाल—दादूदयाल की बानी, पृ० १३१, सा० १६१

९ "धन जोवन की करै न आस, चित्त न राखै कामिनी पास"

सावित्री सिनहा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ में उद्धृत पृ० ५०

१० "कामिनी की देह मानो कहिए सघन वन
उहाँ कोउ जाइ सो तौ भूलि के परतु है।

वह उसे विष के अकुर और फूलवाली विष की लता बताते हैं। उनके अनुसार नारी के रूप की सराहना और प्रशसा करने वाले महागँवार हैं[1]।

सामान्यत समस्त सत कवियो ने नारीके कामिनी रूप की निन्दा एवम् भर्त्सना की है। उसे घृणित, भयप्रद, हानिकारक, अभिशापपूर्ण बतलाया है। यह सन्त कवि सहजयानियो एवम् वज्रयानियो की नारी उपासना देख चुके थे, उसका वीभत्स रूप देख कर उन्हें नारी की ओर से विरक्ति एवम् ग्लानि होना स्वाभाविक ही था। उन्होंने देखा कि योग एवम् विराग का प्रथम सोपान इन्द्रिय-निग्रह ही है जबकि लोक और समाज की नैतिकता शिथिल हो गई है। नारी समाज की भोगलिप्सा का साधन मात्र है। इसी दृष्टिबिन्दु से सुन्दरदास ने नारी को सुन्दरता वर्णन करने वाले काव्य को समाज के लिए बीमार की मिठाई के समान घातक बताया है[2]।

नारी के सत् रूप का चित्रण

सतो का आदर्श था नारी पति को परमेश्वर मान कर, सदा उसका निर्विरोध आज्ञापालन एवम् सेवा सुश्रूषा करने वाली, पतिव्रता हो। नारी के पतिव्रता रूप को उन्होंने अत्यन्त उच्च बताकर उसकी एकनिष्ठा और त्याग को वन्दनीय बताया। अपने पति के शव के साथ आत्मोत्सर्ग करने वाली सती उसके अनुसार महान् है। नारी का कर्तव्य है कि वह पति ही को अपना धर्म-कर्म इहलोक और परलोक समझे। जो नारी अनेक कष्टो और सतापो को सहन करती हुई, अपने घर के दु ख को पर

कुजर है गति कटि केहरि को भय जामै,
बेनी कालो नागिनीऊ फन को धरतु है।
कुच है पहार कामचोर रहै जहां
साधिकै कटाक्ष बान प्रान को हरतु है।
सुन्दरदास एक और डर तामै
राक्षस बदन पाऊँ पाऊँ ही करतु है।"

सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ४३७

१ "विष की भूमि माहि विष ही के अंकुर भए
नारी विष बेलि बढी नख शिख देखिए
× × ×
विष के तन्तु पसारि उरझाए आंटी भरि
सब नर वृक्ष पर लपटी ही लेखिए
सुन्दर कहत कोउ एक तउ बचि गए
तिनकै तौ कहू लगा लागी नाहि पेखिए।"

सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ४३८, पद २

"सुन्दर कहत नारी नखशिख निंद रूप
ताहि जे सराहै तेतो बडेई गंवार है।

सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली पृ० ४३८, पद १

२. सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ४४०

घर के वैभव से श्रेष्ठ मानती है, वही पतिभक्त नारी के नाम से अभिहित की जा सकती है।

वस्तुत, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सन्त-सम्प्रदाय में पतिव्रता शब्द के दोहरे अर्थ हैं। लौकिक पतिव्रता से उनका तात्पर्य सामान्य स्त्री से है जो एकनिष्ठ भाव से अपने पति की सेवा और उपासना करती हुई अपने परिवार-धर्म का पालन करती है। जिसके लिए चरणदास के शब्दो में पर घर के वैभव से अपना दैन्य श्रेयस्कर है[1]। विशेष, अथवा अलौकिक पतिव्रता से सन्त कवियो का तात्पर्य भक्त है जिससे इष्ट के प्रति अटल अनुरक्ति एवम् एकनिष्ठा अपेक्षित है। उसी प्रकार 'व्यभिचारिनी' शब्द का भी सामान्य और विशेष दो रूपो मे प्रयोग किया गया है, इस विषय का पूर्ण विश्लेषण आगे नारी के प्रतीक रूप में होगा।

प्रतीक रूप मे नारी

सन्तो का उपास्य निर्गुण और निराकार ब्रह्म है, जो निरुपाधि और निराकार है। निर्गुण में भी कुछ गुणो का आरोप, उपासना और भक्ति-साधन में आवश्यक है। उपनिषदो के निराकार ब्रह्म में भी उपासना के लिए गुणो एवम् सम्बन्ध भाव का आरोप किया गया। भक्ति-भाव की अतिशयता मे सन्त कवियो ने भी परमात्मा के साथ सासारिक प्रेममूलक सबध स्थापित किए। जिस गूढातिगूढ, उत्कट भक्ति, दृढ अनुरक्ति एवम् समर्पण की भावना की अभिव्यक्ति वह अपने उपास्य के प्रति करना चाहते थे, वह केवल दाम्पत्य भाव में ही सभव हो सकती थी। अत नारी को असत और माया का प्रतीक मानते हुए भी उसी के हृदय की कुसुम कोमल भावनाओ का अवलम्ब लेकर, स्वय प्रभु की बहुरिया बन कर सन्तो ने इष्ट के प्रति प्रणय निवेदन किया।

प्रत्येक देश के आध्यात्मिक इतिहास मे भक्तो ने दाम्पत्य भाव के प्रतीक के द्वारा ही भगवान् के प्रति प्रेमाभक्ति की व्यजना की। मध्यकालीन ईसाई योगी परमात्मा के साथ इस सयोग को ही आध्यात्मिक विवाह कहते थे, सूफी काव्य में भी इसी रूपात्मक भावना को प्रश्रय मिला है। हिन्दू धर्म में पुरुष और प्रकृति एवम् समस्त क्रीडा विस्तार का प्रतीक पुरुष और नारी को ही माना गया है[2]। निर्गुण सन्तो ने काव्य सम्बन्धी रूपक सन्तो से लिया, किन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार उन्होने परमात्मा को पुरुष मान कर उसकी उपासना की है। इन भक्त कवियो के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र पुरुष है, अन्य सभी भक्त उसकी पत्नियाँ हैं। दादू, कबीर

---

१ "अपने घर का दुख भला, पर घर का सुख छार।
ऐसे जाने कुलवधू सो सतवन्ती नार॥"

चरनदास—सतवानी सग्रह, पृ० १४७, दो० ४

२ पीताम्बरदत्त बडथ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—पृ० ३५४ (अनु० परशुराम चतुर्वेदी) स० २००७ लखनऊ

आदि के इसी प्रकार के कथन हैं[१] ।

स्वकीया भाव से उपासना

वैष्णव कवियो ने भी दाम्पत्य भाव के रूपक द्वारा अपने हृदय की कोमल अनुभूतियो को इष्ट के प्रति व्यजित किया किन्तु उन्होने प्रभु को प्रेमी मानकर स्वय को परकीया अथवा प्रेयसी माना । सन्तो ने स्वकीया के आदर्श को ही प्राजल और पवित्र माना है । उन्होने सती और पत्नी का ही अपने ऊपर आरोप किया ।

प्रेम के दो रूप, संयोग और वियोग

प्रेम की दो दशाएँ, सयोग और वियोग, साहित्यिक भाषा के सभोग एवम् विप्रलम्भ, का नामकरण सन्तो ने विरह और मिलन किया । सन्तो के मिलन में प्रिय और प्रेमी, उपासक और उपास्य का पूर्णरूपेण तादात्म्य हो जाता है, अत सन्तो ने सूफियो के समान मिलन का अधिक चित्रण नही किया, किन्तु मिलन से पूर्व की विरहानुभूति, सयोग की उत्सुकता, प्रिय के गुण तथा अपनी अयोग्यता का स्मरण कर चिन्ता, अभिसार की तैयारी, मिलन समय की सकुच और लज्जा आदि का चित्रण सन्त कवियो के काव्य मे बडा यथार्थ एवम् मार्मिक मिलता है ।

विरह-चित्रण

साहित्य के रसराज शृगार के प्राण विप्रलम्भ का काव्य और भक्ति दोनो ही क्षेत्रो में समादरणीय स्थान है । रहस्यवादियो ने विरह को आत्मा की अन्धेरी रात (Dark night of the soul) कहा है । हिन्दी के सन्त कवियो कबीर, दादू, नानक, मलूक, सूरदास, मीरा, रज्जब, रैदास के काव्य में उनकी विरहिणी आत्मा की अनन्त प्रियतम के प्रति व्यापक विरह की भावना मिलती है । नारी रूपी साधक ईश्वर पति की प्राप्ति की साधना के पथ पर अग्रसर हो तो है, आशा उससे आँखमिचौनी करती है, वेदना क्रीडा । कभी नैराश्य का गहनतम उसके हृदयतल को आच्छन्न कर लेता है । चरमनिराशा और अवसाद के इन क्षणो में विरहाकुल आत्मा की पुकार साहित्य में अमर हो गई है[२] ।

अनन्त प्रियतम की प्रतीक्षा की घडियाँ, उसका विरह भी अनन्त है । उसकी निर्निमेष नयनो से प्रतीक्षा करते-करते नयनो मे झाई पडती है और नाम-स्मरण

---

१ "पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अग ।
जै जै जैसी ताहिसौं, खेलैं तिसही रंग ।।"

दादूदयाल—दादूदयाल की वानी, पृ० ३४, साखी ५७

२ "तलफि तलफि विरहिन मरैं, करि करि बहुत विलाप ।
विरह अगिन में जरि गई, पीव न पूछी बात ।।"

दादू—दादूदयाल की वानी भाग २, पृ० ७०

से जिह्वा में छाले, पर वह निष्ठुर प्रियतम नही आता[1]। विरह सर्प के दशन से उद्विग्न विरहिणी का चित्त मन्त्र-तन्त्र से अप्रभावित है[2]। सन्तो का यह विरह व्यापक होकर धरती और आकाश दोनो को ही भस्मीभूत कर देता है[3]। असीम के विरह में आकुल प्रिय के शुभदर्शन को लालायित आत्मा के लिए विरह विपत्ति और दुख ही साथी है[4]। नारी का जीवन असीम त्याग और उत्सर्ग का इतिहास होता है। सन्तहृदय में स्थित विरहिणी प्रिय दर्शन के लिए, उसके स्वागत समय के आरतीदीप की सज्जा में अपने शरीर का दीपक बनाकर प्राण की बत्ती डालकर, रुधिर के तेल से स्नेहदान कर मिलन की सतत प्रतीक्षा करती है[5]।

आत्मा और परमात्मा का यह वियोग बडा दीर्घ है, रात्रि भर के वियोग के उपरान्त चकवी तो अपने प्रिय से मिल जाती है, किन्तु राम से बिछुडी आत्मा दिवा-रात्रि के अनेक चक्रो के उपरान्त भी दर्शन-लाभ नही कर पाती[6]। उस निष्ठुर प्रियतम को अपने उपासको को तडपाने ही मे सुख मिलला है[7]। इन सत कवियो के विरह चित्रण में विरहिणी हृदय की भावनाओ, अभिलाषाओं एवम् अनुभूतियो का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। विरहिणी की प्रतीक्षा जन्म-

---

१. "अखिया तो झाई परी पन्थ निहार-निहार।
जिभ्या तो छाला पडा राम पुकार-पुकार॥"

कबीर—सतबानी सग्रह, पृ० १५

२ "विरह भुवगम तन डसा मन्त्र न लागै कोय।
नाम वियोगी ना जियै जियै तो बाउर होय॥"

कबीर—(कबीर) संतबानी सग्रह, पृ० १५

३ "कबीर चिनगी विरह की तन पडी उडाय।
तन जरि धरती हू जरी, अम्बर जरिया जाय॥"

कबीर—कबीर सतबानी सग्रह, पृ० १५ सा० ३४

४ "विरह भयो बिछावना ओढ़न विपत्ति विजोग।
दुख सिरहाने पायतन कौन बना सयोग॥"

कबीर—सतबानी सग्रह, पृ० १५, सा० ३४

५ "यहि तन ··कब मुख देखो पीऊ···॥"

कबीर—सतबानी सग्रह, पृ० १६

६ "चकवी बिछुडी···राति··· ॥"

कबीर—सतबानी सग्रह, पृ० ७, दो० २

७ "बौरी ह्वै चितवत फिरूँ हरि आवै केहि ओर
छिन उठू छिन छिन गिर परूँ राम दुखी मनमोर॥"

सहजोबाई—सतबानी सग्रह, भाग १, पृ० १७१, दोहा ५

जन्मान्तर की प्रतीक्षा है। प्रियतम युग-युगान्तर से पृथक है, किन्तु विरहिणी असीम धैर्य से तपस्वी की भांति विरह की मर्मान्तिक वेदना को सहती है वह अध-जली के समान है[1]। कही विरहिणी पागल के समान प्रियतम को इतस्तत खोजती हुई घूमती है कही वह दुखिनी पथिक से प्रिय की आगमन तिथि उसकी कुशलक्षेम पूछती है[२]। विरहिणी की साधना और अनन्यता चातक के समान है[3]।

वेदना और दुख, करुणा और शोक, रुदन और अश्रुधारा के मध्य ही प्रियतम की प्राप्ति हो सकती है, हास्य और उल्लास के मध्य उसे ढूंढना व्यर्थ है[४]। सुन्दर-दास की नारी, अपलक नयनो से प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है, उपहार के लिए यौवन का अर्घ्य लिए। उसे अपने अजलि के जल के समान क्षणभगुर यौवन की व्यर्थता, एवम् नश्वरता पर विषाद है[५]। विरहिणी की दुविधा में पडी हुई, पीडा और वेदना के झूंक झूलती हुई दशा का सादृश्य गीली लकडी से दिखाया गया है। विरहिणी अपनी पीडा और वेदना के साम्राज्य की राजा अथवा रानी है। वस्तुत विरह ही तो प्रेम का सुन्दरतम रूप है। जिस हृदय में विरह की अनुभूति नही है वह श्मशान के समान है[६]। नारी-हृदय का सान्निध्य पाकर सत कवयित्रियो के काव्य में विरहिणी का दुख और दैन्य और भी स्वाभाविक रूप में मूर्त्त हुआ है[७]।

---

१ "सुंदर विरहिन अधजरी, दुख कहै मुख रोइ
जरि बरि के भस्मी भई धुवा न विकसै कोइ।"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ६८३, सा० १८

२ "पयोडा बूझै विरहिणी कहिनै पीव की बात
कब घर आवै कब मिलै जोऊँ दिन रात।"

दादूदयाल—दादू की बानी, दूसरा भाग, पृ० ५३, १५० शब्द

३ "सुन्दर पिय के कारणें तलफै बारह मास,
निसदिन कै लागी रहै चातक की सी प्यास।"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ६, दो० २६

४. "हँसि हँसि कन्त न पाइए जिन पाया तिन रोय।
जो हांसे ही हरि मिलै तो नहीं दुहागिन कोय॥"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६, दो० २६

५. "जोवन सेरा जात है ज्यों अंजुरी का नीर।
सुन्दर विरहिन बापुरी क्यो करि बांधे धीर॥"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ६८५, पद ४२

६ "विरहा बुरहा जिन कहो, विरहा है सुलितान।
जिस घट विरह न सचरै सो घट सदा मसान॥"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६, दो० २१

७ "काग उड़ावत कर थकै, नैन निहारत बाट।
प्रेम सिन्धु में परचो 'मन' ना निकसत को घाट॥"

दयाबाई—सतबानी सग्रह, पृ० १७१, पद ४

उद्दीपन रूप

संयोग काल में प्रिय के सान्निध्य मे सुख और आनन्द प्रदान करने वाली वस्तुएँ वियोग मे दुखद और काल सम प्रतीत होती हैं। चन्दन, चन्द्र ज्योत्स्ना आदि शीतल पदार्थ अग्नि के समान दाहक हो जाते हैं। वर्षा ऋतु में बादलो की उमड-घुमड दामिनी की दमक और भी वेदनाप्रद होती है[1]। सन्तो के माधुर्य भावातर्गत रूपक के अनुसार यह जीवन नैहर है, जहाँ आत्मा अपने प्रिय से विलग होकर रहती है। किन्तु प्रिय की स्मृति प्रतिक्षण उसके हृदय में रहती है। सत्, चित आनन्द के साम्राज्य में इस अगम और अगोचर का रगमहल है, उसी रगमहल में प्रिय से अभिसार सतो का काम्य है। आत्मा और परमात्मा के मिलन के मूल मे प्रेम की उद्दाम भावना है, इसी प्रेम की मदमाती भावना के पूर्ण विकास के लिए आध्यात्मिक विवाह की कल्पना हुई[2]। विकारहीन पावन अश्रुधारा से समस्त

"बौरी ह्वै चितवत, फिरूँ, हरि आवै केहि बाट।
सोवत जागत एक पल नहिं बिसरूँ ताहि॥"

दयाबाई—सतबानी सग्रह, पृ० १७१, पद ४

१ "चन्दन सीतल चन्द्रमा जल सीतल सब कोइ।
दादू विरही राम का इन रमौ कदे न होइ॥

दादू—दादूदयाल की बानी, पृ० ३६, दो० ६४

"चोवा चन्दन कुमकुमा, उडत अबीर गुलाल,
सुन्दर विरहिन के हृदै उठति अग्नि की झाल॥

दादूदयाल की बानी, पृ० ६८८, पद २६

"दामिनी चमकै चहुँ दिसा, बूंद लागत हैं बान।
सुन्दर व्याकुल विरहिण रहै कि निकसै प्रान॥'

सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ६८४, पद ४४

"माम असाढ रवि धरनि जरावै, जलत जलत जल आइ बुझावै।
रुति सुभाय जिमीं सब जागी, अमृत धार होइ झर लागी॥
जिमी माहि उठी हरियाई, विरहिन पीव मिले जन जाई।
मनिका मनि कै भए उछाहा, कारन कौन विसारी नाहा॥"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २३४

२ "हृदय में स्पष्ट भावों की स्वतत्र व्यजना हुए विना प्रेम की अभिव्यक्ति ही नहीं हो सकती, एक प्राण में दूसरे प्राण के घुल जाने की वांछा हुए विना प्रेम में पूर्णता नहीं आ सकती। एक भावना का दूसरी भावना में निहित हुए विना प्रेम में मादकता नहीं आती। अपनी आशाएँ आकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ और सब कुछ आराध्य के चरणो में समर्पित कर देने की भावना आए विना प्रेम में सहृदयता नहीं आती। प्रेम की सारी

मलिनता का परिहार हो जाता है, नारी रूपी साधक विरह की अग्नि में तपकर खरा हो जाता है, तब आत्मा और परमात्मा का एकीकरण होता है। प्रेम के उस प्याले को परमात्मा के हाथ से पीकर आत्मा युग-युगान्तर को मतवाली हो जाती है।

मिलन के पूर्व की तैयारी

नारी (आत्मा अथवा भक्त) के हृदय मे प्रिय के दर्शनो की उत्कट अभिलाषा के साथ आकुलता और उत्सुकता खेल रही है उसकी केवल एक कामना एवम् इच्छा है कि परम आराध्य के दर्शन होवें[1]। नारी प्रिय मिलन के लिए सोलह शृगार, अभिनव साज सज्जा करती है, जब अत मे निराशा ही मिलती है, तब दुख और वेदना की अतिशयता में वह चीत्कार कर उठती है[2]।

नारी प्रिय की प्रतीक्षा में है, उस लालसा में उसे शारीरिक आवश्यकताओ क्षुधा, तृष्णा और निद्रा की अनुभूति नही होती। सेजरिया वैरिन हो गई, जागते हुए ही विहान हो जाता है। पुन प्रिय मिलन की इच्छा मे वह अग्रसर होती है, लज्जा उसके चरणो को बोझिल कर देती है, गति अटपटी हो जाती है, पुन चढ-चढ कर वह उस नीचे-ऊँचे मार्ग पर गिर पडती है[3]। भक्त के हृदय की नारी

व्यजनाएँ और व्याख्याएँ एक पति पत्नी के सम्बन्ध में निहित है। रहस्यवाद के इसी प्रेम में आत्मा स्त्री बन कर परमात्मा के लिए तडपती है सूफी मत के इसी प्रेम में जीवात्मा पुरुष परमात्मा रूपी स्त्री के लिए तडपता है। इसी प्रेम के सयोग में रहस्यवाद और सूफीमत की पूर्णता है। प्रेम के इस सयोग को आध्यात्मिक विवाह कहते हैं।"

रामकुमार वर्मा—कबीर का रहस्यवाद, पृ० ६६, १९३२ प्रयाग

१ "वै दिन कब आवेगे माइ
जा कारन हम देह धारी है मिलिवो अग लगाइ।"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १९१

"अविनासी दुलहा कब मिलिगो भगतन को रछपाल"

कबीर—कबीर वचनावली, हरिऔध पृ० १४०

२ "कियौ सिगार मिलन के ताईं, हरि न मिले जग जीवन गुसाईं
हरि मेरो पिरहौं हरि की बहुरिया, राम बडे मैं तनक लहुरिया।
धनि पिय एकै सग बसेरा, सेज एक पे मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागनि जो पिय को भावै, कहि कबीर फिरि जनमि न आवै।"

कबीर—'परिशिष्ट' कबीर ग्रन्थावली, पृ० २७७

३. "तलफै बिनु बालम मोर जिया
पिया मिलन की आस रही कब लौं खरी
ऊंचे नहिं चढे जाय मने लज्जा भारी।

अपने युग-युगान्तर के प्रियतम का आह्वान करती है। सब कोई उसे परमब्रह्म की नारी बताता है यद्यपि उसका अभी प्रिय से साक्षात तक नहीं हुआ, प्रेम और विश्वास से पूर्ण कोई आश्वासन भी तो नही मिला, उसे सन्देह हो रहा है। ससार की दृष्टि में वह उसकी नारी कहलाने के मिथ्या गौरव का भार कहा तक ढोवे[1]।

भक्त हृदय की नारी स्वय अभिसारिका बनकर प्रिय को आमत्रण देती है। उसने मिलन की समस्त साज-सज्जा प्रस्तुत कर ली है पर गुरुजनो की लज्जा और सकोच से उसका उल्लास मुखर नही हो पा रहा है। प्रेम की अधिकता में उसने लोकलज्जा आदि का विसर्जन ही कर दिया[2]। चिरकालोपरान्त अन्त में साधना और तपस्या सफल होती है और 'राजारामभरतार' विवाह के लिए आ जाते हैं। हर्ष की असीमता में वधू स्वय ही मगलाचार गाने लगती है। यही चिर अभीप्सित और चरम काम्य आध्यात्मिक विवाह है।[3]

पाव नहीं ठहराय चढ़ू गिरि गिरि परौं
फिरि फिरि चढहु सम्हारि चरन आगे धरूँ।"

कबीर—कबीर वचनावली पृ० १०६

१ "बालहा आव हमारे गेह रे।
सबको कहै तुम्हारी नारी मोको इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लग कैसा नेह रे

कबीर—कबीर वचनावली, पृ० १६०, पद ३०७

२ "ये अँखियाँ अलसानी पिय हो सेज चलो
खम्भा पकरि पतग अस डोलै, बोलै मधुरी बानी
फूलन सेज बिछाइ जो राखी पिया बिनु कुम्हलानी
धीरे पांव धरो पलगा पर जागत ननद जिठानी
कहत कबीर सुनो भाई साधो लोक लाज सिरानी"

कबीर—कबीर वचनावली पृ० १६६ पद १७३, १९९६ बनारस

३ "दुलहिन गावहु मगलचार,
हमारे घरि आए राजाराम भरतार।
तन रत कर मैं मनरत करिहूँ पच तत्त बराती,
रामदेव मेरे पाहुने आए मैं जोबन मैं मोती।
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ ब्रह्मा वेद उचार,
रामदेव सगि भावरि लेहूँ, धनि-धन भाग हमार।
सुर तेतीसू कोटिक आए, मुनियर सहस अठासी,
कहैं कबीर हम व्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी॥"

× × ×

"बहुत दिनन में प्रियतम आए। भाग बडे घर बैठे आए॥"

कबीर—कबीर ग्रथावली—स० श्यामसुन्दरदास १९३८ प्रयाग,
पृ० ८७, पद १

पतिव्रता का प्रतीक

सामान्य पतिव्रता तथा परमात्मा से एकनिष्ठ प्रेम करनेवाले भक्त को एक मानकर सन्तो ने पतिव्रता की महिमा गाई है[1]। परमब्रह्म को त्याग कर अन्य देवी-देवताओ की उपासना करनेवाले भक्त को व्यभिचारिणी माना है। व्यभिचारिणी अश्रद्धा और निन्दा की पात्री है[2]। इन भक्तो के प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। निवृत्ति-परायण, सयमशील सन्तो के अनुसार उनके काम, क्रोध, मद, मोह आदि के सघर्ष का थोडा बहुत आभास सती के सघर्ष से मिल सकता है[3]।

---

१. "पतिव्रता मैली भली काली कुचिल कुरूप,
पतिव्रता के रूप पर वारो कोटि सरूप।"

कबीर—कबीर सतबानी स० पृ० ४०

"पतिव्रता मैली भली गले काच की पोत,
सब सखियन में यो दिपै ज्यो रवि ससि की जोत।"

कबीर सतबानी स० पृ० ४०

"कबीर रेख स्यदूर की काजल दिया नहिं जाइ
नैनू रमाइया रम रहा, दूजा कहाँ समाइ।"

कबीर सतबानी पृ० १९ सा० ४

"उस सम्रथ का दास हूँ कदे न होइ अकाज,
पतिव्रता नागी रहै तो उस ही पुरिस को लाज।"

कबीर सतबानी पृ० २० सा० १७

२. "पतिव्रता को व्रत गहो विभिचारिन अग छार,
पति पावै सब दुख नसै, पावै सुक्ख अपार।"

चरनदास—चरनदास की बानी, बेलवेडियर प्रे० १९०८, पृ० ९१

"पतिव्रता के एक है व्यभिचारिनि के दोइ,
पतिवरता व्यभिचारिनी मेला क्यो कर होइ।"

चरनदास—चरनदास की बानी, पृ० ९१

३ "कबीरदास के प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। भक्त का सग्राम शूर के सग्राम से भी बढकर है, सती के आत्मबलिदान से भी श्रेष्ठ है। परन्तु फिर भी यदि भक्त के आत्मबलिदान की झलक कहीं दिख सकती है तो वह सती और शूर में ही दिखती है।"

हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर पृ० १९४, १९४७ बम्बई

"कबीरदास भक्त और पतिव्रता को एक कोटि में रखते थे। दोनो का धर्म कठोर है, दोनों की वृत्ति कोमल है, दोनो के सामने प्रलोभन का दुस्तर जजाल है, दोनो ही काचन धर्मी हैं, ...बाहर से मृदु भीतर से कठोर बाहर से कोमल भीतर से परुष। सबकी सेवा में व्यस्त पर एक की आराधिका पतिव्रता ही भक्त के साथ तुलनीय हो सकती है।"

हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर पृ० १९१

माता का रूपक

नारी के मातृत्व, उसके स्नेहपूर्ण, वात्सल्य, अगाध ममता और क्षमाशीलता ने सन्तो के अन्तर को छुआ होगा, तभी उन्होने भगवान को माता मानकर स्वय को बालक माना है। ममतामयी, स्नेह-प्राणा जननी के समक्ष पुत्र का बडा अपराध भी क्षम्य और नगण्य होता है। वह बालक के सुख-दुख, हास-उल्लास को उससे अधिक अनुभव करती है। इसी जननी की स्नेहमयी प्रकृति की दुहाई देकर, कबीर अपने अपराध क्षमा कराते हैं[1]।

श्लेष रूप में नारी

कुछ सन्त कवि, कवि होने के अतिरिक्त विद्वान और काव्य-मर्मज्ञ भी थे। यथा सुन्दरदास जिन्होने नारी शब्द में श्लेष का चमत्कार दिखाते हुए काव्य-रचना की है। नारी शब्द के द्विअर्थक प्रयोग में, एक से उनका तात्पर्य सामान्य स्त्री से है, दूसरे से मानव की प्राणशक्ति सूचिका नाडी के अपभ्रश (नारी रूप) से[2]। सकेत रूप से उन्होने नारी के कर्तव्य एवम् आदर्श का निर्देश किया है कि उसे मृदुभाषिणी होना चाहिए। उसकी योग्यता, क्षमता पर गृह का सुख और शान्ति अवलम्बित है।

त्याग और तपस्या की जिस आधारभूमि पर सन्त स्थित थे, उसके अनुसार सन्तो ने नारी के कामिनी रूप को त्याज्य और घृणित बताया। सयम तथा आत्म-निरोध को श्रेयस्कर समझने वाले सतो ने कामी पुरुष और नारी दोनो को ही असत्

---

१ "हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुन बकसहु मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहे न तेते।
कर गहि केस करे जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहे कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी।"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पदावली, पृ० १२३, पद १११

"दादू कहैं नहीं बस मोरा
तू जननी मैं बालक तोरा"

दादू—दादूदयाल की बानी, पृ० ७५, १७८ पद

२ "जाके घर नारी भली, सुन्दर ताके चैन।
जाके करकसा कलह करै दिन रैन ॥"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ७०७

"नारी फिरै गली गली ताको लज्जा नाहि।
सुन्दर मारयो सरम को पुरुष घुस्यो घर माहि।।"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ७०८, पद १४

"भलो सयानो आइ जो समुझावै बहु भांति।
कुलवन्ती मानै कह्यो सुन्दर उपजै स्वाति ।।"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ७०६, पद २२

का प्रतीक माना, क्योकि उनका आदर्श भिन्न था[1]। काम को प्रधानता देने वाला पुरुष भी उनके अनुसार नाग है[2]। यह सन्त कवि भक्ति-साधना में काम आदि प्रवृत्तियो को सबसे बडा अवरोध मानते थे[3]। आकर्षणमयी नारी इसी से उनकी भर्त्सना एवम् निन्दा की पात्र अवश्य थी। पर नारी के कल्याणमय रूप पातिव्रत एवम् सतीत्व की उपेक्षा वे न कर सके। नारी हृदय के निश्छल समर्पण, आकाक्षारहित स्नेह और निश्छल भक्ति के साथ उन्होने अपनी भावनाओ का तादात्म्य कर दिया, तथा स्वय को अविनाशी प्रियतम की पत्नी एवम् प्रेयसी माना। नारी के वात्सल्यपूर्ण माता रूप के प्रति भी सन्तो के हृदय मे श्रद्धा की भावना थी। साथ ही दीर्घकाल से धर्म के क्षेत्र से वहिष्कृत नारी को सन्तो ने भक्ति का अधिकारी माना। सन्तो के काव्य में नारी के प्रति खण्डनात्मक दृष्टिकोण, उसका प्रतीक रूप, पतिव्रता रूप के प्रति मोह और आदर की भावना तो मिलती है, पर तत्कालीन नारी की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के विषय में सन्त मौन हैं। सन्तो ने नारी के भक्ति के अधिकार को तो मान्यता दी, परन्तु उसके अन्य आर्थिक, सामाजिक अधिकारो के प्रति वे अन्यमनस्क ही रहे।

---

१ "ऊँच भवन कनक कामिनी सिखरि धजा फहराइ,
तातै भली मधुकरी सत सत सग गुन गाइ ॥'
कवीर—कवीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास सपादित, पृ० २४८, दो० २ परिशिष्ट

२. "विषै कर्म की कचुली पहिर हुआ नरनाग।
सिर फोडै सूझै नहीं को अगिला अभाग ॥"
कवीर—कवीर ग्रन्थावली, पृ ४१, दो० २१

३ "जब लग नाता जगत का तब लग भक्ति न होय।
नाता तोडै हरि भजै, भक्त कहावै सोय ॥"
कवीर—कवीर वचनावली, हरिऔध, पृ० ६, सा० ८५

प्रकरण २

सूफी-काव्य में नारी

कबीर आदि सन्त कवियो के उपदेश, जटिल उलटवासियो एवम् सध्या भाषा की पदावली में कहे हुए पद जनता के हृदय को नही स्पर्श कर सके, उनका निर्गुण ब्रह्म, सर्वशक्तिमान एवम् सर्वव्यापक होता हुआ भी एक सीमित वर्ग के ज्ञान का विषय ही बन सका। परन्तु इन प्रेमगाथाकारो ने मानव जीवन की सामान्य पृष्ठभूमि में घटित प्रेम और त्याग की लोकगाथाओ में अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से प्राणोन्मेष कर जिन काव्यो की फारसी मसनवी-पद्धति पर रचना की, वे जन-हृदय की सवेदना को गुदगुदा रहे थे। इन सूफी कवियो ने भारतीय लोक-हृदय मे रमी हुई हिन्दू-जीवन की आख्यायिकाओ को लेकर बाधाओ एवम् कठिनाइयो के मध्य अविचलित रहने वाले जिस प्रेम का चित्रण किया वह किसी विशेष वर्ग अथवा जाति की सपत्ति न होकर मानवमात्र का अधिकार है। इन सूफी कवियो ने लौकिक प्रेम के माध्यम के द्वारा ही अलौकिक प्रेम, इश्कमजाजी द्वारा ही इश्क-हकीकी का चित्रण किया।

सूफी-काव्य की पृष्ठभूमि

सूफी काव्य का उद्गम स्थान फारस और ईरान ही है। यद्यपि सूफी-मत को इस्लाम का एक प्रधान अग माना जाता है, पर मुहम्मद साहब के आविर्भाव के पूर्व ही सूफी-मत का उद्भव एवम् विकास हो चुका था। सूफियो का परम प्रेम देव-दास एवम् देवदासियो के मादन-भाव का ही परिमार्जित रूप है। जिस समय इस्लाम के अनुयायी हदीस का अपने सकीर्ण स्वार्थानुसार अर्थ लगा रहे थे। धर्म प्रचार की पवित्र भूमि सत्ता-स्थापन के लिए हिंसा एवम् रक्तपात की रगभूमि बनी हुई थी। उसी समय प्रेम की प्रतिमा राबिया (मृ० ८०९) का आविर्भाव हुआ। वह अपने को परमात्मा की दुलहिन मान कर उसके विरह में तडपती थी। मसूर ने खुदा और बन्दे के अभेद-भाव को सिद्ध करना चाहा। धर्मान्धो को मसूर के इस सिद्धान्त में इस्लाम की स्पष्ट अवहेलना प्रतीत हुई। भारतीय अद्वैत को ही अनहलक की परम अनुभूति मे पर्यवसित कर हल्लाज अथवा मसूर ने अपने उत्सर्ग से सूफी मत को बलदान किया। सत्ताधारियो की धर्मान्धता से बचने के लिए सूफी लोगो ने अपने सिद्धान्तो का प्रचार आख्यान तथा मसनवी के रूप में प्रतीक पद्धति से करना प्रारम्भ कर दिया। मौलाना रूमी आदि मनीषियो ने इसी रोचक प्रणाली का अव-लबन किया। मौलाना रूमी की मसनवियो की लघु-काव्य-कथाओ में कुरान का तत्व एवम् तसव्वुफ का सार निहित है। हाफिज, उमरखैयाम और रूमी इन्ही का

अनुकरण सूफियो की काव्य परम्परा में हुआ है। इन सभी कवियो के काव्यो मे प्रेम की पीर, सुरा की मादकता, आध्यात्म की तीव्रता है। इस्लाम की कृपाण की धार, उसकी दुर्दान्त हिंसा देखने के पूर्व ही भारत इन सूफी दरवेशो की प्रेम-कहानियां सुन चुका था। शान्ति स्थापन, धर्मोन्माद के दानव के शान्त हो जाने पर जन-साधारण उनकी ओर उन्मुख हुआ। त्याग और उत्सर्ग की भित्ति पर स्थित सिर का सौदा करने वाले प्रेम की कहानियां जन-हृदय के औत्सुक्य एवम् कौतूहल का केन्द्र बनी। हिन्दू-जीवन की सामान्य प्रेम कथाएँ सूफी सिद्धान्तो के सांचे में ढल कर वियोग की पीडा और सयोग की माधुरी मे अमर हो गई।

सूफी-काव्य वस्तुत प्रेम काव्य है। यहां आत्मा और परमात्मा ही प्रेम के आलम्बन हैं। असीम के अनुराग की मादकतापूर्ण मदिरा इस अनुराग को उद्दीप्त करती रहती है। सामान्यत सुरा से मानव कुछ समय के लिए सासारिक दुख-सुख, हर्ष-सताप, की ज्वालाओ से मुक्त हो जाता है। पर यह प्रेम-मदिरा का मतवाला सदा ब्रह्मानन्द में लीन रहता है। प्रभु के साक्षात्कार, उससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो जाने के उपरान्त साधक जिस खुमारी की स्थिति मे रहता है उसकी व्यजना सूफी कवियो ने मदिरा के प्रतीक से की है। मानस की मृदुल अभिलाषाओ का आलम्बन अल्लाह अथवा प्रेयसी मधुबाला (साकी) बन कर इस हाला को अपने कुसुम-कोमल-करो से वितरित करता है। यही मदिरा सन्तो में भी अमृत अथवा सोमरस के नाम से अभिहित हुई[1]। ईरान सदा से ही सभ्यता एवम् सस्कृति के अभ्युत्थान का केन्द्रस्थल रहा है। तसव्वुफ पर ईरान की सस्कृति का प्रभाव अधिक है।

सूफी जीवन-दर्शन

इस्लाम को मान्यता देते हुए भी सूफियो के सिद्धान्त उससे भिन्न हैं। इस्लाम सामाजिक धर्म है। वह नमाज रोजे आदि पर अधिक बल देता है। परन्तु इन सूफी सन्तो के अनुसार वाह्याचार व्यर्थ हैं। व्यक्तिगत साधना और आत्मशुद्धि द्वारा ही मानव जीवन में इच्छित वस्तु एवम् ध्येय को पा सकता है। सूफी होने के लिए पहले तृष्णा, काम, क्रोध आदि मनोविकारो का दमन आवश्यक है। भारत में आकर तत्कालीन नाथपथी योगियो आदि के प्रभाव से हठयोग का भी उनके सिद्धान्तो में समावेश हो गया। तत्कालीन भारतीय धर्मो से सूफी मत में कई समानताएँ हैं। भारतीय धर्मो का अद्वैत, एकेश्वरवाद की भावना, योग प्राणायाम की विधियां, गुरु को अधिकाधिक महत्व देना तथा असीम सत्ता के प्रति प्रेम भाव रखना, आदि सूफी कवियो में भी रही हैं। सूफी कवियो का ब्रह्म इस्लाम का खुदा ही है, तथा रसूल और पैगम्बर भी उन्हे मान्य हैं। सूफियो का ईश्वर भय

1 "खेचरी मुद्रा में योगी की ऊर्ध्वगा जिह्वा उसी अमृत रस का पान करती रहती है। यही अमृत सोमरस है इसको पान करने वाला योगी अमर हो जाता है।"
हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृ० ४८, ४९, द्वितीय स० १९४७, बम्बई

का कारण नही, अपितु प्रेम और उपासना का पात्र है। विश्व के कण कण, प्रकृति के प्रत्येक अवयव में उसी की महिमा देख कर हृदय उससे पूर्ण परिचय कर लेता है। जीव से श्रेष्ठ होने पर भी उसे जीव के सुख-दुख से सवेदना है।

सूफी अपने खुदा से सपूर्ण हृदय से प्रेम करता है, यह प्रेम और अनुराग ही उसका जीवन है। यह प्रेम ही सूफी-दर्शन अथवा सिद्धान्तो की आधारशिला है। वह लौकिक प्रेम को अपने ध्येय तक पहुचने का सोपान मानते हैं[1]। इस प्रेम और उपासना की भावुकता के होते हुए भी सूफियो का ब्रह्म अमूर्त ही है। सूफी मत में भी सतो के समान प्रेम को सर्वाधिक महत्व मिला है। उनके अनुसार ईश्वर ने प्रेम के ही कारण ससार की उत्पत्ति की। प्रेम में मरने वाला व्यक्ति अमर हो जाता है[2]। इन सूफियों ने सतो के समान प्रेम का पथ अत्यन्त दुर्गम माना[3]। प्रेम के मार्ग का सबसे बडा बाधक शैतान है, यह शैतान भारतीय-दर्शन की माया ही है। जिस प्रकार माया ब्रह्म से ही उत्पन्न है, उसी प्रकार शैतान भी अल्लाह का ही अश है। सूफी मत में सर्वात्मवाद का बहुत महत्व है। सूफी प्रत्येक वस्तु में अपने उपास्य का ही नूर, उसी का अप्रतिम सौन्दर्य देखते हैं। उस जमाल को दृष्टिगत कर ही सूफी साधक खुदा की ओर अग्रसर होता रहता है। सूफी अपने अनन्त प्रियतम के अनन्त वियोग में लीन रहता है, अत उसने अपने काव्यो में भी वियोग को महत्त्व दिया है। वियोग मानव को अमरत्व प्रदान कर देता है[4]। अनन्त के

---

१. "यही कारण है कि सूफी साफ-साफ कह देते हैं कि इश्कमजाजी इश्क-हकीकी की सीढी है। और उसी के द्वारा इसान खुदी को भेंट कर खुदा बन जाता है।"—

चन्द्रवती पाडेय—तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पृ० ११, १९४८ द्वि० स० काशी

२ "अलख प्रेम कारन जग कीन्हा। धन जो सीस प्रेम मह दीन्हा।
जाना जेहिक प्रेम मा जीया। मरै न कबहू सो मर जीया॥
प्रेम खेत है यह दुनियाई प्रेमी पुरुष करत बोआई।
जीवन जाग प्रेम को कहई, सोवन मीचु को प्रेमी कहई॥"

नूरमोहम्मद—इन्द्रावती हिन्दी के कवि और काव्य भाग ३, पृ० ७८
गणेशप्रसाद द्विवेदी, इलाहाबाद

"भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा प्रेम जेंहि खेला
जेहि सीस प्रेम पथ लावा, सो पृथ्वी मह काहे आवा।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली माताप्रसाद गुप्त पृ० १८५, १९५२ प्रयाग

३ "गिरिवर प्रेम विकट अति ऊचा। धाइ चढासो तहाँ पहुचा।"

उस्मान—चित्रावली : जगमोहन सम्पादित : पृ० ४४

४. "जिहि तन मन विरहा सचरै, सो जिउ जीवै नहि पुनि मरै॥"

आलम—माधवानल-कामकदला हिन्दी के कवि और काव्य,
भाग ३, पृ० २०३

इस विरह में विश्व का कण कण व्याकुल रहता है।

इन सब सूफी कवियो को यजीद का मत मान्य है। इसके अनुसार जीव खुदा का ही प्रतिबिम्ब है। जीवात्मा के प्रति परमात्मा का प्रेम उसके प्रेम से कही अधिक है। पर अज्ञान एवम् मोह के आवरण के कारण जीव यह जानता है कि वह खुदा को प्यार कर रहा है। जीव विश्व की माया में अपने उस प्रेम को भूल जाता है तब परमात्मा अपने दूत अथवा गुरु द्वारा उसको अपना सदेश भेजता है। इसी कारण सूफी-दर्शन एवम् काव्यो में गुरु एवम् गुरु-परम्परा का बहुत महत्व है। गुरु की कृपा से ही आत्मा और परमात्मा का एकीकरण, अनलहक की अनुभूति सभव है। यह 'अह ब्रह्मास्मि' का ही परिवर्तित रूप है। बेसुधी अथवा हाल की दशा में ही जीव को अद्वैत की अनुभूति होती है। उसके पश्चात् वह परमात्मा से एकीकरण के लिए व्याकुल हो उठता है। उसकी प्रेममयी दृष्टि प्रकृति की प्रत्येक क्रीडा मे दिव्य शक्ति का आभास पाती है। हाल की दशा में अद्वैत की अनुभूति के पश्चात् साधक उसके साक्षात्कार एवम् दर्शन के लिए व्याकुल हो उठता है। यही वेदना इसके समस्त दर्शनो एवम् सिद्धान्तो का आधार है।

दाम्पत्य-भाव का प्रतीक

इन सूफियो ने अपने हृदय की उत्कट रति की अभिव्यक्ति दाम्पत्य भाव के प्रतीक द्वारा ही की। किन्तु इस प्रतीक में उन्होने परमात्मा को स्त्री तथा आत्मा को पुरुष मान कर ही प्रेम की पीर की अभिव्यजना की। इब्न अरबी के अनुसार ईश्वर को स्त्री रूप में मान कर उपासना करना श्रेष्ठ है[1]। फारसी-परम्परा में प्रेम की प्रबलता, विरह वेदना में पुरुष ही अधिक व्यग्र होता है। अत इन सूफी कवियो ने आत्मा को पुरुष माना। प्रेम की उग्रता, रति की प्रबलता के कारण उनकी विरह वेदना भी तीव्र होती है, उन्हे समस्त विश्व ही अपने विरह से प्रभावित प्रतीत होता है। किन्तु यह विरह सामान्य अथवा लौकिक न होने के कारण अत्यन्त मधुर सौख्यमय है। विश्व की सृष्टि से पूर्व आत्मा परमात्मा के ही पास थी, उसका यह पार्थिव अस्तित्व निर्वासन सा है, और उसकी वियोग भावना घर की याद सी[2]।

सामान्यत मृत्यु मानव जीवन का अवसान होने के कारण दुख एवम् शोक का कारण होती है। परन्तु सूफियो के अनुसार मृत्यु महामिलन है, मृत्यु उपरान्त जीवात्मा चिरकालीन विरह वेदना को झेल कर असीम एवम् अनन्त में लीन हो जाती है। सभवत यही इन सूफी सतो का काम्य एकता के वैवाहिक मण्डप में परमात्मा के साथ रहस्यमय विवाह है[3]। अत सूफी सन्तो एवम् कवियो के लिए मृत्यु, हर्ष

१. निकल्सन—स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज्म, पृ० १६१, १६२१ कैम्ब्रिज

२ निकल्सन—मिस्टिक्स ग्राफ इस्लाम, पृ० ११६, १६१४ लदन

३ रेनाल्ड निकल्सन—द मिस्टिक्स ग्राफ इस्लाम, पृ० ११६, १६१४ लंदन

एवम् उल्लास की वाहिका है। उन्होने मृत्यु का वर्णन बडे मनोयोग से किया है।

प्रेमगाथाओं की परम्परा और आध्यात्मवाद

जायसी ने अपने से पूर्व की कुछ प्रेम-गाथाओ का उल्लेख किया है[1]। रामकुमार वर्मा के अनुसार इन प्रेमगाथाओ का प्रारम्भ मुल्ला दाउद की नूरक और चन्दा से होता है[2]। श्रीगणेश हो जाने पर भी इन प्रेमगाथाओ की परम्परा वहुत देर से चली। जायसी के दिए हुए प्रसग में से उनके पूर्व की केवल मृगावती और मधुमालती प्राप्य हैं, शेष अप्राप्य हैं।

मृगावती	कुतुवन	(१५५८ स०) १५०१ ई०
मधुमालती	मझन	(१५५० स० ९५ स० का मध्यकाल) १४९३ ई०, १५३८ के मध्य
पदुमावत	जायसी	(१५९७ स०) १५४० ई०
चित्रावली	उस्मान	(१६७० स०) १६१३ ई०
इन्द्रावती	नूरमुहम्मद	(१८०१ स०) १७४४ ई०
माधवानल-कामकन्दला	आलम	(१६९७ स०) १६४० ई०

इन सभी प्रेमगाथाओ के कथानक प्रेमकथाएँ हैं। प्रेम ही उनका केन्द्रविन्दु है। पद्मावत में रत्नसेन एवम् रानी पद्मावती की प्रेमकथा का चित्रण हुआ है। चित्रावली मे उस्मान ने सुजान-चित्रावली तथा सुजान-कौलावती के प्रणय का वर्णन किया है। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि इनमे पुरुष में ही प्रेम का उत्कर्ष अधिक दिखाया गया है। विरह जनित वेदना और उद्वेग पुरुष में ही अधिक है। वास्तव में सूफी कवियो का ध्येय अपने दार्शनिक सिद्धान्तो को कहानी के रूप में मनोरजक कर जनसाधान्य के समक्ष रखना था। पूर्ववर्ती कवियो ने अपने सिद्धान्तो को ही अधिक प्रधानता दी, कहानी का महत्व उनके लिए गौण था। परन्तु धीरे-धीरे मनसवी ढग से लिखी हुई इन प्रेम-गाथाओ में साधारण

---

१ "विक्रम धसा प्रेम के वारा, सपनावति कहँ गएउ पतारा।
मधुपा मुगुधावती लागी, गगन पूर होइगा वैरागी।
राजकुवर वेचनपुर गएउ, मिरगावति कहँ जोगी भएउ।
साध कुवर खण्डरावत जोगू, मधुमालती कहँ दीन्ह वियोगू।
प्रेमावति कहँ सुरसरि साधा, उपा लागि अनिरुद्ध वरलागा।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल, १९३५ द्वि० स० प्रयाग
पृ० ११३, ११४

२ "धार्मिक काल के प्रेम काव्य का आदि चन्दावन या चन्दाम्रत से ही मानना चाहिए। यद्यपि इस प्रेम कथा की परम्परा वहुत वाद में आरम्भ हुई पर उसका श्रीगणेश मुल्ला दाउद ने कर दिया।"
रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,
पृ० ३०६, १९५४ प्रयाग

प्रेम का वर्णन मात्र मिलने लगा। युसुफ-जुलेखा इस उत्तरकालीन मनोवृत्ति के उदाहरण हैं।

श्राध्यात्मवाद

कवियो ने इन लौकिक प्रेम कथाग्रो द्वारा श्राध्यात्मिक विचार प्रकट किए हैं। जायसी के पद्मावत, उस्मान की चित्रावली, नूर मुहम्मद की इन्द्रावती, श्रालम की माधवानल-कामकन्दला सभी में नायक नायिकाश्रो के गुण-श्रवण-चित्रदर्शन स्वप्न अथवा प्रत्यक्ष-दर्शन द्वारा उसके सौन्दर्य का परिचय पाकर व्यग्र हो उठता है। नायिका का वासस्थान अगम्य है, जहाँ पहुँच कर मानव को अनन्त सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। वह पुनः सासारिक सतापो की धूप सहने नही आता है[1]। इन काव्यो पर हठयोग का भी प्रभाव है।

श्राध्यात्मिकता के विषय में मतभेद

इन सूफी-काव्यो के श्राध्यात्मिक सकेत के विषय में मतभेद है। यद्यपि जायसी ने अपना साकेतिक कोष भी अन्त में दिया है, तथा अन्य कवियो ने भी नख-शिख-वर्णन में अलौकिकता का समावेश किया है। इस विषय पर विभिन्न विचार निम्नलिखित हैं[2] .—

---

१ "पथिक जो पहुँचै सहि घामू, दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू।
जिन्ह वह पाइ छाह अनूपा, बहुरि न आइ सही यह धूपा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३३८

२ "सारी कथावस्तु प्रेमाख्यान में ही विस्तार पाती है, और उसमें किसी प्रकार की उपदेश देने की प्रवृत्ति नहीं लक्षित होती। कथा समाप्ति पर सक्षेप में कथा के अगों और पात्रो को सूफीमत पर घटित किया जाता है। और समस्त कथा में एक श्राध्यात्मिक व्यजना (Allegory) आ जाती है।"
रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का श्रालोचनात्मक इतिहास, पृ० ३२८, १९५४ प्रयाग

"इस शाखा के सब कवियों ने कल्पित प्रेमकथाओं द्वारा प्रेम मार्ग का महत्व दिखाया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्व का श्राभास दिया है, जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है।"
रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७१, २०१२ सवत् काशी

इसी का समर्थन हिन्दी के कवि और काव्य तृतीय भाग (प्रेम-गाथा-काव्य सग्रह की भूमिका में गणेश प्रसाद द्विवेदी ने किया है।)
गणेशप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी के कवि और काव्य भाग ३, पृ० ९

"इन काव्यों में श्राध्यात्मिकता के छोटे-छोटे सकेत हैं, जो कि परम्परा का प्रभाव है। उससे इन काव्यो में किसी प्रकार की अन्योक्ति अथवा समा-

सूफी-काव्य में नारी

इन प्रेमगाथाकार सूफियो के अनुसार नारी प्यार एवम् उपासना की वस्तु है। उसे योग, त्याग और उत्सर्ग द्वारा ही पाया जाता है। बल प्रयोग अथवा कृपाण की धारा से उसे अधिकृत नही किया जा सकता है। उसका प्रेम लौकिक हो अथवा अलौकिक अपने में ही महान् है। सूफी कवियो मे सन्तो के समान खण्डनात्मक पक्ष का अभाव है। उन्होने नारी को असत् की प्रतीक, नरक का द्वार तप की बाधा न मानकर कल्याण एवम् सत् की विधायिका माना है। निसशय सूफी-मत में नारी के प्रति भव्य दृष्टिकोण होगा, तभी तो उसे उन्होंने अनन्त का प्रतीक माना है। यद्यपि कथानक के मध्य में नारी के प्रति सामान्य कथनो में उसकी दुर्बलताओ एवम् दुर्गुणो की व्याख्या कर उसे मतिहीन बताया है। उसे कामिनी और भोग की ओर उन्मुख करने वाली बताया है। सम्भव है यह कवियो के मत से सम्बन्धित न हो। उनका नारी के प्रति दृष्टिकोण तत्कालीन सामाजिक परम्परा से भिन्न है। सामान्यत सभी सूफी-काव्यो में नारी के सत्-रूप ने ही व्यजना पाई है। उनके अनुसार नारी का प्रेम और अनुराग पुरुष के लिए काम्य है। नारी के विमोहक सौन्दर्य पर वह मुग्ध हो जाता है[1]। यद्यपि वह नारी के ऊपर दीपशिखा पर शलभ के समान बलि होने को प्रस्तुत है[2], पर उसके इस प्रेम में वासना अथवा लोलुपता नही है, तभी अप्सरा को देखकर भी रत्नसेन

सोक्ति की भावना नहीं आती। इनकी लौकिकता का पर्याप्त प्रमाण इनका काम-शास्त्र-खण्ड, सयोग वर्णन आदि दे रहे हैं।"

कमल कुल श्रेष्ठ—हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्य, पृ० १७३, १९५३ अजमेर

"इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामूहिक रूप से इन कहानियों में सूफी सिद्धान्तों की व्यजना नहीं है। ये कवि किसी अन्योक्ति को काव्य में नहीं रखते थे। ये कवि इन कहानियों के माध्यम से नैतिक व एकाध मार्मिक उपदेश देते थे। इन्हे सूफी प्रेममार्गी कहना गलत है, और भक्ति-युग के निर्गुण-काव्य की दो शाखायें बनाकर इन्हें दूसरी में रखना महत्वहीन है।"

कमल कुल श्रेष्ठ—हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्य, पृ० १७३, १९५३ अजमेर

१. "पदुमावति राजा के वारी, हौं जोगी तेहि लागि भिखारी।

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६७

२ "भएऊँ भिखारि नारि तुम्ह लागी, दीप पतंग होर अगएऊँ आगी।
भँवर खोज जस पावँ केवा, तुम्ह कांटे मैं जिव पर छेवा।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३२८

"जेहि कारन पिव पहिरा कन्या, जीव देत हौं तेहि के पन्था।"

उस्मान—उस्मान चित्रावली, पृ० १३०

प्रभावित नही होता[1]।

अन्योक्ति अथवा समासोक्ति सम्बन्धी विवाद को त्याग देने पर भी सूफी-काव्यो में नारी के दो रूप दृष्टिगत होते हैं। पद्मावती, चित्रावली, मधुमालती तथा मृगावती आदि केवल सामान्य नायिका मात्र नही हैं, वह दिव्य शक्ति की प्रतीक हैं। सूफियो की रहस्यवादी प्रणय-मूला भक्ति के अनुसार प्रेमी अथवा आत्मा-साधक है, और प्रेमिका ईश्वर अथवा दिव्य बुद्धि है। यह दृष्टिविन्दु का अन्तर फारसी पद्धति के कारण हैं।

लौकिक और अलौकिक दोनों रूप

सूफियो की भावाभिव्यक्ति एवम् वर्णन शैली की सवसे वडी विशेषता यही है, कि उसमें नारी के दोनो रूपो का सम्यक चित्रण मिलता है[2]। वह दिव्य शक्ति की प्रतीक होने के अतिरिक्त सामान्य अस्थि मज्जा की भाव-आन्दोलित मानव-प्रतिमा भी है। अलौकिकता से समन्वित होने के साथ ही उसमें व्यावहारिकता एवम् प्रत्युत्पन्न मति भी है। नारी सुलभ ईर्ष्या, सपत्नी द्वेष की भावना से प्रेरित होकर वह सपत्नी से विवाद करती तथा द्वेष की ज्वाला में ज्वलित होती है। पातिव्रत के गौरव से सम्पन्न इन नायिकाओ में दिव्य शक्ति के साथ नारी के सहज समर्पण एवम् उत्सर्ग की भावना भी है। अत यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि सूफी काव्य में नारी लौकिक और अलौकिक दोनो रूपो में चित्रित की गई है। अलौकिक रूप में वह परम शक्ति, ज्योति, साधक की साधना, उपासना और भक्ति की पात्री है। लौकिक रूप में वह पुरुष की प्रेयसी और पत्नी है। गृह के कर्मक्षेत्र, विविध पारिवारिक सम्बन्धो में उसके सत् एवम् असत् रूप की व्यजना हुई है।

अलौकिक रूप

परम शक्ति की प्रतीक नारी अलौकिक एवम् दिव्य स्वरूप से समस्त विश्व को मोहाभिभूत कर लेती है। उस्मान की चित्रावली ससार की मणि है, देवगण भी जिसके तेज-पुज के समक्ष नत हैं। ब्रह्म के समान वह विरोधी गुणो से पूर्ण है, प्रकट होते हुए भी वह सामान्य जन की दृष्टि से परे है। चारो वेदो के रहस्य से अभिज्ञ ब्रह्मा तथा निष्काम सेवक शकर भी उस अदृश्य तेज समन्वित शक्ति की अगाधता को पा न सके। साधारण जन के माया तथा भौतिक प्रलोभनो के आवरण से आच्छन्ननयन उसको देखने में असमर्थ है। यद्यपि वह इस सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हो रही है,

---

१ "भलेहि रग तोहि आछरि राता, मोहि दोसरे सौ भाव न वाता।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६१

२ "इस परोक्ष अथवा गुह्य प्रेम की व्यजना की विशेषता यह है, उसमें लौकिक और अलौकिक रूप साथ-साथ चलते हैं। दोनों का अपना महत्व होता है।"
हरिकान्त श्रीवास्तव-भारतीय हिन्दी प्रेमाख्यान, पृ० ५७, १९५५, काशी

प्रकृति के प्रत्येक व्यापार मे उसका अस्तित्व है[1]। इन दिव्य प्रतीकों का नख-शिख वर्णन भी अलौकिकतापूर्ण है। पद्मावती के भृकुटि सचालन से सम्पूर्ण विश्व अभिभूत है। उस तेज-पुंज की वन्दना देवगण करने को उत्कण्ठित रहते हैं। उसके पायलो के नूपुर में चन्द्र और सूर्य की दीप्ति झनकार करती रहती है, नक्षत्र और तारे ही उसके पैरो के आभूषण हैं[2]। इन्द्रावती का नख-शिख भी अलौकिक है[3]। इस दिव्य शक्ति की प्रतीक नारी के रूप, गुण श्रवण, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दर्शन से, रहस्यवादी भाषा में नवी अथवा गुरु द्वारा उसके नूर और जमाल का आभास पाकर साधक प्रकृति तथा ससार की प्रत्येक वस्तु एवम व्यापार को उसी अनन्त से प्रभावित पाता है। सूफी साधकों का यह सिद्धान्त कि ईश्वर का आत्मा पर उससे अधिक प्रेम होता है, भी यहाँ घटित होता है। अनेक वाधाओ तथा अवरोधो के मध्य अविचलित रहने वाले साधक के इस प्रेम को देख कर, उसकी गूढता का परिचय पाकर उस दिव्य शक्ति अथवा विद्या का भी उस पर विशेष अनुराग हो जाता है, वह भी उसकी विरह वेदना से व्यथित हो जाती है। नारी के अलौकिक रूप के दर्शन-काल में, अथवा दिव्य शक्ति के साक्षात्कार में साधक उस तेजपुज को सह नही पाता और उसे हाल अथवा वेसुधी आ जाती है। इस अलौकिक नारी के आकाक्षी पुरुष को स्वर्ग की अभिलाषा नही रहती है[4]। वह पुरुष की गुरु, उसके प्रेम पथ की निर्देशिका होती है। इसके मोहन रूप, दिव्य तेजोमय सौन्दर्य के अवलोकन के उपरान्त साधक में दृढता एवम् साहस का स्फुरण होता है, और उसके चरणो में अपने प्राण का पुष्प

---

१. "उन वानन्ह अस को न मारा। वेधि रहा सगरौ ससारा।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १८६

"गगन नखत अस जाहि न गने। हैं सव बान ओहि के हने।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० १८६

२ "देवता हाथ-हाथ पगु लेहीं, पगु पर जहाँ सीस तहँ देहीं।
माथे भाग को दहुँ अस पावा, कँवल चरण लै सीस चढावा।।
चूरा चांद सुरज उजियारा, पायल वीच करहिं झनकारा।
अनवट विछिया नखत तराई, पहुँच सकै को पावन्हि ताईं।।"

जायसी – जायसी ग्रन्थावली, पृ १९६

३ "अरु रूपवन्ती सुन्दर आहै, विनु देखे सव ताहि सराहै।
खोलै मुख परभात देखावै, खोलै केस साँझ होइ आवै।"

नूर मुहम्मद—इन्द्रावती . हिन्दी कवि और काव्य भाग ३
पृ० ९०, इलाहावाद

४ "हौं कविलास काह लै करऊँ, सोई कविलास लागि ओहि मरऊँ।
ओहि के वार जोवनहुँ वारौं, सिर उतारि नेवछावरि डारौं।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली (माता प्रसाद गुप्त) पृ० २६२

भी चढा देने को तत्पर हो जाता है[1]।

नारी का लौकिक रूप

प्रतीक तथा कुछ विशेष स्थलो को हटा देने पर सूफी कवियो की नारी लौकिक और सामान्य हो जाती है। इनके प्रेम-प्रधान दृष्टिविन्दु के अनुसार प्रेम ही जीवन की चरम गति है। इनके पात्रो का आदर्श प्रेम-मार्ग को अपनाना ही है। नारी के लौकिक रूप मे प्रेयमी के रूप की ही प्रधानता है। वह प्रेमोन्मत्त प्रेमिका सामाजिक प्रतिवन्धो को नगण्य मानती है तथा वाधा और कठिनाइयो से पराभूत नही होती है। उनका प्रेम नक्षत्र के समान गतिशील न होकर शिला सा दृढ और अविचल होता है। साधारण मानवी के समान वह वियोग की वेदना से दुखी और सयोग की सरसता में लीन हो जाती है। उसके प्रेम का पर्यवसान अन्त में विवाह होता है। विवाह के उपरान्त प्रेयसी की उद्दाम प्रेम-भावना वासना के निर्जीव विलास में निमज्जित हो जाती है। इन प्रेम गाथाकारो की भावना फारसी और सामयिक परिस्थितियो के विलास प्रधान दृष्टिविन्दु के कारण वैभव और विलास के सीमित क्षेत्र में ही केन्द्रित रही। इन समस्त कवियो की नायिका वैभव एवम् विलास में पली सुकुमारी हैं। सामान्य नारी, उसके दुख-सुख इनके काव्य में अभिव्यक्ति न पा सके। सभी सूफी नायिकाएं पद्मावती, मधुमालती, इन्द्रावती और चित्रावली वैभव और ऐश्वर्य की ही पृष्ठभूमि में पलती हैं। पुष्पशैया पर पली यह नारी सौख्य और विलास की अमराई में यौवन और प्रणय के सुनहने स्वप्न देखती हैं। यौवनागमन के साथ ही कन्त की चाह उनके हृदय को गुदगुदाने लगती है[2]।

पुन प्रेम का व्यापार आरम्भ हो जाता है। चित्र-दर्शन गुण-श्रवण, स्वप्न-दर्शन आदि से प्रेम का आरम्भ होता है। सामाजिक वन्वन एवम् रूढियाँ कुल-लज्जा और गुरुजनो का विरोध आदि अवरोधो के मध्य प्रेम का यह पादप विकसित होता रहता है। इन सुकुमारियो का विरह ऊहात्मक व्यापारो और राजकीय शीतोपचारो से पूर्ण है। इन समस्त अवरोधो एवम् कठिनाइयो के उपरान्त विवाह हो जाता है। विवाहोपरान्त मिलन के समय की वासना एवम् कामुकता के प्रदर्शन में इन कवियो ने आध्यात्म की पावनता तथा मर्यादा का अतिक्रमण कर दिया है। इन नायिकाओ में प्रेयसी रूप के अतिरिक्त सामाजिक अथवा पारिवारिक

---

१. "सो पदमावति गुरु हौ चेला, जोग तन्त तेहि कारन खेला।
जीउ काढ़ि भुई धरौ लिलाट्ट, ओहि कह देहुँ हिए में पाट्ट।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली माता प्रसाद गुप्त पृ० २८५

२ "एक दिवस पदमावति रानी, हीरामन तह कहा सयानी।
सुन हीरामन कहौं बुझाई, दिन-दिन मदन सतावै आई।
जोबन मोर भयो जस गगा, देह-देह हम्ह लगा अनगा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१, २००६ स० काशी

जीवन के मध्य सत् और आदर्श रूप की अभिव्यक्ति कम हुई है। इनके त्याग और बलिदान की सीमा उत्सर्ग की भावना का अवसान प्रेयसी रूप में ही हो जाता है। उनमें धैर्य एवम् सहिष्णुता का अभाव है। सपत्नी के उल्लेखमात्र से द्वेष और ईर्ष्या चीत्कार कर उठती है। सामयिक प्रभाव के कारण इन प्रेम-काव्यकारो की नारी का रूप शृगार की छाया से मलिन है। नारी-भेद कथन तथा उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नख-शिख वर्णन की प्रणाली ग्रहण में इनका शृगारी दृष्टिकोण स्पष्ट है। पद्मावत और चित्रावली में नायिकाओ के जातिगत भेदो का उल्लेख तथा उनके लक्षणो का चित्रण हुआ है[1]। विविध जाति की स्त्रियो के वर्णन में नायिका-भेद की परम्परा का आभास मिलता है[2]।

कवियों की नारी-विषयक उक्तियाँ

इन सूफी कवियो ने नारी के स्वभाव, उसके मूल्य सम्बन्धी कुछ सामान्य उक्तियाँ की हैं, इनका कारण चाहे परम्परा रही हो अथवा युग की व्यापक विलासी प्रवृत्ति के कारण नारी को तुच्छ समझने की प्रवृत्ति। यह उक्तियाँ तत्कालीन नारी की स्थिति तथा कवियों की नारी-भावना पर प्रकाश डालती हैं। पद्मावत में पद्मावती के रूप सौरभ से मतवाला होकर रत्नसेन सिंहल को प्रस्थान करता है। उसकी विवाहिता पत्नी राम और सीता का उदाहरण देकर साथ ले चलने का अनुरोध करती है। रत्नसेन उसके स्नेहसिक्त अनुरोध को ठुकरा कर सम्पूर्ण नारी जाति पर मतिहीनता का आरोप करता है[3]। वह नारी को भोग की

---

१ नारी-भेद वर्णन, राघवचेतन द्वारा तथा नखशिख वर्णन—
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० ४२६, ४३४ से ४४४ तक
उस्मान चित्रावली—पृ० २१०, २१७

२ "चली भान सो ब्राह्मन बारी, बनियाइन नाइन पनिहारी,
चली सोनारिन कंचन बरनी, रजबूती खतरिन मन हरनी।
लोनी धन हलवाइन भली, अधर मिठाई बाँटत चली।"
नूर मुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० ६५

"भै अहान पद्मावती चली, छत्तीस पुरी मैं मोहते भली।
भै कोरी सग पहिरि पटोरा, बाँभनि ठाउँ सहस अग मोरा।
अगरवारिनि गज गवन करेई, बैसिनि पाव हस गति देई।
चदेलनि ठवँकन्ह पगढ़ारा, चली चौहानी होइ झनकारा।
चली सोनारि सोहाग सोहाती, औ कलवारि प्रेम मधुमाँती॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २४५, २४६

३ "तुम्ह तिरिआ मतिहीन तुम्हारी, मुरुख सो जो मतै घर नारी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २०६

सामग्रियो में सम्मिलित कर योगियो के लिए उसे अनावश्यक बताता है[1]। दूसरे स्थल पर रणोद्यत बादल उसे अबला तथा बुद्धिहीन बताता है। पुन उसकी अचेतन भूमि से तुलना करके, तिरिया और भूमि दोनो को ही खड्ग की अनुगामिनी बताता है[2]। यह उक्ति उस समय के राजपूतो के प्रताप, नारी और प्रेम को कारण बनाकर युद्ध लडने की प्रवृत्ति की ओर इगित कर रही है। राजपूतो में नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व न था। उनको अपना वर निर्वाचन करने में स्वतन्त्रता न थी। घोर सग्राम और भीपण नर-सहार नारी को लेकर ही होते थे, तथा भूमि के साथ ही नारी भी विजयी की सपत्ति हो जाती थी। नारी वासना का प्रतिरूप मान कर असत् की वाहिका तथा कर्तव्य मार्ग की बाधा मानी जाती थी। इन्द्रावती में राजकुवर के अपने विवाहिता के प्रति कथन में-इसी प्रकार की ध्वनि है[3]। चित्रावली के नायक सुजान का दृष्टिकोण तुच्छता एवम् हीनता का ही है। नारी की सुलभता के कारण उसका कुछ मूल्य नही था, वह पैर की जूती अथवा उपानह समझी जाती थी। उससे अन्धानुकरण एवम् अनुकूलता की अपेक्षा की जाती थी[4]। सुजान पुन नारी को ही सम्बोधित करके उसे विवेकमयी बताता है, और कहता है कि स्त्रियो की स्थिरता के कारण लोग उन्हे देहरी कहते हैं, और वह घर सभालती है, इसलिए घरनी अथवा गृहिणी कहते हैं। अत उसकी सार्थकता गृहजीवन के कर्तव्यो का सम्पादन करने मे ही है[5]। जल में विपत्ति पडने पर जब चित्रावली एवम्

---

१ "जोगिन्ह कहा भोग सों काजू चहे न मेहरी चहे न राजू"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली (माताप्रसाद गुप्त) पृ० २०६

२ "तिरिया पुहुमि खरग की चेरी। जीतै खरग होइ तेहि केरी।"

× × ×

"तुम्ह अबला मुग्धबुधि जानै जाननिहार
जहँ पुरुषन्ह कह वीर-रस भाव न तहा सिगार ॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५३२

३ "तुम कामिनी मत होनी भोग सुपावहु मोहि।
प्रेम खींच है मो कहँ सूझ बूझ नहि तोहि ॥"
नूरमुहम्मद—इन्द्रावत, हिन्दी के कवि और काव्य भाग ३ में से,

पृ० ८७

४ "जैसे पनही पाव की वैसे तिया सुभाउ।
पुरुष पन्थ चलि आपनै, पनही तजै न पाउ ॥"

उस्मान—चित्रावली (जगमोहन सम्पादित) पृ० १७६

५ "कहँ सुजान सुनहु वर नारी। तुम सयानि औ बूझनहारी।
मेहरिन्ह कहँ लोग सब देहरी। घरै असन स्थिर सोई मेहरी ॥
औ पुनि घरनि कहै सब कोई। घरहि सभारै घरनी सोई ॥"

उस्मान—चित्रावली (जगमोहन सम्पादित) पृ० १७६

कौलावती में वलिदान होने के लिए विवाद होता है, तब भी सुजान उनके प्रति ही नहीं सम्पूर्ण नारी जाति के प्रति अवज्ञा दिखलाता हुआ उन्हें बुद्धिहीन का विशेषण देता है[1]। नारी स्वभाव से ही दुर्बल आघात सहने में असमर्थ समझी जाती रही है। सुजान के न मिलने पर जब राजा दुखावेग में रुदन करने लगता है तब उससे प्रकारान्तर से यही कहा जाता है कि वह पुरुष है उसे साहस रखना चाहिए, रुदन और करुणा स्त्रियो का शस्त्र है[2]।

युग की भावनाओ के प्रभाव से नारी भोग का उपकरण तथा विलास का साधन थी किन्तु साथ ही वह पुरुष के पुरुषत्व की कसौटी थी। जब अलाउद्दीन राजा से पद्मिनी को मांगता है, तब नारीत्व की मर्यादा की रक्षा में सन्नद्ध क्षत्रिय वीर का स्वाभिमान चीत्कार कर उठता है। चाहे जितना बडा वैभवशाली राजा हो, किन्तु किसी की व्याहता स्त्री को मागना अनुचित है[3]। नारी की मर्यादा उसके गौरव की रक्षा के समक्ष बडे-बडे राज्य भी उत्सर्ग किए जा सकते हैं[4]। किन्तु सर्वत्र नारी की मर्यादा को यह गौरव नहीं प्राप्त था। विलास की प्रवृत्ति तथा सामन्तवादी परम्परा में नारी उपहार की वस्तु, राजनीति के दाव-पेंचो का अस्त्र, सामग्री समझी जाती थी। सोहिल राजा सौन्दर्य की प्रशसा सुनकर कौलावती को मागता है, और वलप्रयोग का भय दिखलाता है[5]। किन्तु क्षत्रिय जाति का आदर्श यही माना जाता था कि यदि कही स्त्री अथवा गाय की करुण पुकार सुनें तो सब प्रकार की कठिनाइयो एवम् बाधाओ को सहन कर उनकी रक्षा करना उचित है। इसके प्रतिकूल चलने से अपयश एवम् पाप का भागी होना पडता था[6]। नारी अवध्य थी, नारी वध महान पातक समझा जाता था। तभी माधवा-

---

१ "कहिसि मेहरिन्ह बुद्धि नहि रति, हौं अब मरहुँ होहि सती।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २३२

२ "जो तुम पुरुष भरो अस रोई, मेहरिन्ह का समुझावै कोई।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ८७

३. "का मोहि सिंघ देखावसि आई, कहौ तो सारदूल लै खाई।
भलेहि साह पुहुमिपति भारी, माँग न कोई पुरुख कै नारी॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त पृ० ४४७

४ "जो पै गृहनि जाइ घर केरी, का चितउर केहि काज चँदेरी।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४४८

५ "जौ हित देउ तो मया करेऊ, नाहि तो कठि करि आई लेऊँ।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० १८८

६ "क्षत्री सुनि जो ना करै, तिय अरु गाय गुँहारि।
पुहुमी फुल गागे परै, सरग होइ मुख छारि॥"

उस्मान—चित्रावली, पृ० १४६

नल कामकन्दला में कामकन्दला की मृत्यु-हेतु अपने को समझ कर विक्रम को परिताप होता है[1]।

युग की विचारधारा के अनुसार नारी पत्नी, सहधर्मिणी न होकर दासी थी। कुश और जल लेकर कन्या का पिता उसे समर्पित करते हुए विनय करता था, कि पति उसे दासी समझ कर ग्रहण करे[2]। नारी को अपनी कुलमर्यादा तथा सामाजिक मान्यताओं में सीमित होकर चलना पड़ता था। चरित्र की पवित्रता पर अधिक बल दिया जाता था[3]। कन्या-जन्म विवाह की कठिनाइयो, परिस्थितियो की अनिश्चितता मे दुख और चिन्ता का कारण था। जब तक कन्या का विवाह नही हो जाता था माता-पिता के ऊपर उत्तरदायित्व का भार रहता था। किन्तु वह केवल दुख का कारण न थी, प्रत्युत कभी-कभी गृह को आलोकित करने वाली होकर कन्यादान के पवित्र पुण्य द्वारा माता पिता का उद्धार करती थी[4]। नारी शरीर-विक्रय की प्रथा प्रचलित थी। इन सूफी-काव्यो मे वेश्या का उल्लेख कई स्थानो पर मिलता है। सिंघल के हाट का वर्णन करते हुए जायसी ने शृंगार हाट में रूप और यौवन का लेन-देन करती हुई, नव प्रसाधन से सुसज्जित भौंह-धनुप के कटाक्ष वाण से पुरुषो का अहेर कर रही वेश्याओ का उल्लेख किया है[5]। माधवानल की कामकन्दला स्वय राजदरबार में नृत्य करनेवाली पातुर थी[6]। बहु-विवाह प्रचलित था। रत्नसेन के नौ लाख तथा गन्धर्वसेन के सोलह सहस्र रानी थी[7]।

---

१ "प्रथमहि तिरिया वध मैं कीन्हा।"
आलम—माधवानल कामकन्दला, पृ० २१६ हिन्दी कवि और काव्य

२ "कहिसि लेहु यह चेरी जानी मैं सकल्पौ दै कुश पानी।
बोलसु जैस जग रीती, तै अपने भुजबल यह जीती।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० १५४

३ "कहिसि न मुई ऐसन बारी, जे अपने कुल लाइसि गारी।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० १८८

४ "आतमजा जो होत एक होत सदन उँजियार
कन्यादान दिहें ते होतें मुकुत हमार।"
नूरमुहम्मद—इन्द्रावती . हिन्दी के कवि और काव्य · पृ० ८३

५ "पुनि सिंगारहाट धनि देसा, कइ सिंगार तह बैठी बेसा।
हाथ बीन सुनि मिरग भुलाही, नर मोहहि सुनि पैग न जाहीं।
भौंह धनुक तह नैन अहेरी, मारहि बान सान सौं फेरी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १४५, १९५२, इलाहाबाद

६ "तिहिपुर बसै चन्द्र की कला पातुर सुनी कामकन्दला
ताको रूप बरनि को पारा, बरनत सहस्र जीभ पुनि हारा।"
आलम—माधवानल कामकन्दला, पृ० १९० (हिन्दी के कवि और काव्य)

७ जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २०७ और १५२, माताप्रसाद गुप्त

नारी का सत् एवम् आदर्श रूप

इन प्रेमाख्यानक काव्यो की नारी-भावना में आदर्श और कर्तव्य पर स्थित उत्सर्गमयी नारी के चित्रण भी मिलते हैं। स्वार्थहीन अविचल प्रेम, पत्नी की दृढ अनुरक्ति, तथा सपत्नी के प्रति भी स्नेह और शुभेच्छा की भावना मिलती है। पतिव्रता नारी जीवन-पर्यन्त अपने धर्म पतिभक्ति, पर अटल रहती है और पति की मृत्यु के उपरान्त उसी शैया पर चिर-निद्रा एवम् महामिलन में लीन हो जाती है। सूफी कवियो ने नारी की उदात्तभावनाओ का चित्रण भी किया है। प्रेम और स्नेह की दोला पर आदर के झूंक झूलने वाली मानिनी, रूपगर्विता नागमती पति-वियोग में अत्यन्त दीन एवम् वेदनाव्यथित हो जाती है। वह विरह में अपने अस्तित्व को भूल पक्षियो से अपनी विरह-वेदना कहती है। प्रियतम के वियोग में समस्त सुखद वस्तुएँ उसे दुख और वेदना से पूर्ण प्रतीत होती हैं। उसके विरह में हिन्दू गृहिणी के सात्विक मर्यादापूर्ण जीवन का आभास मिलता है। पति के सान्निध्य के लिए व्याकुल वह अपने अत्तित्व को मिटाकर, निजत्व को विसरा कर पति के मार्ग में उडने वाली रज होने को भी प्रस्तुत है[1]। नागमती भौंरा तथा काग से प्रिय को सदेश कहलाती है उसकी विरह-वेदना-क्लान्त दृष्टि को यही प्रतीत होता है कि उसकी विरहाग्नि के धुंए से ही यह सब काले हैं[2]। यद्यपि उसमें मानव सुलभ ईर्ष्या, द्वेष, राग की भावनाएँ हैं पर कवि उसकी दुर्बलताओ को शीघ्र ही दूर कर देता है। अन्त में, पति की मृत्यु के पश्चात् आदर्श राजपूत ललना के रूप में वह पति के साथ अग्नि मालाओ मे चिरविश्राम करती है। पद्मावती के चरित्र का विकास पहले प्रेम के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाली प्रेमिका के रूप मे होता है[3]। चित्तौड में वह एक कुशल और दूरदर्शी गृहिणी के रूप में दृष्टिगत होती है। राजा के द्वारा अपमानित कर निकाले हुए राघव चेतन को वह कगन देकर सतुष्ट करना चाहती है। राजा रत्नसेन के अलाउद्दीन द्वारा वन्दी वना लिए जाने पर अपनी सूक्ष्मदर्शिता से वह उसको मुक्त करा देती है। कुमुदिनी के प्रलोभन के उत्तर मे दिए कथन में उसके सतीत्व एवम् दृढ पतिभक्ति, एकनिष्ठा का मनोहर रूप व्यजित होता है। उसके शब्दो में विलासिनी की लिप्सा नही है,

---

१ "यह तन जारो छार कै कहौं कि पवन उडाउ
मकु तेहि मारग होइ परौ कत धरै जहँ पाउ।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त पृ० ३६०

२ "पिय सौं कहेहु सदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग
सो धनि विरहें जरि गई, तेहिके धुवा हम लाग।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३५८

३ "जौ रे जिअहिं मिलि केलि करहिं मरहिं तौ एकहि दोउ
तुम्ह पै जियँ जिनि होऊँ कछु, मोहिं जियँ होउ सो होउ॥
जायसी—जायसी ग्रन्थावली पृ० २६४

प्रत्युत पतिव्रता का आत्मविश्वास, निस्पृह प्रेम ध्वनित होता है[१]। विजयी बादल के साथ अलाउद्दीन के बन्दीगृह से मुक्त होते हुए राजा की आरती करते समय समर्पण की भावना साकार हो उठती है। वह तो अपने हृदय की कोमल भावनाओ, अपने शरीर की भेंट पहले ही दे चुकी, अब वह अपने उसी आराध्य की पूजा पूर्व-समर्पित की हुई सामग्री से कैसे करे[२]।

शत्रु के साथ युद्ध करता हुआ रत्नसिंह परमगति को प्राप्त होता है और पद्मावती नव वस्त्राभूपणो से सज्जित होकर प्रिय-सहगमन को प्रस्तुत होती है। यह सहगमन, अथवा सहमरण क्षत्रिय नारी के जीवन का उज्जवलतम्, भव्य-तम् आदर्श है। यह वेदना एवम् दुख का अवसर न होकर सुख और उल्लास का समय है। जब दोनो प्रेममयी आत्माएँ अनल के क्रोड में वैवाहिक सम्वन्ध की अविच्छिन्नता को सिद्ध करती हुई अक्षय शृगार एवम् विलास में लीन हो जाती हैं। नागमती और पद्मावती दोनो सती हो जाती हैं[3]। इन प्रियानुरागिनी सती स्त्रियो के अनुराग से स्वर्ग भी रतनार हो जाता है। उस्मान की चित्रावली में कौंलावती में आत्मोत्सर्ग की भावना का चरमोत्कर्ष दृष्टिगत होता है। वह सपत्नी तथा पति के कल्याण के लिए प्राणार्पण को प्रस्तुत है[४]। माधवानल कामकदला

---

१ "कुमुदिनि वैन सुनाए जरे, पदुमिनि हिय अंगार जस परे
रंग ताकर हौं जारौं रचा, आपन तजि जो पराए लचा।
एहि जग जौं पिय करिहि न फेरा, ओहि जग मिलिहि सो दिन दिन मेरा।
जोवन मोर रतन जह पीऊ, वलि सौपौ यह जोवन जीऊ।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५१७

२ "पूजा कवनि देउँ तुम्ह राजा, सवै तुम्हार आव मोहि लाजा
तन-मन जोबन आरति करेऊँ, जीउ काढ़ि नेवछावरि देऊँ।
पथ दूरि कै दिष्टि विछावौं तुम्ह पग धरहु नैन हौं लावौं
पायह वुहारत पलक न मारौं, वरुनिन्ह सेति चरम रज झारो।
हिया सो मँदिल तुम्हारे नाहां, नैनन्हि पथ आवहु तेहि माँहा।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५४७

३ 'नागमती पदुमावति रानी, दुवौ महासत सती वखानी
वाजनि वार्जाह होइ अकूता, दुऔ कंत लै चाहहि सूता।
एक जो वाजा भएहु विवाहू, अब दोसरे ओर होय निवाहू।
जियति जो जरिहि कत की आसा, मुए रहसि वैठेहि एकपासा।
जियत कत तुम्ह हम कठलाई, मुए कठ नहि छाडति सांई
औ जो गाठ कन्त तुम जोरी, आदि अन्त दिन्हि जाइ न छोरी।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५५३

४. "कहिसि कि हौ वलि देऊ, सरीरा। मकु यें दोउ लगि लागै तीरा।"
सौत के प्रति वचन—
"कहिसि कि हौं अपराधिनि तोरी करहु छोह सुन विनतो मोरी"

की नायिका में नर्तकी होते हुए भी एकनिष्ठ प्रेम का चरम विकास है[१]।

नारीगत् आदर्श

इन सूफी कवियो का नारी-आदर्श भी पातिव्रत का ही है वह भी नारी की चरम गति पति सेवा ही मानते हैं[२]। सेवा ही पति को वश करने का साधन है[३]। सूफी कवियो को भारतीय नारी का त्याग, सहिष्णुता एवम् आज्ञापालन का आदर्श मान्य है। चित्रावली में सखियों द्वारा प्रदत्त शिक्षा, सुजान के इस कथन, जो घर सभाले वही गृहिणी है, में नारी गत आदर्श स्पष्ट हो जाता है।

असत् रूप

इन सूफी काव्यो में नारी के असत् कर्तव्यच्युत रूप भी मिलते हैं। बादल की माता, और बादल की स्त्री भी क्षणिक दुर्बलता के कारण क्षात्र-धर्म के उदात्त आदर्शों से विमुख हो जाती हैं। बादल की पत्नी नव परिणीता षोडशी है अत हृदय की मधुर भावनाओ एवम् शृगार-लालसा में बाधा पडने से उसे क्षोभ होना स्वाभाविक है। वह नव-शृगार सज्जा से पति को विलास सुख का प्रलोभन देकर रोकना चाहती है। पुन यह सोच कर कि प्रिय रण-विमुख हो नही सकता वह उसे रण-सज्जा से प्रस्तुत करती है[४]। कुमुदिनी तथा देवपाल की दूती असत् नारी है। वह कपट पाखण्ड की प्रतीक-सी है। वह अपने टोने से असम्भव को भी सभव

रहे सदा तुम सीस पर सेंदुर भाग सोहाग।
हौं समदति हौ चरन गहि इहै मोर अनुराग।
उस्मान—चित्रावली जगमोहन सम्पादित पृ० २३१

१ यह हिय वज्र वज्र से, गाढ़ा, पाल्यौ वज्र वज्र में बाढ़ा।
जा दिन मीत विछोहा भयऊ, तबकि निखड खड ह्वै गयऊ।
आलम—माधवानल कामकदला, पृ० २२०, हिन्दी के कवि और काव्य

२ सोई पियारी पियहि पिरीती, रहे जो सेवा आयसु जीती।
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३७७

३. इन्द्रावति प्यारी कहेउ, ताकहँ चाहे पीउ। जो पिय की सेवा किहे, गरव राखै जीउ।
नूरमुहम्मद—इन्द्रावत, हिन्दी के कवि और काव्य, पृ० १०५

४ पायन्ह परै लिलाट धनि विनति सुनहु हो राय।
अलक परी फदवारि होइ कैसेहु तजै न पाय ॥
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५३२

५ रोएँ कत न बहुरै तेहि रोएँ का काज।
कत धरा मन जूझन घनि साजे सब साज ॥
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५३४

करने की क्षमता दिखलाती है[1]। अन्य सूफी काव्यों में नारी दिव्यशक्ति के प्रतीक के सहायक, सत् रूप में ही आती है।

सूफी काव्यो की नारी भावना में मिश्रित दृष्टिबिन्दु मिलते हैं। अपनी प्रगाढ रति की भावना की अभिव्यंजना के लिए उन्होने नारी को परमात्मा का प्रतीक अवश्य माना और उसके विरह में साधक की विकल विरह-वेदना का चित्रण किया है। उन्होंने नारी के सत् रूपो का सुन्दरतम् विकास दिखलाया है। किन्तु कथा में किए हुए सामान्य कथनो मे उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। नारी मर्यादा तथा उसका गौरव मान्य होते हुए भी सूफी कवियो के अचेतन मन मे —स्वर्ग से आदम के निष्कासन का कारण हौवा की मूर्खता थी—यह धारणा छिपी हुई थी। समकालीन परिस्थितियो में अज्ञान एवम् अशिक्षा के कारण, नारी-जाति में बौद्धिक विकास की न्यूनता ने उनकी धारणा को पुष्टि दी और उन्होंने निश्चयात्मक स्वर मे घोषित कर दिया कि तिरिया बुद्धिहीन होती है। मेहरी अबोध मूर्ख, विवेकरहित है, उसकी परामर्श से कार्य करने में पतन अवश्यम्भावी है। हठयोग के साथ, ब्रह्मचर्य एवम् कामिनी त्याग की भावना का भी प्रभाव उन पर पडा। उन्होंने भी नारी को भोग का कारण तथा माया का मूल माना। परन्तु उनके स्वर में सन्तो के समान तीव्र भर्त्सना और ताडना नही है। तत्कालीन युग में केवल भारत में ही नही, प्रत्युत ससार के सभी देशो में पातिव्रत धर्म मे ही नारी की एकमात्र गति मानी जाती थी, इन प्रेमगाथाकारो ने भी पति-भक्ति, दृढ़निष्ठा आदि पर अधिक बल दिया है।

---

१ कुमुदनि कहा देखु, मैं सोहौं, मानुस काह देवता भोहा।
जस कावरु चमारी लोना, को न छरा पाढ़ित औ टोना॥

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५१०

: ५ :

सगुण भक्ति

प्रकरण १

रामकाव्य में नारी-भावना

मध्ययुगीन जीवन की अलस, आदर्शहीन तन्द्रा में लीन हिन्दू जाति सन्तो की वानी तथा सूफी कवियो की हृदयस्पर्शी प्रेम-कथाएं सुन चुकी थी। सन्तो का निराकार और निर्गुण ब्रह्म उनके लिए केवल कौतूहल का विषय था। सूफी सन्तो ने लौकिक प्रेमगाथा द्वारा अलौकिक प्रेम-आत्मा और परमात्मा के एकीकरण-का जो परिचय दिया, उसने अपनी मार्मिकता से उनके हृदय को स्पर्श तो किया, किन्तु मानस की मृदु भावनाएँ सामान्य एवम् व्यावहारिक जीवन के मध्य निर्गुण ब्रह्म के रहस्य के अभेद्य पट से टकरा कर बिखर गईं। सामाजिक विषमता, धार्मिक विशृंखलता एवम् नैतिक अध पतन के मध्य रामानन्द की शिष्य परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास आदि रामकाव्यकारो ने सगुण ब्रह्म के लोकरक्षक के रूप को जगत के कर्मक्षेत्र में अवतरित किया[1]। रामकाव्य मे जीवन के समस्त क्षेत्रो में कर्मण्यता एवम् आदर्श का परिपाक हुआ है। तत्कालीन दुर्वल जीवन-दर्शन, डगमगाती हुई नैतिकता और कम्पित होती हुई कर्तव्यभूमि मे इस सर्वांगीण उदात्त आदर्श ने जीवनोन्मेष किया। रामकाव्य के कवियो ने राम के लोक सग्रहकारी रूप के आलोक में श्रुति-सम्मत मार्ग का निर्देश किया। कृष्ण-काव्य की रागानुगा भक्ति के समान राम का प्रतीक भी सामान्य जनता के लिए ग्राह्य और सुलभ था[2]।

---

१. "उसी आदर्श चरित्र के भीतर अपनी अलौकिक प्रतिभा के वल से उन्होने धर्म के सव रूपो को दिखाकर भक्ति का प्रकृत आधार खडा किया। जनता ने लोक की रक्षा करने वाले प्राकृतिक धर्म का मनोहर रूप देखा।"

रामचन्द्र शुक्ल—तुलसी ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड (प्रस्तावना) पृ० १०१ स० १९८०, काशी

२ "भगवान का जो प्रतीक तुलसीदास ने लोक के सम्मुख रखा है, भक्ति का जो प्रकृत आलवन उन्होंने खडा किया है, उसमें सौन्दर्य शक्ति और शील तीनो विभूतियों की पराकाष्ठा है। सगुणोपासना के ये तीन सोपान हैं जिन पर हृदय क्रमश टिकता हुआ उच्चता की ओर वढ़ता है। इनमें

तुलसी राम भक्ति को वैयक्तिक रूप न देकर मानव को पूर्ण बनाने वाली साधना मानते हैं, अत उनका काव्य सामाजिक, पारिवारिक और आध्यात्मिक जीवन के उच्चादर्शों से अनुप्राणित है।

रामकाव्य की पृष्ठभूमि

आलोच्य रामकाव्य के कवियो के समक्ष कोई स्पष्ट आधार न था। सर्वप्रथम वैदिक रामायण में राम का उल्लेख मिलता है, परन्तु उसका काल सदिग्ध है। वाल्मीकि ने ही रामाख्यान के बिखरे कथा सूत्रो को सगठित किया। महाभारत एवम् जातको मे भी रामकथा का उल्लेख मिलता है, जैन राम कथा का अपना पृथक स्वरूप है। पुराणो में राम से सम्बन्धित प्रसगो का आधार वाल्मीकि रामायण है। भागवत पुराण, योग वासिष्ट, अध्यात्म रामायण आदि धर्मग्रन्थो में राम ब्रह्म के गौरवमय रूप में अवतरित हुए हैं। कालिदास के 'रघुवश', प्रवरसेन कृत 'रावण-वध' आदि सस्कृत ग्रन्थो से भी हिन्दी रामकाव्य को प्रेरणा मिली। हिन्दी भाषा में रामकाव्य की परम्परा सक्षिप्त ही है। भूपति ने १३४२ सवत् (१२८५ ई०) में रामायण लिखी, अन्य मुख्य कवि तुलसीदास १५९८ स० (१५४१ ई०) नाभादास १६५७ स० (१६०० ई०) केशवदास १६१२–७४ (१५५५–१६७३) और सेनापति हैं। उस युग की उच्छृङ्खल लोक-रुचि के अनुकूल न होने के कारण राम-काव्य का प्रचार अधिक न हो सका।

रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्तो के विश्लेषण से रामकाव्य का दर्शन स्पष्ट हो सकेगा। हिन्दू जीवन की सचालिका शक्ति धर्म है, और धर्म एवम् दर्शन का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अत रामचरितमानस दर्शन के मूल तत्वो को प्रस्तुत करता है। तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्तो के विषय में मतभेद है, कोई उन्हे विशिष्टाद्वैतवादी और कोई अद्वैतवादी बताता है। तुलसी के राम समस्त कारणो से परे ईश हैं, वह अनीह, अनाम, अज सच्चिदानन्द विश्वरूप भगवान हैं। वेद उसे आदि अन्त हीन बताते हैं। रघुकुल अवतश राम ही सच्चिदानन्द और व्यापक ब्रह्म हैं[1]। गोस्वामी तुलसीदास सगुण और निर्गुण

से प्रथम सोपान इतना सरल है कि स्त्री-पुरुष, मूर्ख पण्डित, राजा-रक सब उसपर अपने हृदय को बिना प्रयास अडा देते हैं।"

रामचन्द्र शुक्ल—तुलसी ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड (प्रस्तावना) पृ० १३३

१. "सोई सच्चिदानन्द रामा, अज विज्ञान रूप बल धामा।
व्यापक व्याप्य अखड अनन्ता, अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४७१, स० १९८०, काशी
"तुम्ह सम रूप ब्रह्म अविनाशी, सदा एकरस सहज उदासी।
अकल अगुन अनघ अनामय, अजित अमोघ शक्ति करुनामय॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४२७, स० १९८०, काशी
स० रामचन्द्र शुक्ल

ब्रह्म दोनो को ही अभेद मानते हैं। परमब्रह्म ही भक्तो के प्रसादन हेतु नर रूप में अवतरित होकर मनुज सदृश लीला विस्तार करता है[१]। केशव के मतानुसार पुराण एवम् विद्वान जिसकी पूर्णता की घोषणा करते हैं, शास्त्रविद् भी जिनके मर्म को समझने मे असमर्थ हैं, वही ब्रह्म भक्तो को सगुण रूप से दर्शन देता है[२]। पचभूतो से निर्मित होने के कारण जीव ब्रह्म से भिन्न है। जीव स्वतन्त्र नही है, माया मे वह बन्धनबद्ध हो जाता है[३]। रघुकुल गौरव राम ही ब्रह्म के रूप में माया, गुण, काल, कर्म, आदि के अधिष्ठाता हैं। समस्त जड-चेतन को इगित पर नृत्य कराने वाली माया राम की आज्ञाकारिणी है[४]। गोस्वामी जी को माया के दो रूप मान्य हैं—विद्या और अविद्या। विद्या अथवा माया के सद्‌रूप का तादात्म्य विश्व की स्थिति, एवम् सहार-कारिणी आदि-शक्ति सीता के साथ हो गया है[५]। माया का यह सद्‌रूप भगवत इच्छा एवम् प्रेरणा से भक्त को अपनी शरण में ले लेती है और उसमें भगवान के प्रति दृढ अनुरक्ति का उद्रेक करती है। राम के वाम भाग में सुशोभित आदि-शक्ति के अश से अनेक त्रिदेवियो की उत्पत्ति होती है[६]। केशव भी जीवात्मा को सच्चिदानन्द ब्रह्म का रूप तथा माया के दो रूपो का अस्तित्व

---

१ "भगति हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तन भूप।
किए चरित्र पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४७३, स० १९८०, काशी
"नेति नेति जेहि वेद निरूपा, चिदानन्द निरुपाधि अनूपा।
सभु विरचि विष्णु भगवाना, उपजहिं जास अस ते नाना॥
ऐसेहु प्रभु सेवक बस अहई, भगति हेतु लीला तनु गहई।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ६५

२ केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध (दीन सम्पादित) पृ० ३,
प० स० २००१, इलाबाद

३ "ईश्वर अश जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया वस भयेउ गोसाईं, बधेउ कीर मरकट की नाईं॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४९५

४ "सो माया सब जगहि नचावा, जासि चरित्र लखि काहु न पावा।
सोई प्रभु भ्रूविलास खगराजा, नाच नटी इव सहित समाजा॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४७१

५ "श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जगपालति, हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० २०६

६ "जासु अस उपजहिं गुनखानी, अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु लय होई, राम वाम दिसि सीता सोई॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ६६

मानत हैं। वह भी समस्त प्राणियो के कर्मों के मूल में माया की प्रेरणा देखते हैं[1]। माया का दूसरा रूप अविद्या अत्यन्त भयकर है। काम, दम्भ और पाखण्ड, कपट उसके शूर हैं[2]।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-दर्शन स्वस्थ और सन्तुलित है। आदर्श और मर्यादा ही उसकी आधारस्थली है। मानव जीवन के विविध क्षेत्रो में आदर्श एवम् कर्तव्य का उत्कर्ष दिखाना ही उन्हें अपेक्षित रहा। भगवान राम के लोकरक्षक स्वरूप को वर्णनीय बताकर, उस दिव्य शक्ति की कल्याण-विधायिनी शक्तियो के साक्षात्कार द्वारा उन्होने जन-हृदय को आश्वस्त कर, उसे कर्तव्य मार्ग प्रदर्शित किया है। इनके मतानुसार कविता, यश और प्राणी वही सद और प्रशसनीय है जो सबके लिए सुखकारक हो[3]। राम के नाम में राम से भी अधिक शक्ति है। इसी शक्ति-सम्पन्न पावन राम-नाम के मणि-दीप को जिह्वा के द्वार पर रखने से, वाह्य एवम् अभ्यन्तर दोनो में ही भक्ति एवम् विवेक का पावन आलोक व्याप्त हो जावेगा[4]। उनको समाज में वर्णाश्रम धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा अभीप्सित रही। अपने वर्ण-प्रतिपादित वेद-विहित कार्यों के सम्पादन से ही व्यक्ति सौख्य उपलब्धि कर सकता है[5]। समाज एवम् परिवार के सुसचालन के लिए प्रत्येक व्यक्ति के

---

१ "उठो हठी होहु न काज कीजै, कहँ कछू राम सो मान लीजै।
अदोष तेरो सुत मात सोहै, सो कौन पाया इनको न मोहै॥"
केशव—रामचन्द्रिका पर्वार्द्ध, स० २००१ काशी

"किधौं जीव की जोति, माया न लीनी, अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी
मानों सबर स्त्रीन से काम वामा, हनुमान ऐसी लखो रामरामा॥"
केशव—रामचन्द्रिका पर्वार्द्ध, स० २००१ काशी, पृ० २२१

२ "व्यापि रहेउ ससार में, माया कटक प्रचड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखंड॥"
केशव—रामचन्द्रिका पर्वार्द्ध, स० २००१ काशी, पृ० ४७१

३ "कीरति भनिति भूति भल सोई, सुरसरि सम सब कर हित होई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १० रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य द्वारा सम्पादित

४ "राम नाम मनि दीप धरि जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर वाहिरो जो चाहसि उजियार॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १४

५ 'वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुख नहि भय शोक न रोग॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४४६

लिए अपने लिए निर्दिष्ट धर्म एवम् कर्तव्य का पालन अभीष्ट है[1]। स्वप्न-दृष्टा तुलसीदास ने आदर्श, कल्पना और कथा का आधार लेकर जिस रामराज्य को मूर्त किया, वहाँ सर्वत्र सुख और साम्य है। उस रामराज्य की व्यावहारिक समानता में सब पुरुष एकपत्नीव्रत का पालन करते हैं, और नारी पातिव्रत को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म मानती है[2]। इनके अनुसार जीवन के विभिन्न सम्बन्ध त्याग और उत्सर्ग के प्रतीक है[3]। राम परिवार के सदस्यो के कर्तव्य-सलग्न रूप उनकी आदर्श भावना के ही मूर्तरूप हैं। मानव जीवन के समुचित विकास के लिए स्थापित चार आश्रमो में गृहस्थाश्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गृहस्थ जीवन के पारस्परिक व्यवहार मे स्नेह, सवेदना, त्याग और ममता अपेक्षित है। गृह-जीवन की विधात्री नारी में पातिव्रत होना आवश्यक है। सभी रामकाव्यकारो ने पातिव्रत को स्पृहणीय एवम् पावन माना है[4]।

गोस्वामी जी के अनुसार धर्म दिव्य और अलौकिक वस्तु है। सत्य, शील, कर्तव्यपरायणता, अहिसा आदि इसके विविध रूप हैं। घोर यातनाओ, कठिन कष्टो को झेल कर भी धर्म-पथ से विचलित नही होना चाहिए। आगम-निगम पुराण के अनुसार सत्य अद्वितीय धर्म है। ससार की समस्त सम्पदा धर्मशील के पीछे दौडती है। अशुचि एवम् चचल चित्त ही अनाचार में प्रवृत्त होता है। गोस्वामी जी के अनुसार विनय ज्ञान-सम्पन्न, अहम् अभिमान विहीन, परहित-रत, हरिभजन के श्रोता और वक्ता ही सच्चे भक्त अथवा सन्त हैं। वे विषयो मे निर्लिप्त रहते हैं तथा हर्ष, लोभ आदि भावनाओ से रहित हैं[5]। मानव तन को पाकर उसका सदुपयोग करना वाछित है। यौवन के ज्वर में, कुपथ्य युवती के सेवन से मानव

---

१ "सब नर करहिं परसपर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४४९

२ "एक नारिव्रत रत सब झारी, ते मन वच क्रम पति हितकारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४५०

३ "राजा प्रजा, उच्च-नीच, धनी दरिद्र, सबल-निर्बल, शास्य-शासक, मूर्ख-पडित, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र आदि भेदों के कारण जो अनेक रूपात्मक सम्बन्ध प्रतिष्ठित हैं, उनके निर्वाह के अनुकूल मन (भाव) वचन और कर्म की व्यवस्था ही उनका लक्ष्य है, क्योंकि इन सम्बन्धो के सम्यक निर्वाह में ही वे सबका कल्याण मानते हैं।"
रामचद्र शुक्ल—तुलसी ग्रथावली, तीसरा खण्ड, (प्रस्तावना) पृ० १२७

४ "धन्य सुदेश जहाँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ॥"
रामचद्र शुक्ल—तुलसी ग्रथावली, तीसरा खण्ड, पृ० ५०२

५ "विरति विवेक विनय विग्याना, बोध जथारथ वेद पुराना।
दभ, मान मद करहिं न काऊ, भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।

मदन सन्निपात से ग्रस्त हो जाता है[1]। अत इन भोगैषणाओ से दूर रह कर राम-चरणो की भक्ति ही में सुख मानना श्रेयस्कर है। काम आदि दुर्वासनाएँ तप में बाधक हैं, अत. इनका परित्याग अपेक्षित है। इसके साथ ही काम का ब्रह्मास्त्र नारी[2] भी साधना-पथ की बाधक हैं, अत भक्तो का उससे पृथक रहना व्यक्तिगत साधना मात्र नही है, प्रत्युत उसमें व्यक्तिगत और लोकगत दोनो साधनाओ का समन्वय है। अतिशय भोग और मोह एवम् अतिशय वैराग्य का सन्तुलन ही उनका इच्छित मार्ग है[3]। मानव को समस्त विकारो का परित्याग कर सत्कर्मो द्वारा पुण्य का सचय करना चाहिए, क्योकि कर्म-भोग के अनुसार ही वह दुख, सुख भोगता है[4]। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरणानुरागी हृदय को वही वस्तु और व्यक्ति प्रिय है, जिससे उनके इष्टदेव का सम्बन्ध हो[5]। वही व्यक्ति कर्तव्यपरायण,

---

गावहिं सुनहिं सदा ममलीला, हेतु रहित परहित रत सीला।
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते, कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३२

"विषय अलंपट सील गुनागर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।
सम अभूतरिपु विमद विरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।
कोमल चित्त दीनन्ह पर दाया। मन वच क्रम मम भगति अमाया।
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रानसम मम ते प्राणी।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम खण्ड, पृ० २

१. "जोवन जर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, खण्ड २, विनयपत्रिका पृ० ५०
पद

२ "लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह के जग लीका
एहि के एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोई भारी
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, खण्ड १, पृ

३ "घर कीन्हें घर जात है, घर छाडे घर जाइ।
तुलसी घर वन बीच ही, राम प्रेम पुर छाइ।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, दूसरा खण्ड दोहावली, पृ० १२६

४. "काहु न कोऊ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम खण्ड

५ "जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, दूसरा खण्ड, विनयपत्रिका पृ

सुशील और साधु है, जो रामभक्त हो। रामचरणानुराग ही जीवन का सारा तत्व है। उससे विहीन व्यक्ति सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी इन्द्रायण के फल के समान अवगुणपूर्ण एवम् कटु है। उच्च-वशोत्पन्न व्यक्ति भी यशवान, लोकोपकारी, शीलवान, रूपवान होने पर भी भगवद्-भक्ति के बिना पूर्ण नही है[1]।

केशव ने अपनी रामचन्द्रिका मे मानव के चार साध्यो की व्याख्या कुम्भकरण द्वारा कराई है[2]। परन्तु उनके जीवन-दर्शन में युग की विलासी प्रवृत्ति की छाप स्पष्ट है। उन्होने भी पातिव्रत पर अधिक बल दिया है तथा स्त्री को ही भोग का कारण बता कर अपनी एवम् पराई नारी के परित्याग का निर्देश किया है[3]। कवि के जीवन-दर्शन में सन्तुलन का अभाव है, आदर्शवादिता उपदेशात्मक प्रवृत्ति का रूप धारण कर लेती है, जब पुत्र माता को नारी धर्म का उददेश देता है।

रामकवि और नारी

रामकवियो में तुलसी की नारी-भावना विवाद एवम् मतभेद का विषय रही है। कतिपय विद्वानो के अनुसार तुलसी ने नारी-जाति को आदर और श्रद्धा की पात्री माना है। उनके काव्य में सत्-चरित्रो का अकन सुन्दर हुआ है। तुलसीदास ने नारी निन्दा वही पर की है जहाँ पर नारी ने धर्म विरोधी आचरण किया है। अथवा उन्होने नारी-विषयक नीति-वाक्य उद्धृत किये हैं[4]। आचार्य शुक्ल जी ने

---

१ "जो पै रहनि राम पै नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सो जाय जियत जग माहीं।
काम, क्रोध, मद, लोभ, नीद, भय, भूख, प्यास सबहूँ के।
मनुज देह सुरसाधु सराहत, सो सनेह सिय-पी के।
कीरति, कुल, करतूति, भूति, भनि, सील, सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु, अनुराग रहित जस सालन साग अलोने।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, द्वितीय भाग, पृ० ५५१, पद १७५

२ केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध, प्र० स० २००१, स०, पृ० ३१०

३ "निज पति पथहि चलिए, सुख दुख का दल दलिए।
तन मन सेवहु पति को, तब लहिए सुभ गति।"
केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध, स० २००१, पृ० १३४
"जहाँ भामिनी भोग तह, बिनु भामिनी कह भोग।
भामिनी छूटै, जग छूटै, जग छूटै सुख भोग॥"
केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, तृ० स० १९४५, पृ० ५६

४ "तुलसीदास ने नारी जाति के लिए बहुत आदर-भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनुसूया, कौशल्या, सीता, ग्रामवधू आदि की चरित्ररेखा पवित्र और धर्मपूर्ण विचारों से निर्मित हुई हैं। कुछ आलोचकों का कथन है कि तुलसीदास ने नारी जाति की निन्दा की और उन्हें ढोल गवार की कोटि ाा। परन्तु यदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाय तो विदित

तुलसी के नारी निन्दा के प्रसगो को अर्थवाद के अन्तर्गत लाकर उनके ऊपर आरोपित नारी निन्दा के दोष के परिहार करने का प्रयास किया है। शुक्ल जी का मत है युग व्यापक विराग और तप की भावना के कारण तुलसी ने नारी के उस रूप का विरोध किया है जो तप और निवृत्ति मे बाधक है[1]। माताप्रसाद गुप्त नारी चित्रण मे तुलसी की अनुदारता स्वीकार करते हुए उसके कारण से अनभिज्ञता प्रकट करते हैं[2]। मिश्रबन्धुओ ने तुलसीदास को नारी-निन्दक कहा है। उनके मतानुसार तुलसी ने कौशल्या आदि के चरित्रो को इसीलिए सुन्दर और पवित्र बताया, कि वह राम से सबधित हैं। शेष नारियो को सहज, जड, अपावन तथा स्वतन्त्र होने के अयोग्य माना है[3]। कुछ साहित्यकारो का यह अनुमान है कि गोस्वामी जी की नारी निन्दा का कारण उनका नारी सम्पर्क का अभाव है। ममतामयी जननी का मृदु वात्सल्य उनके लिए एक कल्पना मात्र थी। अपनी स्त्री द्वारा फटकार पाकर वह वैरागी हुए, अत नारी के प्रति जो विराग-भावना उनके अन्तर में थी, समकालीन नारी की दयनीय दशा एवम् साहित्य की परम्परा से प्रेरणा पाकर पनप उठी। इस कथन में अर्ध सत्य तो है, इसको अस्वीकार नही किया जा सकता।

होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थित किए गए जबकि नारी ने धर्म विरोधी आचरण किए।"

रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४६४ १६३८, इलाहाबाद

१ "अत गोस्वामी जी ने जो कहा है वह सिद्धान्त वाक्य नहीं है, अर्थवाद मात्र है।"

रामचद्र शुक्ल—तुलसी ग्रथावली, तीसरा भाग, प्रस्तावना, पृ० १२६, १६८ स०

"उन पर स्त्रियों की निन्दा का महापातक लगाया जाता है। पर यह अपराध उन्होंने अपनी विरक्ति की पुष्टि के लिए ही किया है। उसे उनका वैरागीपन समझना चाहिए। सब रूपों में स्त्रियों की निन्दा उन्होंने नहीं की है। केवल प्रमदा या कामिनी के रूप में, दाम्पत्य रति के आलंबन के रूप में की है—माता, पुत्री, भगिनी आदि के रूप में नहीं।"

रामचद्र शुक्ल—तुलसी ग्रथावली भाग ३, पृ० १२८

२ "प्रत्येक युग के कलाकार नारी चित्रण में प्राय उदार पाए जाते हैं। किन्तु नारी चित्रण में तुलसीदास बेहद अनुदार हैं। यद्यपि उनकी इस अनुदारता का कारण अब तक रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ है। पर नारी विषयक उनकी अनुदारता एक ऐसा तथ्य है जिसको अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है।"

माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० २०७, १६५३ इलाहाबाद

३ मिश्रबन्धु—हिन्दी नवरत्न, पृ० १६८, १६६१ स० च० स०, लखनऊ

यथार्थ-नारी की विषम अवस्था ने नारी के प्रति तुलसी के दृष्टिकोण में विमुखता तथा हीनता प्रस्तुत की होगी।

वास्तव में तुलसी की नारी भावना के सम्यक विश्लेषण के लिए उसका चार शीर्षको में वर्गीकरण आवश्यक है। प्रथम नारी-रूप इष्ट से सम्बन्धित नारी का है। दूसरा नारी का आदर्श रूप है, इसके अन्तर्गत कर्तव्यपरायण चरित्रो के सत् रूप के विकास के अतिरिक्त नारी आदर्श की व्याख्या भी है। तीसरा रूप समाज से उपलब्ध नारी रूप का चित्रण है और चौथा सन्त-मत के अनुसार अथवा विराग भावना से नारी निन्दा का है।

इष्ट से सबंधित नारी

परम-महिमा-सम्पन्न, समस्त विश्व को सुख एवम् कल्याण प्रदान करने वाले राम की माता कौशल्या तुलसी के आदर एवम् पूज्य भाव की पात्री हैं[1]। जगत्-जननी करुणानिधान की अत्यन्त प्रेमपात्री सीता की अनुकम्पा कवि की बुद्धि को अमलता प्रदान करती है[2]। माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि सीता, कौशल्यादि का चरित्र-अंकन पवित्र एवम् सुन्दर हुआ, क्योंकि वे उनके आराध्य की प्रेयसी और माता हैं[3]। वस्तुत गोस्वामी जी की आदर्श एवम् सद्नारी की कसौटी राम का सम्बन्ध और भक्ति है। सीता, कौशल्यादि की चरित्र रेखा आदर्शमयी है, पर ये सब इष्ट को प्रिय हैं तथा इष्ट से प्रेम और भक्ति करती हैं। ग्रन्थारम्भ मे कवि कौशल्यादि सब नारियो को पुनीत तथा शुभ आचरण वाली बताता है[4]। किन्तु राम वन-गमन उपरान्त कैकेई को मन भर कर धिक्कारता रहता है। कैकेयी की वाणी कवि की कठोरता को भी लज्जित करने वाली प्रतीत होती है। उसकी जीभ रूपी धनुष से वाक्य-बाण छूटते प्रतीत होते हैं[5]। उसको रोष-तरगिणी बताते

---

१ "बंदौ कौशल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग मांची।
प्रगटेउ जँह रघुपति ससि चारू। विस्व सुखद खल-कमल-तुसारू॥"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० १२

२ "जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।
जाके जुग-पद-कमल मनावौं। जासु कृपा निर्मल मति पावौं॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, पृ १३

३ माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० ३०७, १९५३ इलाहाबाद

३ "कौशल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
मति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरिपद कमल विनीत॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ८३

५ "निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कुटिलता अति अकुलानी।
जीभ कमान वचन सरनाना। मलहुँ महिष मृदु लच्छ समाना॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, पृ० १७३

है[1]। नगरवासियो द्वारा भी कैकेयी को कुबुद्धि, कुटिल, कठोर, अभागी एवम् 'रघुवश-वेनु-वन-आगी' कहलाते हैं[2]। लक्ष्मण-जननी सुमित्रा के लक्ष्मण को विदा देते समय के कथन में तुलसीदास का भक्त-हृदय ही प्रगट होता है[3]।

वन के मध्य त्यागमयी पतिप्राणा पत्नी के रूप में सीता पति के साथ विपिन-वास में भी स्वर्णादपि सुख का अनुभव करती है। प्रिय के साहचर्य, प्रियतम की स्नेहमयी स्निग्ध छाया में त्यागमयी पत्नी को कटक भी सुमनवत दृष्टिगत होते हैं। उनके गरिमामय नारीत्व के चरम विकास की महिमा तुलसीदास उन पर रामप्रिया और जगजननी की अलौकिकता का आरोप कर न्यून कर देते हैं[4]। नृपति दशरथ के मरणकाल में सुत-वियोग के महान दुख से उत्पीडित कौशल्या, सहिष्णुता एवम् धीरता की प्रतीक बन कर, स्थिर बुद्धि, विवेक और सहनशीलता का परिचय देती है। इस धैर्य और स्थितप्रज्ञ की सी मनोवृत्ति की गरिमा को भी तुलसीदास राम-महतारी की विशेषताओ के अन्तर्गत लाते हैं[5]। भरत राम विरोधी माता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अपने को महान पातकी बताते हैं। वह अपनी जननी की भर्त्सना करते हैं, उसे कुमति बताते हैं। यह भारतीय सस्कृति के आदर्शों की स्पष्ट अवहेलना है कि माता के लिए पुत्र दुर्वचनो का प्रयोग करे,

---

१ "अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरगनि बाढ़ी।
पाप पहार प्रगट भै सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई।।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, पृ० १७०

२ "निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा विष चाहत चीखा।
कुटिल कठोर कुबुधि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन-आगी।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड पृ० १७५

३ "पूजनीय प्रिय परम जहा ते। सब मानिअहि राम के नाते।
अस जिय जानि सग बन जाहू। लेहू तात जग जीवन लाहू।।"
× × ×
"पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति-भगतु जासु सुत होई।
नतरु बाझ भलि बादि बिआनी। रामविमुख सुत तेंहितहानी।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १८६

४ "सुमिरत राम तजहि जन तृन सम विषय बिलासु।
रामप्रिया जग-जननि सिय, कछु न अचरजु तासु।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० २१०

५ "उर धरि धीर राम महतारी। बोली वचन समय अनुसारी।
नाथ समझि मन करिअ विचारु। राम वियोग पयोधि अपारु।
करनधार तुम अवध जहाजू। चढेउ सकल प्रिय पथिक समाजू।
धीरज धरिअ त पाइब पारु। नाहि त बूडहि सबु परिवारु।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० २१७

किंतु कैकेई राम विरोधिनी है[1]। दूसरे स्थल पर वात्सल्यमयी कौशल्या भरत को भी राम के ही समान स्नेह-पात्र मानती हैं। उनके स्नेहपूर्ण हृदय में सबके लिए सम-भाव है। परन्तु तुलसी उनके चरित्र की महत्ता का वर्णन न करके, उनके सत्कल्याण-विधायक रूप का कारण राम की माता होना ही मानते हैं[2]।

सामान्यत मर्यादापालन एवम् पातिव्रत को तुलसीदास सर्वाधिक महत्व देते हैं। मर्यादा का अतिक्रमण उन्हें क्षम्य नही है। परन्तु इष्ट की भक्ति करने वाली, धर्मोपासना के क्षेत्र में अग्रसर होने वाली नारी के पति-त्याग को भी वह श्लाघ्य मानते हैं। कृष्ण प्रेम-मतवाली गोपियो के पतित्याग को कल्याण और सुख का आवाहक बतलाते हैं[3]। भगवद्भक्ति के कारण अपने परमपूज्य पति को कटु-वचन कहने वाली नारी मन्दोदरी उनके दृष्टिकोण के अनुसार प्रशसनीय है। मन्दोदरी का पति को निर्लज्ज, मृत्यु की ओर उन्मुख होने वाला बताना हरिभक्ति के कारण क्षम्य है[4]। हरिभक्ति मय नारी अथवा नर राम को अत्यन्त प्रिय है अत शबरी को भी योगिवृन्द दुर्लभ गति मिलती है। तुलसी राम भक्ति मे सलग्न नर अथवा नारी दोनो को ही परम गति के अधिकारी मानते हैं[5]।

---

१ "कइकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमित भइ काहे न बाझा।
कुलकलक जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रिय-जन-द्रोही॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० २२१

२ "सरल सुभाय माय हिय लाए। अतिहित मनहु राम फिरि आए।
भेंटेउ बहुरि लषन-लघु-भाई। सोकु सनेहु न हृदय समाई।
देखि सुभाउ कहय सब कोई। राममातु अस काहे न होई॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग पृ० २२१

३ "बलि गुरु तज्यौ कत व्रत बनितनि। भए मुदमगलकारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ५५१, पद १७४

४ "अब पति मृषा गाल जनि मारहु, मोर कहा कछु हृदय बिचारहु।
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु, अग जगन्नाथ अतुल बल जानहु।"
× × ×
"सूपनखा की गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहि लाज बिसेखी।"
× × ×
"कालु दड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।
निकट काल जेहि आवै सोई। तेहि भ्रम होहि तुम्हारिहि नाई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३८७

५ "नव मह एकउ जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।
सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे।
जोगि वृन्द दुर्लभ गति जोई। तो कहु आज सुलभ भइ सोई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १ पृ० ३१५

नारी का सत् रूप एवम् नारी आदर्श

तुलसी को पारिवारिक जीवन में नारी के कल्याण-विधायक, ममतामय रूप का विकास करना अभीप्सित था। जीवन की विशृंखलताओं के मध्य, उन्होंने ऐसी नारी का अंकन किया जो गृह-जीवन में त्याग, ममता और कर्तव्य का संबल लेकर अग्रसर होती है। अपने हृदय रक्त से साधना और कर्तव्य का अभिषेक करती है। वेदना और पीड़ा, दुख और विषाद, विलास और विराग के मध्य वह सम है। सहिष्णुता और धीरता की वह मूर्त रूप है। सीता, कौशल्या, पार्वती, सुमित्रा, अनुसूया तथा मन्दोदरी आदि के चरित्रों में यह आदर्श रूप प्रतिफलित हुआ है। जैसा कि अभी कहा गया है कि इष्ट से भक्ति करने के कारण इन नारियों के चरित्र कवि की लेखनी से उज्ज्वल ही अंकित हुए हैं, परन्तु यदि तुलसी की भक्तिभावना का आरोप हटाकर देखें, तब भी यह चरित्र स्वतः पूर्ण आदर्श और पवित्र है। कौशल्या का हृदय मन्दाकिनी की वह शीतल धारा है जो पात्र-अपात्र, ऊंच-नीच का विचार किए बिना सबको समभाव से शीतलता और स्निग्धता का पवित्र दान देती है। गंभीर, गूढ़तम् आघात सह कर भी अपनी विवेक बुद्धि को अविकार रखने की क्षमता उनमें है[1]। उनके ममतापूर्ण स्नेह में सबके लिए समभाव से स्नेहधारा निःसृत होती रहती है। केवल पुत्र ही नहीं, प्रत्युत हनुमान आदि भी उन्हें पुत्रतुल्य ही प्रिय प्रतीत होते हैं[2]। उनके स्नेहपूर्ण हृदय में पुत्रवधू के प्रति भी अपरिसीम ममता है, जिसे वह जीवन-मूल के समान स्नेह-जल से पालती रहती है[3]। सीता आदर्श पत्नी हैं, और साथ ही मर्यादाशीला कुलवधू भी हैं। हृदय पति के साथ विपिन जाने को उत्सुक है, पर पति यहीं अयोध्या में ही रुकने का उपदेश देते हैं। पतिव्रता का हृदय क्षोभ से व्याकुल हो उठता है, किन्तु पारिवारिक जीवन की सात्विक मर्यादा का उल्लंघन न कर सास के चरण स्पर्श कर, उनके समक्ष पति से भाषण करने की अविनय के लिए क्षमा प्रार्थना कर लेती है[4]।

---

१. "कहौं जान बन तौ बढ़ि हानी, संकट सोच बिबस में रानी।
बहुरि समुझि तिय धरम सयानी, रामभरतु दोउ सुत सम जानी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली प्रथम भाग, पृ० १७६

२. "कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायेउ माथ।
आसिष दीन्हीं हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ४४२

३ "कलप बेलि जिमि बहु बिधि लाली, सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।"
× × ×
'जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १८०

४ "बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी।
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बडि अविनय मोरी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १८२

यह आरोप कि सीता का चित्रण मध्यकालीन गुड़ियावधू के रूप में हुआ है, ठीक नही प्रतीत होता है। राम द्वारा अग्नि-परीक्षा आदि के अवसर पर साध्वी सीता प्रतिरोध नही करती, इसका कारण उनके भारतीय ललना के सस्कार हैं। उनको अपनी पवित्रता पर अखण्ड विश्वास है, साथ ही परम पूज्य पति के वचनो का अवहेलना करना उन्हे मान्य नही है[१]। सीता के रूप मे नारी का शास्त्रीय आदर्श मूर्त हुआ है। सुविशाल साम्राज्य की साम्राज्ञी हो जाने पर भी वह निरभिमान कुलवधू है। गृह में अनेक परिचारिकाओ तथा सुविधा के अनेक साधन होने पर भी वह स्वय गुरुजनो की सेवा एवम् परिचर्या करती है[२]। विध्वस एवम् युद्ध-सम्बन्धी शक्ति चमत्कार न होने पर भी उनमें पतिव्रता का तेज और गौरव है। रावण द्वारा वैभव और विलास के स्वर्णिम प्रलोभनो के समक्ष उनका एक ही उत्तर है कि या तो राम के भुजदण्ड मेरे कठ को घेरेंगे अथवा तेरी तलवार[३]।

सुमित्रा आदर्श माता है, जिनके लिए कर्तव्य ही प्रधान है। माता की कोमलता और ममता नगण्य। बडे भाई तथा प्रभु दोनो रूपो में आदरणीय राम की सेवा की ही वह श्रेयस्कर बताती हैं[४]। भगवती पार्वती अपने अचल पातिव्रत, दृढ अनुरक्ति से शिव को पति रूप में प्राप्त करती हैं और पतिव्रताओ की शिरोमणि कही जाती हैं[५]। मन्दोदरी पतिव्रता होते हुए भी पति की दुर्नीति का विरोध करती है, एवम्

१ "प्रभु के वचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम वचन पुनीता।
लछिमन होउ धर्म के नेमी। पावक प्रगट करहु तुम वेगी।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ४२६

२ "जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सकल सेवा विधि गुनी।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचद्र आयसु अनुसरई।।
जेहि विधि कृपासिधु सुख मानई। सोई कर श्री सेवाविधि जानई।
कौशल्यादि सासु गृह माहीं। सेवहि सबन्हि मान मद नाहीं।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ४५१

३ "स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि-कर-सम दसकधर।
सो भुजकठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३४६

४ "सिय रघुवीर की सेवा सुचि ह्वै हैं तो जानिहौ सही सुत मोरे।
कीजहु इहै विचार निरतर राम समीप सुकृति नहिं थोरे।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० ३३५

५. "उरधरि उमा प्रानपति रचना। जाइ विपिन लागी तपु करना।
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० ३६

"पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कह महस सारदा सेस।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० १०२

सद्‌मार्ग दिखलाती है[1]। इन सब आदर्श रूपों में तुलसीदास ने अपनी आदर्श भावनाओं को ही आकार दिया है। यही आदर्श रूप उन्हें समाज एवम् परिवार के कल्याण के लिए काम्य था। इसके अतिरिक्त कवि ने विविध स्त्री पात्रों द्वारा ही नारी आदर्श की व्याख्या कराई है। कवि के अनुसार सर्वश्रेष्ठ धर्म पातिव्रत ही है। पति-सेवा और गृह जीवन के कर्तव्यों का सम्पादन ही नारी से अपेक्षित है। भगवती अनुसूया जो उपदेश देती है, वह पातिव्रत धर्म पर प्रवचन ही है। वे माता-पिता, भ्राता आदि को परिमित सुख और आनन्द देनेवाले बताकर पति को ही समस्त सुखराशि एवम् कल्याण का आवाहक मानती हैं[2]। नारी के लिए एकमात्र नियम और धर्म मनसा, वाचा, कर्मणा पति-चरणानुराग ही है[3]। स्वभाव से ही अपवित्र नारी पतिसेवा द्वारा शुभमति पा सकती है[4]। वस्तुत यह नारी आदर्श की व्याख्या तत्कालीन समाज के अनाचार और उच्छृंखलता के युग की नारी के लिए ही गोस्वामी तुलसीदास ने की थी[5]। गोस्वामी तुलसीदास के सामाजिक आदर्श की चेतना पात्र द्वारा स्पष्ट व्यजित होती है। जानकी कहती है कि ससार में जितने वात्सल्य, स्नेह, ममता और प्रीति के द्योतक सब ग हैं, वे सब एक पति के विना दुखदाई हैं[6]। पुरुष के विना नारी का अस्तित्व प्राण-चेतनाहीन शरीर के समान है[7]।

---

१ "अस कहि लोचन वारि भरि, गहि पद कपित गात।
नाथ भजहु रघुवीर पद, अचल होइ अहिवात॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० ३७३

२ "कह रिपिवधू सरस मृदु बानी। नारि धरम कछु व्याज बखानी॥
मातु, पिता, भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमित दानि भर्ता वैदेही। अधम नारि जो सेवै न तेही।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० २८६

३ "एकइ धरम एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० २८६

४. "सहज अपावन नारि पति सेवन सुभ गति लहै।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २८६, प्रथम खण्ड

५ "सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं,
तोहि प्रानप्रिय राम कहेउ कथा ससार हित।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली पृ० २८६

६ "मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई।
जँह लग नाथ नेह अरु नाते। पिय विनु तियहिं तरनिहुँ ते॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १८२

७ "जिअ बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १८२

समकालीन नारी-स्थिति

तुलसी के युग मे नारी अपनी विशिष्टता तथा मान से वचित हो चुकी थी। उसका जीवन परतन्त्रता का दुखद इतिहास था। विवशता और आत्म-दमन, बलिदान और दासता में ही उसका जीवन व्यतीत होता था। उसके जीवन और व्यवहार के लिए आचार-शास्त्र नियत था। नारी चारो ओर से बन्दिनी थी। उसकी इसी दशा को देखकर 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' के सिद्धान्त को आदर्श मानकर चलने वाले गोस्वामी तुलसीदास का भाव-प्रवण हृदय सवेदना से दुखित हो उठा। उन्होने उस विधाता को दोष दिया जिसने नारी के भाग्य में पराधीनता का अमिट लेख दिया है[1]। उस युग में भी योषिता समस्त धर्माधिकारो से वचित थी। शास्त्रज्ञान अथवा धर्म एवम् दर्शन के गूढ सिद्धान्तो के परिचय के लिए वह अयोग्य और अक्षम समझी जाती रही होगी, तभी रामकथा सुनने, सगुण-निर्गुण के भेद को समझने के लिए उत्सुक पार्वती कहती है कि यद्यपि योषिता होने के कारण आध्यात्म और वेदान्त-विषयक मतवाद पर सभाषण करने का अधिकार मुझे उपलब्ध नही है, किन्तु मनसा, वाचा, कर्मणा आपके चरणो की रति होने के कारण मैं इसकी पात्र हो सकती हूँ[2]। शिक्षा, ज्ञान और सम्मान से वचिता नारी जड और मूर्ख समझी जाती थी। अनादर और उपेक्षा पाते-पाते स्वय नारी ही हीनत्व से पीडित थी। वह अपने को स्वभावत ही मूर्ख, सहज जड, अज्ञ समझती थी[3]।

जिस काल और जिन विशिष्ट परिस्थितियो के मध्य व्यक्ति जन्म लेता है, वह उसके उपचेतन पर अपना प्रभाव अवश्य छोड देती है। आलोच्ययुग के बहुत पहले से ही नारी सुकुमारता की प्रतिमूर्ति मानी जाती थी। सौकुमार्य एवम् विलास अभिजात्य का लक्षण माना जाने लगा था। उच्च-वर्ग की नारी के लिए शारीरिक परिश्रम करना अपमान तथा अप्रतिष्ठा का सूचक था। तुलसी का युग वैभव और विलास के उत्कर्ष का युग था। विभिन्न विलास-सामग्रियो, आमोद के विविध उपकरणो के मध्य नारी के गुणो में कर्मण्यता नही, निष्क्रियता और सुकुमारता श्रेष्ठ समझी जाती थी। तुलसीदास अपने को इस रीतिकालीन प्रवृत्ति से पृथक न रख सके। उन्होने सीता में इस सुकुमारता का आरोप किया[4]।

---

१ "कत विधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४६

२ "जदपि जोषिता नहि अधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम भाग, पृ० ५२

३ "अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड नारि अयानी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम भाग, पृ० ५६

४ "पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम भाग, पृ० १८०

नारी भी भोग की अन्य वस्तुओं में परिगणित की जाने लगी थी। तत्कालीन अतिशय विलास के युग में नारी पुरुष की सहचरी और सहधर्मिणी न थी, प्रत्युत जीवन में आनन्द एवम् सौख्य का उद्रेक करने वाली विलास एवम् भोग की वस्तुओं में एक थी। तभी तो वन में राम से मिलने जाते हुए भरत तथा अन्य नगरवासियों की सुविधा के लिए भरद्वाज मुनि ने माला, चन्दन एवम् वनितादि भोग प्रस्तुत किए[1]। अपनी सुगमता एवम् सुलभता के कारण नारी का विशेष मूल्य न था। पुरुष इच्छानुसार विवाह कर सकता था। उसके ऊपर कोई सामाजिक बन्धन न था। समाज की इस प्रवृत्ति की छाया लक्ष्मण-शक्ति के समय राम के कथन में मिलती है[2]।

समाज में नैतिकता के बन्धन उपेक्षणीय थे। गौरवमयी नारी अपनी गरिमा से च्युत होकर, वासना-प्रेरित प्रणय-भिक्षा मागती फिरती थी। सूर्पणखा के रूप में कवि नारी के इसी अभिसारिका रूप की ओर इंगित करता है[3]। वैदिक संस्कारों की पूर्णता के अभाव में नारी भी शूद्रों मे ही सम्मिलित की जाती थी। वह भी शोषितवर्ग की थी। इसी प्रवृत्ति के स्पष्टीकरण में समुद्र ने उसकी ढोल, गवार, शूद्र और पशुओं में गणना करके, उसे ताडन का अधिकारी माना है[4]। उच्छृङ्खल पुरुष, अपनी कामनापूर्ति के समक्ष नारीत्व की अवहेलना कर, सती पत्नी की उपेक्षा कर दासियों को रक्षिता बना रहा था[5]। तुलसी का कलियुग-वर्णन उनके समकालीन समाज का ही चित्रण है, जिसमें नारी भी पतित होकर अपने गुणधाम पति का त्याग कर पर पुरुष की आराधना करती है[6]। उस समय के नैतिक सम्बन्धों की विषमता तुलसी के काव्य में मुखर हो उठी है, परन्तु उस समय की सामान्य नारी के हृदय में पवित्र नदियों एवम् देवी-देवताओं पर श्रद्धा,

---

१ "स्रक चदन वनितादिक भोगा, देखि हरष विसमयबस लोगा।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० २८१

२. "जैहों अवध कवन मुंहलाई, नारि हेत प्रिय बधु गंवाई।
बरु अपजसु सहतेउँ जग माहीं, नारि हानि विसेष छति नाहीं।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३६८

३ "रुचिर रूप धरि प्रभु पहि जाई, बोली वचन बहुत मुसुकाई।
तुम सम पुरुष न मो सम नारी, यह सँजोग विधि रचा विचारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३००

४ "ढोल गँवार सूद्र पसु नारी, सकल ताडना के अधिकारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३६६

५ "कुलवत निकारहिं नारि सती, गृह आनहिं चेरि निवेरि गती।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४८४

६ "गुनमदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० ४८३

शकुन तथा स्वप्नो पर विश्वास था। उसके बौद्धिकता शून्य हृदय में देवा-देवताओ की मगल कामनाओ मे अखण्ड प्रतीति थी। जानकी गगा से करबद्ध विनय करती है—'हे माता, मैं पति देवर सहित कुशलपूर्वक लौटकर आपकी पूजा करू, इस मनोकामना को पूर्ण करो[1]।' सामान्य नारी को काक तथा क्षेमकरी के बोलने में हितेच्छु प्रिय व्यक्तियो के आने का आभास मिलता था। गीतावली में बैठी शकुन मनाती हुई कौशल्या काग को उसकी बोली फलित हो जाने पर सोने से चोच मढाने तथा दूध भात खिलाने का आश्वासन देती हैं[2]। क्षेमकरी की बोली सुनकर उनका व्याकुल प्रतीक्षा करता हुआ हृदय राम लक्ष्मण और सीता के आने की तिथि पूंछ बैठता है[3]।

भारतीय सस्कृति की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि नारी के अधिकारों, उसकी सामाजिक स्थिति की अवहेलना करके भी, वह किसी भी परिस्थिति में नारी के वध की आज्ञा नही देती है। नारी सदा अवध्य एवम् रक्षणीय है। तुलसीदास के समाज में भी नारी का वध राजा एवम् बाल वध के समान पातक माना जाता था[4]।

परम्परागत नारी-निन्दा

परम्परा और लोकरीति के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास ने भी नारी को कामिनी रूप में ही देखा है। तप एवम् विराग को जीवन की चरम गति माननेवाले साधु के दृष्टिकोण के अनुसार नारी माया का ही अभिराम रूप है। समस्त विश्व ही नारी के नयन-बाणो के विष से अभिभूत हो जाता है, केवल राम ही

---

१ "सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी।
पति देवर सग कुसल बहोरी। आइ करौ जेहिं पूजा तोरी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम भाग, पृ० १६७

२ "बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता।
दूध भात की दोनी देहौं सोने चोच मढैहौं॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, दूसरा खण्ड, पृ० ४०६, पद १६

३. "क्षेमकरी बलि बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय राम लखन कब ऐहैं अब अवध रजधानी।
ससिमुखि, कुकुम बरनि सुलोचनि मोचनि-सोचनि बेद बखानी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, दूसरा खण्ड, पृ० ४०६, पद २०

४. "जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीन महीपति माहुर दीन्हें।"
×　　×　　×
"ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता॥"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, भाग १, पृ० २२२

इसके अपवाद हैं[1]। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभादि से भी अधिक दुख तथा कष्टदायिनी माया रूपी नारी है[2]। वह जप, नियम, सयम और तपस्या को नष्ट कर देती है[3]। मानव के मुक्ति-मार्ग में बाधक अवगुणो ममतादि को पोषण देती है[4]। मानव के सदगुण बुद्धि, बल, शील, सत्य सब दुर्बल विवश मछली हैं, बसी रूपी नारी में फसकर सब नष्ट हो जाते हैं[5]। अत समस्त दोषो और दुर्गुणो की स्रोत, समस्त दुख और वेदनाओ की केन्द्र नारी से दूर रहने में ही कल्याण है[6]। यह सन्तो के विरक्ति-प्रधान दृष्टिकोण से की गई व्याख्या है। इसके अतिरिक्त प्राय प्रत्येक पात्र ने नारी-स्वभाव, नारी-चरित्र की निन्दा की है। गोस्वामी तुलसीदास निगमागम-सम्मत धर्म को मान्यता देते थे, अत मध्ययुगीन शास्त्रकारो, स्मृतिकारो, साधको एवम् नीतिकारो की नारी के प्रति कटुता और वैराग्य की भावना, नारी के अगाध चरित्र की थाह लेने की असफलता उनके काव्य मे स्पष्ट हो उठी। उनका यह मत पुराणो और शास्त्रो से प्राप्त तथा सन्तो द्वारा प्रतिपादित है[7]। अत माया के इस बाह्य अभिराम स्वरूप—जिसमे कामिनी का रूप, उसकी मोहिनी शक्ति सबसे प्रधान है—मे निष्कृति पाने का उपाय दनुज-दलन राम का यशगान है, जिससे बिना तप और योग के ही भगवत् चरणो मे दृढ़ अनुराग हो जाता है। अपने इस मन को नारी-सौन्दर्य पर बलिदान होने वाले, आत्म-दान करने वाले, शलभ बनने से बचाकर कामादि का परित्याग कर साधुजनो के

---

१ "नारि नयन सर जाहि न लागा, घोर-क्रोध-तम-निसि जो जागा।
लोभ पास जेहि गर न बधाया, सो नर तुम्ह समान रघुराया॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३३४

२. "काम-क्रोध-लोभादि-मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

३ "जप तप नेम जलाशय भारी, होइ ग्रीषम सोखै सब नारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

४ "पुनि ममता जवास अधिकाई, पलुहै नारि सिसिर रितु पाई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

५ "पाप उलूक निकर सुखकारी, नारि निबिड रजनी अँधियारी।
बुधि बल सील सत्य सब मीना, बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

६. "अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ता ते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

७ "सुनु मुनि कह पुरान श्रुति सन्ता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसन्ता॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

सान्निध्य में हरि-भजन श्रेयस्कर है[1]। उस समय के समस्त धार्मिक अथवा साहित्यिक ग्रन्थ नारी के दुर्गुणो, उसके चरित्र और स्वभाव की निन्दा से पूर्ण थे। नारी स्वभाव के विषय में सस्कृत के नीति-ग्रन्थ अनेक सामान्य कथन कर चुके थे। वे उसे सदा आठ अवगुणो से पूर्ण मानते थे। विद्वानो का कथन था कि राजा, शास्त्र और युवती निरन्तर सेवा, आराधना और प्रीति युक्त हृदयासन देने पर भी वश में नही रहते, यह उनका स्वभाव है। तुलसीदास के खरे आदर्शवाद की कसौटी पर यदि कही नारी में लेशमात्र भी न्यूनता दृष्टिगत हुई, वह तत्क्षण किसी पुरुष, नारी पात्र अथवा कवि-कथन के रूप में ही नारी-विषयक नीति-वाक्य कह देते हैं। सीता-हरण पर व्यथित राम से कवि उपरोक्त नीति वाक्य का कथन कराता है[2]। मन्दोदरी द्वारा रावण को बारबार राम को सीता लौटाकर हरि-भजन करने की शिक्षा पर अमानव रावण समस्त नारी-जाति के स्वभाव पर साहस, झूठ, चचलता, माया, भय, अविवेक आदि अष्ट अवगुणो का आरोप कर देता है[3]। वस्तुत यह सस्कृत के एक नीतिवाक्य का हिन्दी रूपान्तर है। समुद्र का कथन 'ढोल गवार शुद्र पशु नारी' भी गर्ग-सहिता के एक श्लोक का हिन्दी रूप है। तुलसीदास अपने युग की अनैतिकता काम-वासना का निर्बाध विहार देख कर, अथवा अपने हृदय में शास्त्र-अध्ययन, परम्परा द्वारा पोषित, नारी सबधी पूर्व निश्चित धारणा के कारण नारी में वासना की प्रमुखता मानकर उसमें सयम का घोर अभाव मानते हैं[4]। नारी मात्र के लिए किया गया यह कथन स्पष्ट कर देता है कि नारी उनके लिए अवगुणपूर्ण, काम-वासना की प्रतिमा है। नारी-निन्दा की इस प्रवृत्ति में वह सन्तो के ही समानधर्मी हैं। सन्तो के समान वह भी नारी को त्रिगुणो को नष्ट करने वाली, तप-सयम की विरोधी, साधना की शत्रु मानते हैं। उनके कथनानुसार यह सत्य ज्योतिष में भी फलित

---

१ "दीपशिखा सम जुवति जन, मन जनि होसि पतग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसग॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२१

२. "शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ, भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ।
राखिअ नारि जदपि उर माहीं, जुवती शास्त्र, नृपति बस नाहीं॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३१६

३ "नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं।
साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक असौच अदाया॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३७६

४ "भ्राता पिता पुत्र उरगरी, पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होइ विकल सक मनहि न रोकी, जिमि रविमनि द्रव रविहि विलोकी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० २६६

हुआ है, तभी कुण्डली में नारी कठोर शत्रु मृत्यु के मध्य स्थापित है[1]। वास्तव में वह नारी को अनिश्चित मनोवृत्ति वाली, सहज, अपावन और गूढ समझते हैं। उनके छल-प्रवचनामय हृदय के रहस्य को समझने में मानव का कोई प्रश्न ही नही, विधाता तक असमर्थ है[2]। नारी की स्वतन्त्रता गोस्वामी तुलसीदास को अप्रिय रही, तभी वह स्वतन्त्र नारी की तुलना जलवृष्टि से मर्यादाहीन बनी क्यारी से करते हैं[3]। व्यष्टि और समष्टि इस पर एकमत हैं कि नारी-स्वभाव अगम और अगाध है। अबला नारी को बलवती बनाने से वह अग्नि के समान भयकर, समुद्र के समान प्रचण्ड और काल के समान दुर्निवार हो जाती है[4]। तुलसी की नारी-भावना की विशेषता यह है कि स्वय नारी भी अपनी जाति को तुच्छ, हीन बताती हुई कहती है कि काने, खोरे, कूबरे वैसे ही कुटिल होते हैं उनमे यदि स्त्री हुई तो कुबुद्धि का योग अधिक होता है[5]। मथरा के कपटपूर्ण व्यवहार को वह नारी चरित्र बतलाते हैं। नारी भाव-गोपन में इतनी निपुण होती हैं कि नीति-विशारद राजा भी उसके चरित्र को नही समझ पाते हैं[6]। नारी विषयक यह कथन चाहे

---

१ "जनम-पत्रिका बरति कै देखहु मनहि विचारि।
दारुन बैरी मीचु के बीच विराजत नारि ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली दूसरा खण्ड, पृ० १२७, दो० २६८

२ "बिधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल-कपट-अघ-अवगुन खानी।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० २२०

३ "महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतन्त्र भए बिगरहिं नारी।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ३३१

४. "सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ।
सब विधि अगम अगाध दुराऊ।।
निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई।
जानि न जाई नारि गति भाई ।।
काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ।।
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १७६

५ "काने, खोरे, कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरतमातु मुसुकानि।।'
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १६३

६ "ऐसेउ पीर बिहँसि तेइ गोई, चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई।
लखी न भूप कपट चतुराई, कोटि कुटिल मनि गुरु पढ़ाई ।।
जद्यपि नीति निपुन नर नाहू, नारि-चरित जलनिधि अवगाहू।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० १६८

पुरुष पात्र, स्त्री पात्र अथवा स्वय कवि करे, उनमें समान कठोरता है[१]।

इस प्रकार विवेचन कर हम देखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास ने अधिकतर नारी की निन्दा विराग और तप की भावना द्वारा प्रेरित होकर की है, अथवा जब नारी ने कोई मर्यादा-विरोधी कार्य किया है। अपने समय और वातावरण के सस्कारो का प्रभाव उन पर पडना अनिवार्य था। उस युग में ही विराग प्रधान मनोवृत्ति श्रेयस्कर समझी जाती थी। विराग पथ से मानव को च्युत करने वाले विषयोपभोग को तुलसीदास ने गर्हित बताया। विषयोपभोग की प्रधानपात्री नारी होने के कारण, स्वभावत ही उन्होने नारी निन्दा की है[२]। आत्महित और कल्याण की साधना करने वाले व्यक्ति को काम लोभादि से मुक्ति पाना अनिवार्य है। वह पूर्णत समझते थे कि कामी के हृदय में नारी के प्रति कितनी दृढ़ अनुरक्ति होती है[३]। अत उसकी इस नारी-रूपी मोहपाश से निष्कृति उन्हें काम्य थी। समाज में नारी की उच्छृखलता, आदर्शविहीनता देखकर मर्यादावादी पुरुष कवि के हृदय में नारी के प्रति क्षोभ आ जाना स्वाभाविक ही है। इस मर्यादा का आधार युग एवम् राष्ट्र निर्माण-कर्त्री में जिस उदात्त आदर्श की भावना उन्हें अभिलषित थी, उसके अभाव में उनके शब्दो में नारी के प्रति कटुता और हीनता की भावना आ गयी है। इससे यह अनुमान लगाना कि गोस्वामी तुलसीदास ने नारी का केवल कृष्ण-रूप ही देखा उसके सत् रूप की ओर ध्यान न दिया, समुचित नही है। नारी के सती-रूप, पति-प्रेमरता पतिव्रता के पावन स्वरूप, उसके दृढ नियम के प्रति उनके मन में मोह रहा होगा, तभी वह शभु-धनुष की अटलता की तुलना सती के निर्विकार

---

१ "ये उदाहरण मानस से न केवल विभिन्न कोटि के पुरुष पात्रों द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में किए गए कथनों, वरन विभिन्न कोटि के स्त्री-पात्रो, जड पात्रों और स्वत राम द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में किए गए कथनो से लिए गए हैं। अब हम देखेंगे कि कवि स्वत' भी जब नारी-चरित्र पर वक्तव्य देने के लिए आगे बढ़ता है, अथवा अपनी कथा के किसी वक्ता द्वारा उस सम्बन्ध में वक्तव्य दिलाता है, तो वह भी अधिक नहीं तो उतना ही क्रूर पाया जाता है।"

माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० ३०७, १९५३, इलाहाबाद

२ विषयो में सबसे प्रबल है कामोपभोग और पुरुषो के लिए इसका प्रधान साधन है प्रमाद अथवा नारी। इसलिए विषयवासना की निन्दा को अपना प्रधान लक्ष्य बनाने वाले गोस्वामी जी ने नारी-निन्दा में कोई कसर नहीं रख छो.ी है।"

बलदेवप्रसाद मिश्र—तुलसी-दर्शन, पृ० ८०, १९६५, प्रयाग

३ "कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ५०४

चित्त से करते हैं[1]। समय की अनिवार्य आवश्यकता तथा समाज के लिए कल्याण-मय होने के कारण तुलसीदास ने पातिव्रत पर बहुत अधिक बल दिया है। पतिव्रता और भक्त दोनों प्रकार की नारी तुलसी के लिए वन्दनीय हैं[2]।

गुणशीला एवम् कर्तव्यपरायण पुत्री भी पितृ एवम् श्वसुर दोनों कुलों का उद्धार कर सकती है[3]। वास्तव में तुलसीदास को नारी अथवा पुरुष दोनों का ही आदर्श, स्वधर्म-निरत रूप ही प्रिय है। अत कर्तव्यपरायण नारी की उन्होंने प्रशंसा की है। तुलसीदास में विरागी साधक, समाज-सम्कर्ता, नीतिकार और कवि इन चारों का योग है। उन्होंने नारी का वर्णन इसी मिश्रित दृष्टि-विन्दु से किया है। नारी से उनका तात्पर्य उस युग की विलास-रत, कर्तव्य-हीन, कुमार्ग-गामिनी नारी से है। अत नारी और प्रमदा को एक ही समझ कर, लोक और समाज के बाधक उस रूप को उन्होंने गर्हित एवम् त्याज्य बताया। पुरुषवर्ग के होने के कारण स्वजातिगत पक्षपात की किंचित छाया आ जाना अस्वाभाविक नहीं है, यद्यपि उन्होंने नारी को कुदृष्टि से देखने वाले के वध को भी पातकहीन बताया है[4]। अत तत्कालीन समाज की प्रवृत्ति के प्रभाव से उन्होंने नारी को विलास की सामग्री में गिना है, परन्तु अंतर के किसी कोण में नारी मर्यादा, उनकी पवित्रता के प्रति श्रद्धा एवम् आदर का भाव सतत बना ही रहा।

तुलसी के काव्य से नारी की सामाजिक स्थिति, धार्मिक अधिकारों पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। सामान्यत नारी-विरोधी तुलसीदास ने धर्म के क्षेत्र से बहिष्कृत नारी को भी भक्ति का अधिकारी माना है, तथा भक्ति साधना द्वारा उनके मोक्ष साधन के अधिकार को मान्यता दी है[5]।

---

१. "भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा।
डगै न संभु सरासन कैसे। कामी वचन सती मन जैसे॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १०८

२ "हिय हरषे मुनि वचन सुनि देखि प्रीति विश्वास।
चलीं भवानी नाइ सिर गए हिमांचल पास॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४३

३ "तापस वेष जनक सिय देखी। भयेउ प्रेम परितोष बिसेषी॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सब कोऊ॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २६६

४ "अनुज वधू, भगिनी, सुत नारी।
सुन सठ कन्या सम ये चारी॥
इन्हहि कुदिष्टि विलोकै जोई।
ताहि वधे कछु पाप न होई॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३२८

५. 'राम भगति-रत नर अरु नारी।
सकल परम गति के अधिकारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४५०

केशव की नारी-भावना

तत्कालीन समाज में नारीत्व का सर्वोच्च आदर्श पातिव्रत ही था। अत केशव ने भी पातिव्रत को नारी की गति बताया। उनके अनुसार नारी को कोई उपासना, प्रार्थना, धार्मिक अनुष्ठान करने की आवश्यकता नही है, पति-सेवा ही उन्हे इन सब विधानो का फल देगी[1]। केशव ने नारी के सहमरण अथवा सती होने को आदर्श माना है। पुन उन्होने विधान के लिए आचार-विचार, एवम् कष्ट और साधना के जीवन का विधान किया है[2]। पतिव्रता को श्रेष्ठ मानते हुए और उसी को नारी-जीवन के चरम साफल्य का साधन स्वीकार करते हुए केशव पति-पत्नी के सबध को अन्योन्याश्रित बताते हैं। पति और पत्नी दोनो ही एक दूसरे के अस्तित्व के लिए आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण हैं[3]। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि केशव ने भी नारी को भोग एवम् ससारासक्ति का कारण माना है, किन्तु उनके काव्य में नारी-भर्त्सना की प्रवृत्ति न्यून ही दृष्टिगत होती है।

केशव ने सीता के रूप में नारी आदर्श का जो महिमामय रूप प्रतिष्ठित किया है, उसमें महानता और तेजोमयी गरिमा है। सीता पवित्रता की प्रतीक, पति को देवता मानने वाली, पति सुख के लिए राजभवन के समस्त सुखो को तृणवत् परित्याग करने वाली आदर्श नारी है। उसमे सहिष्णुता, धीरता और सौम्यता है। राक्षस के घर यातना पाकर लौटने पर सती सीता को भी अपने चरित्र की परीक्षा देनी पडती है। कुछ समय राजभोग के उपरान्त उनके दुर्दिन पुन दुर्भाग्य का विधान करते हैं। भरत के शब्दो में अत्यन्त सुभाषिणी, पवित्र, परमशुद्ध, अत्यन्त गरिमामयी, गर्भवती सीता का राम वेद-विधानो के विरुद्ध परि-

---

१ "जोग जाग व्रत आदि जु कीजै, न्हान मानगुन दान जु दीजै।
धर्म कर्म सब निष्फल देवा, होहि एक फल कै पति सेवा।।"
केशव—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध दीन सम्पादित, पृ० १३५, पचमावृत्ति २००१ इलाहाबाद

२ "नारि न तजहि मरे भरतारहि।
ता सग सहइ धनजय भारहि।।
जो केहि विधि करतार जियावहि।
तोतेहि कह यह बात बतावहि।।"
× × ×
"खाय मधुरात्र नहि पाय पनहि धरै, काय मन वाच सब धर्म करि बोलो।
कृच्छ उपवास सव इन्द्रियन जीतिहौं, पुत्र सिख लीन तन जौ लगि अतीतहौं"
केशव—रामचन्द्रिका, पृ० १३५, १३६ प० आवृत्ति, २००१ इलाहाबाद

३ "पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मद।
चन्द बिना ज्यों जामिनी, ज्यों बिनु जामिन चद।।"
केशव—रामचन्द्रिका, पृ० २०४

त्याग करते हैं[1]। राम द्वारा दोपारोपण होने पर भी सीता शुद्ध और पवित्र है। वाल्मीकि मुनि उन्हे तपस्वियो की शुभसिद्धि के समान ग्रहण करते हैं[2]। अश्वमेध के लिए हुए लव-कुश और राम-लक्ष्मण आदि के मध्य सग्राम में हत वीर सती सीता के पुण्य प्रभाव से जीवित हो जाते हैं[3]। वस्तुत केशव का नारी-आदर्श भारतीय परम्परा के अनुकूल ही है।

तत्कालीन राजदरबारो में नारी विलास का उपकरण मानी जाती थी। अन्त पुर की साज-सज्जा, विलास-कक्ष की शोभा का वह अनिवार्य उपकरण थी। अत दरबारी कवि केशव जिन्होने अपने जीवन के अधिकाश दिवस वैभव की स्वप्निल छाया में बिताए, मर्यादापुरुषोत्तम राम को भी एक विलासी नायक के रूप में अकित करें, यह स्वाभाविक ही है। पन्नगी, नगी, सुरो और असुरो की बालाए सगीत और नृत्य से राम का मनोरजन करती हैं[4]। तत्कालीन समाज की नारी सगीत वीणावादन, चित्रकला आदि में निपुण होती थी[5]। वह वैभव और विलास की दोला पर तरगित होती थी, किसी प्रकार की समस्या उनके समक्ष नही थी। विधवा के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म सहमरण था। पुत्र-पालन अथवा अन्य किसी आवश्यक कार्य के लिए यदि जीवित रहना चाहती, तो उसका जीवन सयम एवम् निग्रह का जीवन होता था। सुविधा और सुख की समस्त सामग्रियां उसे त्याज्य थीं[6]। असुरो में नारी अपने देवर के साथ पुनर्विवाह कर लेती थी, पर समाज और जनमत में उसका यह कार्य श्लाघ्य एवम् प्रतिष्ठित नही माना

---

१ प्रिय पावनि प्रियवादिनी पतिव्रता अति शुद्ध।
जग की गुरु अरु गुर्विणी, छांडति वेद विरुद्ध॥"
केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, पृ० २०६

२ "सर्वथा गुनि शुद्ध सीतहि ले गए मुनि राय।
अपनी तपसिन की शुभ सिद्धि सी सुख पाय॥"
केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, पृ० २१६

३ केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, पृ० २७२

४ "पन्नगी नगी कुमारि आसुरी सुरी निहारि।
विविध किन्नरीन किन्नरी बजावैं
मानो निष्काम भक्ति शक्ति आप आपनीस।
देहन धरि प्रेमन भरि भजन वेद गावैं।"
केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, दीन सम्पादित, पृ० १२७, तृ० स० १६४५, इलाहाबाद

५ केशव—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, दीन, पृ० २२०, १७३, प० स० २००१ स० इलाहाबाद

६ केशव—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ० १३६, प० स०, २००१ स० इलाहाबाद

जाता था[1]।

केशव के युग १६१२–७४ स० (१५५५–१६१७ ई०) में भक्ति की अन्त-सलिला पावन धारा शृंगार के कुण्ड में समाहित हो जाने को उत्सुक थी। रावण के राजगृह में स्त्रियो के विलास के चित्रण पर रीतिकालीन प्रभाव स्पष्ट है। कोई स्त्री मदिरा पान करती है, कोई सर्वप्रसाधन से सज्जित होकर नाचती है, कोई स्त्री तोता और मैना आदि को कोकशास्त्र के मत्र पढाया करती है[2]। इससे स्पष्ट है, केशव के समय की नैतिक उच्छृङ्खलता में नारी स्वय ही विलास-रत थी। उसमें गृहिणी की गरिमा, मातृत्व का गौरव न था। विलास की सामग्री एवम् जीवन का अत्यन्त आवश्यक उपकरण होते हुए भी उसको समाज में स्थान उपलब्ध नही था। पर्दा था अथवा नही ? इसका स्पष्ट विवरण नही मिलता है, पर अन्त पुर की प्रथा थी। कवि के कथन से कि दशरथ के मरण पर वह सव नारियाँ जो कभी अन्त पुर से नही निकली थी, वे भी उनके शव के दर्शनार्थ बाहर निकली, ज्ञात होता है कि अवरोध की प्रथा थी[3]। बहुविवाह प्रचलित था। बहुविवाह द्वारा एकत्रित रूपसियो के कोषागार की रक्षा काने, कुबरे आदि अपग करते थे[4]। इन सामाजिक विषमताओ के होते हुए भी पातिव्रत धर्म पर अधिक वल दिया जाता था। पतिव्रता नारी पवित्र तथा पूज्य समझी जाती थी। मन्दोदरी के रावण के प्रति कथन कि, पतिव्रता को साधारण प्राणी न समझो, से स्पष्ट है कि पतिव्रता आदरणीय थी[5]। नृप आदि जो भी धार्मिक क्रियाएँ करते

---

१ "जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान,
ताकी पत्नी तू करी पत्नी मातु समान।"
केशव—रामचद्रिका पूर्वार्द्ध, पृ० २६, तृ० स० १६४५ इलाहाबाद

२. "पियै एक हाला गुहै एक माला,
वनी एक बाला नचै चित्रशाला।
कहूँ कोकिला कोक की कारिका,
पढ़ावै सुवा लै सुकी सारिका को॥"
केशव—रामचद्रिका पूर्वार्द्ध, दीन सम्पादित पृ० २२०, प० स० २००१ वि० स० इलाहाबाद

३ "हाय हाय जहा तहा सव ह्वै रही सिगरी पुरी।
धाम धाम नृप सुन्दरी प्रगटी सवै जे रही दुरी॥"
केशव—रामचद्रिका पूर्वार्द्ध, पृ० १५१, प० स०, २००१ वि० स० इलाहाबाद

४ "गूगे कुवजे वावरे वहरे वामन वृद्ध,
यान लिए जन आइए खोरे खज प्रसिद्ध।"
केशव—रामचद्रिका उत्तरार्द्ध, पृ० १६७, तृ० स० १६४५ सन्

५ "सधि करौ विग्रह करौ, सीता को तो देह।
गनो न पिय देहीन में पतिव्रता की देह॥"

थे, सव स्त्री के साथ ही सफल मानी जाती थी[1] ।

केशव भी नारी को सद् मार्ग का अवरोधक, माया का ब्रह्मास्त्र, मानव की आकाक्षाओ का मूल मानते हैं। पातिव्रत को तो सभी कवियो ने ही मान्यता देकर उसे ही स्त्री के लिए सर्वश्रेष्ठ, श्रेयस्कर धर्म माना है। केशवदास को भी नारी का आदर्श प्रतिपादित रूप ही काम्य है। उन्होने विधवा को भी तप और सयम तथा आत्म-निग्रह का उपदेश दिया। पतिव्रता के सतीत्व की मनोहर सात्विक व्यजना के साथ ही परिस्थितियो के प्रभाव से नारी का विलास क्रीडारत रूप भी समक्ष आता है। केशव पतिव्रता, गुणशीला, कर्तव्यपरायण नारी के परित्याग को अकल्याण का आवाहक मानते हैं। भरत के राम के प्रति कथन में सद्नारी के प्रति मोह एवम् श्रद्धा की भावना स्पष्ट हो जाती है। केशव के काव्य से तत्कालीन सामाजिक एवम् धार्मिक जीवन में नारी की स्थिति पर भी प्रकाश पडता है।

सम्पूर्ण रामकाव्य में नारी के सामान्य विलास-वासना-परक रूप को घृणित मानकर पति-भक्ति पर अधिक वल दिया गया है। राम के चरित्र की आदर्श-वादिता को अपनी कसौटी वनानेवाले इन कवियो के लिए नारी की सामान्य दुर्वल-ताएँ क्षम्य न होकर आलोचना तथा निन्दा का कारण वनी हैं, किन्तु साथ ही नारी का आदर्श रूप, लोक और समाज मे कर्तव्य के प्रदीप की मजुल दीप्ति प्रशस्त करने वाला स्वरूप इनका काम्य और वर्णनीय रहा है।

केशव—रामचद्रिका पूर्वार्द्ध, दीन सम्पादित . पृ० ३१४, प० स० २००१ स० इलाहावाद

१. "धर्म कर्म जो कछु कीजै, सफल तरुणी के साथ ।
ता विनु जो कुछ कीजई निष्फल सोई नाथ ।।"
केशव—रामचद्रिका उत्तरार्द्ध, 'दीन' पृ० २३७, तृ० स० १९४५ सन् प्रयाग

प्रकरण २

कृष्ण-काव्य में नारी

निरजनी नाथपथी निर्गुणियो के उपदेश, उनके योग सबधी जटिल कार्य-कलापो से जनहृदय श्रान्त हो चुका था। उनके द्वारा प्रदर्शित ज्ञानाश्रयी भक्ति का मार्ग जनसाधारण की रागात्मक वृत्ति के साथ सामजस्य-स्थापन में असमर्थ था। राम के मर्यादावादी रूप की अपेक्षा रसेश्वर कृष्ण के प्रेममय रूप ने जनता को अधिक आकृष्ट किया। कृष्ण-भक्ति के आचार्य वल्लभ ने रागानुगा भक्ति का राजमार्ग, ऊच-नीच, पुरुष और नारी सभी के लिए प्रशस्त कर दिया। इस लोक-रजक उपासना-पद्धति में आध्यात्मिकता के साथ लौकिकता के समन्वय ने अपकर्ष और पराभव के कारण जीवन से विमुख हिन्दू जाति में पुष्टि-भक्ति के पोषण द्वारा जीवनोन्मेष किया। इन भक्त कवियो ने भगवान के प्रेम-रस-मय स्वरूप को लेकर जिस भक्ति-मार्ग, उपासना पथ को प्रस्तुत किया, वह निवृत्ति-मूलक न होकर प्रवृत्तिमूलक है। उसमें नैराश्य एवम् वैराग्य नही है, अपितु जीवन के आशा से उज्ज्वल पक्ष का चित्रण हुआ है। वल्लभाचार्य से पुष्टिभक्ति की दीक्षा पाकर अष्टछाप के कवियो ने कृष्ण जीवन की माधुरी का रसमय स्रोत प्रवाहित कर दिया।

राधा-कृष्णोपासना का विकास

ईसवी सदी से चार शताब्दी पूर्व ही वासुदेव और कृष्ण का एकीकरण हो चुका था। महाभारत और पुराणो में नारायण एवम् विष्णु का कृष्ण के साथ जो एकीकरण हुआ था, उसमें कृष्ण का रूप गीता के अनासक्ति-योग का उपदेश देने वाले योगिराज कृष्ण का था, व्रजभूमि मे गोचारण, वशीवादन कर कुजों, वनो में व्रजागनाओ के साथ विहार करने वाले गोपाल-कृष्ण का नही। सर्वप्रथम हरिवश तथा वायुपुराण में गोपाल-कृष्ण का उल्लेख मिलता है। कृष्ण अथवा वासुदेव एक ऐतिहासिक पुरुष होकर भी परम दैवत के पद को प्राप्त कर सके, किन्तु राधा का व्यक्तित्व ऐतिहासिक नही है। उनके अस्तित्व के विषय में दो सभावनाए की जाती हैं[1]। चौदहवी सदी के अन्त में भागवत सप्रदाय के नए

---

१ (अ) "राधा कृष्ण से सबधित आभीरों की प्रेमदेवी रही होगी। आरम्भ में केवल वासुदेव से बालकृष्ण का एकीकरण हुआ, अत. आर्य-ग्रन्थों में राधा का उल्लेख नहीं है। पीछे बालकृष्ण की प्रधानता होने पर बालक देवताओ की सभी बातें आभीरो से ली गई।"

रूप के साथ राधा-कृष्ण सपूर्ण भाव तथा काव्य-जगत की वस्तु हो गए। आराधित शब्द से भी राधा की कल्पना की जाती है[1]।

कृष्ण-काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

कृष्ण-काव्य का आधार प्रेमाभक्ति की परम्परा है, और वल्लभ की प्रेमाभक्ति का उत्स श्रीमद्भागवत है। इन काव्यकारो के अनुसार माया से रहित ब्रह्म ही जगत का कारण है। जगत और जीव दोनो ही ब्रह्म की लीला के विस्तार हैं। वह अविनाशी ब्रह्म भेदरहित, शुद्ध, जन्ममरण तथा कामना रहित है[2]। वह विरोधाभास वाले गुणो से पूर्ण है, निर्गुण होते हुए भी सगुण, सधर्मक होते हुए भी अधर्मक है। मन, वाणी की क्षमता से परे यह सर्वशक्तिमान ब्रह्म, भक्तो के लिए सगुण स्वरूप धारण कर लोक में अपनी मनोहर, अद्भुत लीला का विस्तार करता है[3]। यह अगम, अखण्ड, नित्य ब्रह्म केवल प्रेम द्वारा ही गम्य है[4]। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार जड जगत और जीव सृष्टि सच्चिदानन्द के ही अंश हैं[5]। ब्रह्म सगुण स्वरूप ही वास्तविक एवम् सत्य है। इस नित्य प्रभु की लीला भी नित्य है। विष्णु के वैकुण्ठ के भी ऊपर व्यापक वैकुण्ठ में

(व) "राधा आर्यों से पूर्व जाति की प्रेम-देवी रही हो उनकी प्रधानता के कारण उनका सबंध कृष्ण से जोड दिया गया होगा।"
हजारीप्रसाद द्विवेदी—सूर-साहित्य, पृ० २६, १९९३ स०, इन्दौर

१ "अत' आराधिता शब्द से राधा की उद्भावना कर लेना कठिन कार्य न था। कृष्ण की जो आराधिका है, वही राधा या राधिका है। भगवान की ह्लादिनी शक्ति का रूपान्तर हैं, कृष्ण नारायण के अवतार हैं, अत. लक्ष्मी को वृषभानुजा राधा कह कर निम्बार्क ने कृष्ण की शाश्वत पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित किया।"
मुंशीराम शर्मा—भारतीय साधना और सूर-साहित्य, कानपुर, पृ० १७३

२. "अमल, अकल, अज, भेद विवर्जित सुनि विमल विवेक।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० १२७, पद ३८१

३ "कह्यो सुक सुनो परीच्छित राव, ब्रह्म अगोचर मन बानी ते अनन्त प्रभाव भक्तन हित अवतार धारि करो लीला संसार।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ३२५, पद ३०७

४. "नित्य आत्मानन्द अखण्ड स्वरूप उदारा
केवल प्रेम सुगम्य, अगम्य अवर परकारा"
नंददास—नंददास ग्रन्थावली स० ब्रजरत्नदास श्री कृष्ण सिद्धान्त पचाध्यायी, पृ० ४४, २००६ स० काशी

५ "नाथ तुम्हारी जोति अभास, करति सकल जगत में परकास।
थावर जगम जहँ लगि भये, जोति तुम्हारी चेतन किये।।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, प० १७१२. ४३०० । ४९१८

अपने भक्त गण के साथ क्रीडा करता है। इस वैकुण्ठ में नित्यक्रम से जमुना, वृन्दावन और निकुज हैं। इस व्यापक वैकुण्ठ भूमि का एक भाग गोलोक है। रसेश्वर, पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण अपने षटगुणो एवम् अप्राकृत धर्मों से युक्त हो अक्षर-धाम में नित्य लीला मग्न रहते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम का लीलावाम गोकुल अथवा वृन्दावन है जो ब्रह्म का ही स्वरूप है। वल्लभाचार्य के अनुसार यह ब्रह्म सत् से प्रकृति, सत्, चित, जीव और सत्, चित, आनन्द मे सर्वव्यापी ब्रह्मके रूप में प्रकट हुआ हैं। सर्जन की इच्छा से ही वह सृष्टि का प्रणयन तथा विनाश करता है। ससार उसी से उत्पन्न होकर उसी में विलीन भी हो जाता है[1]। इन कृष्णशाखा के कवियो के अनुसार व्रजभूमि का रास पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण के नित्य रास का ही रूपान्तर है। इस रास पर उन्होने आध्यात्मिक भावना का आरोप कर, परमब्रह्म के ससर्ग के कारण निर्दोष वताया है[2]।

यह स्पष्ट है कि ब्रह्म के ही अश व्रज के गोप-गोपी-गोवत्स हैं। राधा सब से विशिष्ट हैं। उनके द्वारा ही कृष्ण का परमानन्द-स्वरूप पूर्ण होता है। कृष्ण आदि पुरुष हैं और राधा आदि प्रकृति। इन कृष्ण कवियो के दर्शन में कृष्ण को विष्णु का अवतार तथा राधा को लक्ष्मी का अवतार माना गया है। राधा और कृष्ण अभिन्न हैं। वह जग-नायक हैं और वह जगत-जननी हैं, बृन्दावन में गोपाल लाल के साथ नित्य विहार करती रहती हैं[3]। सभी भक्त-सम्प्रदायो में माया की स्वीकृति किसी न किसी रूप में है। कृष्ण-भक्तो में सूरदास के अनुसार माया के द्विविध रूप मान्य हैं एक सद और दूसरा असद। ब्रह्म और जीव के साक्षात्कार में बाधक अज्ञान माय

---

१ "जग सिरजत पालक सहारत, पुनि क्यों बहुरि करे,
ज्यों पानी में बुदबुदा, पुनि ता माँहि समाइ,
ज्यो ही सब जग प्रगटत तुम तें, पुनि तुम माँहि विलाइ।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० १७१३, ४३०२। ४९२०

२ "धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तव रसना कहि गान्यौ,
धन्य श्याम वृन्दावन को सुख, सत भया ते जान्यौ।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६६२, पद ११७३।१७९१
"सुक भागवत प्रगट करि गायौ कछू दुविधा न राखी,
सूरदास ब्रजनारि सग-हरि बाकी रही न काखी।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६६२, पद ११७२।१७९०

३ 'रूपरासि सुख रासि राधिके सीला महागुन-रासी,
कृष्ण चरन ते पावहिं स्यामा जे तुव चरन उपासी।
जगनायक, जगदीश पियारी, जगत-जननी राघा रानी,
नित विहार गोपाल लाल-सग वृन्दावन रजधानी॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६२४, पद १०५५।१६७

उद्भूत है। यह प्रभु की माया अत्यन्त प्रबल है, यह मानव को पशु के समान अपना अनुगामी बना लेती है। हिंसा, ममता, मद, आशा आदि इसके सहायक हैं[1]। इसी माया के प्रभाव से मनुष्य सुत-वनिता आदि को मोह-माया में ग्रस्त होता है। यह सांसारिक माया, कांचन कामिनी, सम्पत्ति और परिवार, जिसका विस्तार है, भक्ति के पथ में बाधक है[2]। माया का दूसरा रूप भगवान की योग-माया का है। नित्य वृन्दावन में नित्य रास की अलौकिक क्रीडा भगवान कृष्ण की योगमाया का ही विस्तार है।

गोपी भगवान की आनन्द-प्रसारिणी शक्ति है, जो भगवान की सिद्ध-शक्ति राधा के साथ रसेश्वर कृष्ण से क्रीडा करती हैं। वे सामान्य लौकिक नारी नहीं, प्रत्युत् वेद की ऋचाएँ हैं। जैसा कि आगे कहा जायेगा इन गोपियों के भाग्य सुर ललनाओं के लिये भी ईर्ष्या के कारण हैं। उनकी महिमा का वर्णन ब्रह्मा भी करते हैं[3]।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण

पुष्टिमार्गी भक्ति की रागानुगा धारा मर्यादा की सीमा में बद्ध होकर नहीं चली। उसके प्रचण्ड वेग के समक्ष सामाजिक बन्धन और प्रतिबन्ध ढह गए। किन्तु साधना की प्रारम्भिक अवस्था में इन्होंने भी मर्यादा को अनिवार्य माना गया है। भक्ति-योग की साधना के लिये उन्होंने यमनियमादि अष्टाग योग का विधान किया है[4]। किन्तु साधारणत इन्होंने निश्छल भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है। भगवान

---

१. "अब हौं माया-हाथ बिकान्यौ,
परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस भज्यौ न श्रीपति रामै।
हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आशा ही लपटायौ॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० १७, ४७

२ "व्याकुल होत हरे ज्यौं सरबस, आंखिन धूरि दई
सुत–संतान–स्वजन–वनिता–रति, घन समान उनई
राखे सूर पवन पाखण्ड हरि, करी जो प्रीति नई"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड (नन्ददुलारे वाजपेयी)
पृ० १७, पद ५०, २००७ सं०

३ "गोपी पदरज महिमा, विधि भृगु सौं कही
वरष सहस तप कियौ तऊ मैं ना लही॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६६२, ११७५। १७६२

४ "भक्ति पथ जो अनुसरै—सो अष्टांग जोग को करै
यमनियमासन, प्रानायाम करि अभ्यास होइ निष्काम
प्रत्याहार धारण ध्यान करै जु छाँडि वासना आनि॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, सूरसमिति द्वारा प्रकाशित
पृ० २२१, पद ३६४ सं० २००७ काशी

का भक्त ही उनकी दृष्टि में योग्यतम है। जो व्यक्ति भगवद्-भजन नही करता उनकी माता ने उसका भार व्यर्थ ही वहन किया है[१]। इन श्रीपति विष्णु अथवा कृष्ण का द्वार बिना किसी जातिगत, धर्मगत भेदभाव के सब के लिये उन्मुक्त है। उसी हरि का स्मरण करना भवजीवन का पाथेय है जो पुरुष और स्त्री दोनो को ही भक्ति एवम् शरण का अधिकारी मानता है[२]। इस कलिकाल मे जब अन्य किन्हीं सत्कर्मों का अवकाश नही है, समस्त विधि-विधान अमान्य हो गये हैं, तब केवल रामनाम ही अवलम्ब है[३]। जब तक मनुष्य के हृदय मे आकाक्षा, कामना रहती है, तब तक योग, यज्ञ, व्रत, उपासना सब कर्म-काण्ड व्यर्थ होते हैं। पुन सूर भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुये सकामी भक्त को भी क्रम से मुक्ति-लाभ का अधिकारी मानते हैं[४]। इस भक्ति-पथ के अनुसरण के लिये सासारिक मोह-माया, सुतकलत्र की ममता का अभिराम बन्धन तोडना आवश्यक है। यह माया-जाल निरर्थक है। इसकी मोहिनी से उद्भ्रान्त मानव विनाश की ओर अग्रसर होता रहता है। गृह-दीपक में धन का तैल पडा है, स्त्री की बत्ती लगी हुई है और पुत्र की ज्वाला जल रही है, उस पर भाव से अभिभूत मन शलभ के समान बलिदान को प्रस्तुत हो जाता है[५]। अत इन सभी मायिक प्रलोभनो का

---

१ "बिरथा जन्म लियौ ससार
करी कबहु न भक्ति हरि की जननी भारी भार।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ९७, २९४ पद

२ "कह्यौ सुक श्री भागवत विचार
जाति—पाति कोउ पूछत नाहीं श्रीपति के दरबार।"
सूर—सूरसागर खण्ड १, पृ० ७५, पद २३१

"हरि के जन सब तें अधिकारी।"
सूर—सूरसागर खण्ड १, पृ० १२, पद ३४

"हरि, हरि, हरि सुमिरो सब कोइ, नारि पुरुष हरि गनति न दोइ॥"
सूर—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ७९, पद २४५

३ "है राम नाम को आधार
और इहि कलिकाल नाहीं रह्यौ विधि व्यौहार"
सूर—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ११५-१५, पद ३४७

४. "जौ लौं मन-कामना न छूटै
तौ कहा जोग जज्ञ व्रत कीन्है, बिनु कन तुस कौ कूटै"
सूर—सूरसागर, पृ० ११७, पद ३५२

"भक्त सकामी हू जो होइ, क्रम, क्रम करिकै उधरै सोइ,
सूर—सूरसागर, पृ० १३७, पद ३९४

५ "माधौ जू, मन माया बस कीन्हौं
लाभ हानि कछु समझत नाहीं, ज्यौं पतग तन दीन्हौं
गृह-दीपक, धन तेल, तूल तिय सुत ज्वाला अतिजोर॥"
सूर—सूरसागर खड १, पृ० १६, पद ४६

परित्याग श्रेयस्कर है। सामाजिक माया एवम् वासना के परित्याग का आदेश देकर सूर अपनी समस्त भावनाओं एवम् कामनाओं को भगवान् में ही पर्यवसित करने का उपदेश देते हैं। राग अथवा रति का आलम्बन परिवर्तित हो जाने से ही वह दिव्य हो जाती है परन्तु उनका मार्ग काम, क्रोध, मद, मोह से विराग का होता हुआ वैराग्यमूलक होकर भी अनुरागपूर्ण है। वह राग की सार्थकता कृष्ण में केन्द्रित होने में ही मानते हैं। वासनाओं को भी वह कृष्ण में ही पर्यवसित करते हैं। इस प्रकार इन भक्त कवियों का उद्देश्य लौकिक भावनाओं को अलौकिक आलम्बन में नियोजित कर उनका उन्नयन करने का है[1]।

कृष्ण-भक्त कवि और नारी

कृष्ण कवियों में सूरदास ने संतों द्वारा परम्परा में प्राप्त नारी-निन्दा को और भी अग्रसर किया। सूरसागर प्रथम खण्ड में कृष्ण-कथा-वर्णन के पूर्व राजा पुरु की कथा में कवि नारी के स्वभाव की तुलना नागिन से करता हुआ नारी को नागिन से भी अधिक भयंकर मानता है। नागिन का विष तो तभी व्यापता है जब वह काट लेती है, पर नारी अपनी दृष्टि-निक्षेप मात्र से मानव को चेतना हीन कर देती है[2]। नारी हृदयहीन तथा कठोर होती है। यद्यपि नर नारी से प्रेम करता है, परन्तु वह नृशंसता से उसका परित्याग कर देती है[3]। नारी के स्वभाव का जो चित्र उर्वशी के रूप में खींचा गया है, वह दया ममता से हीन है[4]। संतों के समान कृष्ण-काव्य के कवि भी अपनी और पराई नारी से दूर रहने का उपदेश देते हैं। उनके अनुसार नारी के सम्बन्ध मिथ्या, माया के मूल और भक्ति में बाधक हैं। पुनः कृष्ण-चरित वर्णन में भी दूती मानिनी राधा के मान-मोचन में भामिनी और काली सर्पिणी

---

१ "उक्त प्रकार से ही सूरदास परमानन्ददास आदि ने लौकिक भावों को लोक के आलम्बनों से हटाकर ईश्वर की ओर लगाया था। परिष्कार की अवस्था में भाव वही रहा केवल विभाव बदल गया।'
दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय दूसरा खण्ड, पृ० ६४८

२ "सुकदेव कह्यौ सुनो हो राव, नारी नागिन एक सुभाव।
नागिन के काटे विष होइ, नारी चितवत नर रहै मोह॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, नन्ददुलारे वाजपेयी, नवम् स्कंध, पृ० १८०

३ "नारी सों नर प्रीति लगावै, पै नारी तिहि मन महिं नावै।
नारी संग प्रीति जो करै, नारी ताहि तुरत परिहरै।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, नन्ददुलारे वाजपेयी, नवम् स्कंध, पृ० १८०

४ 'तिनु अपराध पुरुष हम मारे, माया मोह न मन में धारे।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, नन्ददुलारे वाजपेयी, नवम् स्कंध, पृ० १८२

की तुलना करती हैं[1]। दान लीला में कृष्ण स्वय नारी के प्रति हीनता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि बालक और स्त्री को अधिक सिर नही चढाना चाहिए[2]। स्पष्टत इन कवियो ने नारी को माया का रूप, मिथ्या और गर्हित माना है। परन्तु उपास्य के प्रति अपनी भावनाओ की अभिव्यजना प्राय नारी भाव से की। गोपी रूप में व्रजचन्द के साथ रास ही इनका काम्य रहा। वास्तव में इन कृष्ण-भक्तों को नारी के दो रूप मान्य हैं, सामान्य और विशेष। सामान्य रूप में वह लौकिक नारी है, जो माया और मिथ्या की प्रतीक है। समाज के वन्धनो और कुलमर्यादा का पालन उसके लिए अनिवार्य है। विशेष रूप गोपियो का है, जो पार्वत्य सरिता के समान अप्रतिहृत वेग वाली हैं। मर्यादा के कगारे, लोक-कानि और कुल-कानि के तटीय वृक्ष कृष्ण-प्रेम की प्रचण्डता के समक्ष नष्ट हो जाते हैं। इस विशेष रूप में आर्य-पथ त्याग करने पर भी यह दोष की भागिनी नही होती, इसका कारण है कि यह गोपियाँ स्वय भक्त अथवा वेद की ऋचाएँ हैं। वह माता-पिता के स्नेह, कुल की मर्यादा आदि बन्धनो का केंचुलवत परित्याग कर देती हैं। किन्तु उनका यह मर्यादा त्याग भी श्लाघ्य है[3]।

---

१. "भामिनी और भुजगिनी कारी, इनके विषहि डरिए
रांचेहु विरचै, सुख नाहीं, भूल न कबहुँ पत्यैये
इनके बस मन परैं मनोहर, वहुत जतन करि पैयौ।"

× × ×

"जै जै प्रेम छकै सें देखै, तिनहिं न चातुरताई।
सूर—सूरसागर द्वितीय खण पृ० ११८७, २८२६। ३४४३ स० २००७
काशी

२. "कबहूँ वालक मुँह न दीजियौ, मुँह न दीजियौ नारी।
जोइ मन करैं, सोइ करि डारैं, मूड चढ़त हैं भारी॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ७८६, १५१८, २१३६

३ "व्रजसुन्दरि नाहिं नारि रिचा स्रुति री
मैं और शिव पुनि शेष लच्छमी तिनि समता नाहीं।"

× × ×

"स्रुतनि कहा ह्वै गोपिका केलि करौ तुम सग
एवम् अस्तु निज मुख कह्यौ पूरन परमानन्द।"

× × ×

"भार भयौ जव पृथ्वी पर तव हरि लियौ अवतार,
वेद ऋचा ह्वै गोपिका हरि सग कियौ विहार।
जो कोउ भरता भाव हृदय धरि हरि पद ध्यावै,
नारि पुरष कोउ होइ स्रुति ऋचा मति पावै॥"

सूरदास—सूरसागर खण्ड १, पृ० ६६३, ६४ पद ११७५। १७६३

कृष्ण-काव्य की नारी भावना के विश्लेषण के पूर्व उसके मधुर भाव की भक्ति के सिद्धान्त पर दृष्टि डाल लेना समीचीन होगा। वल्लभ तथा अन्य सामयिक विद्वानो के द्वारा की हुई व्याख्याओं से भक्ति का स्थायी भाव प्रीति सिद्ध होता है। मानव सम्बन्ध के जितने रूप सभव हैं, उन सब को प्रीति को इन कवियो ने ईश्वरोन्मुख किया है। इन्होंने ईश्वर को तीन रूपो में देखा है, एक स्त्री रूप में दूसरे पुरुष रूप में और तीसरे युगुल रूप में। कृष्ण-भक्तो में ईश्वर की युगल रूप की उपासना तथा एकाकी रूप की उपासना दोनो ही मान्य हैं[1]। भक्तो ने लोक में उपलब्ध प्रीति के भिन्न-भिन्न स्वरूपो को प्रेम में ही पर्यवसित किया है। सासारिक अनुरक्ति में लिप्त मानव को मुक्त करने के लिए विषय-तृप्ति का साधन भी भगवान् को ही माना है। प्रेम के समस्त सम्बन्धो में पूर्णता एवम् दृढता, सहज समर्पण एवम् प्रणय की भावना स्त्री-पुरुष सम्बन्ध मे ही अधिक सम्भव है। इसी कारण काव्य एवम् भक्ति में कवियो, साधको तथा भक्तो ने अपने हृदय की उत्कट रति की अभिव्यजना का साधन दाम्पत्य-भाव के प्रतीक को ही माना है। स्वकीय भाव के प्रेम से परकीय भाव के प्रेम में अधिक प्रचडता और गूढता होती है। अतएव आध्यात्मिक साधको ने भी जारभाव तथा परकीय भाव भी ग्रहण किया है। वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त की आकाक्षाओं की मधुर परिणति गोपी भाव से आराध्य के सहवास, तथा सान्निध्य के आनन्द का उपभोग ही है। इन अष्टछाप के कवियो ने स्त्री रूप को लेकर, सयोग की सरसता और वियोग की व्याकुलता के चित्रण में स्वकीया भाव को ही प्रधानता दी है। परकीया भाव की अभिव्यक्ति बहुत कम है।

---

१ "अष्टछाप भक्तो की रचनाओं में उनकी एकाकी कृष्ण तथा युगल दोनो प्रकार की भक्तियो का परिचय मिलता है। उनकी दृष्टि में कृष्ण उनके स्वामी हैं तो राधा स्वामिनी हैं कृष्ण की राधा अभिन्न स्वरूपा प्रिया है। इसीलिए स्थान-स्थान पर उन्होंने कभी राधा की, कभी कृष्ण की तथा कभी युगल की स्तुतियाँ की हैं।"

दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ४२६, २००० वि० स० प्रयाग

"मैं कैसे रस रासहि गाऊँ।
श्री राधिका श्याम की प्यारी कृपा बास ब्रज पाऊँ
आन देव सपनेहुँ न आनौं, दपति को सिर नाऊँ॥"

सूर—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ६६५, ११७४।१७९२

"अगतिनि की गति भक्तनि की पति राधा मगलदानी।
असरन-सरनी भव-भय-हरनी वेद पुरान बखानी॥
रसना एक नहीं सत कोटिक, सोभा अमित अपार।
कृष्णभक्ति दीजै श्रीराधे सूरदास बलिहार॥"

सूर—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ६२४, १०५५।१६७३

वास्तव में राधा और गोपी का विह्वल प्रेम, कीट और मृ ग की गति, व्याकुल विरह-वेदना इन भक्तो के हृदय की ही अभिव्यजना है। अष्टछाप के कवियो ने भगवान् को सभी रूपो में उपासना योग्य माना है, परन्तु उनकी भक्ति में स्त्री-भाव की प्रधानता है।

कृष्ण की मुरली के स्वर को सुनकर गोकुल की कुलवधुएँ और कुमारियाँ अपनी विवेक बुद्धि खो बैठती हैं। कृष्ण की प्रेमिकाओ, बेनु-नाद पर उन्मादिनी हो जाने वाली नारियों में विवाहिता और अविवाहिता दोनो प्रकार की नारी हैं। कुमारियो में कुछ का परिणय भी कृष्ण से हो जाता है, शेष अविवाहिता ही लोक और वेद की मर्यादा त्याग कर कृष्ण की उपासना करती हैं, परन्तु वह पति-भाव से कृष्ण की उपासना करती हैं, उनके प्रेम में पतिव्रता की एकनिष्ठा और अखण्डता है[1]। अष्टछाप के कवियों ने इनको स्वकीया के अन्तर्गत रखा है। उनकी राधा कृष्ण की प्रेयसी नही प्रत्युत पत्नी है। रम्य रास के मध्य में उनका विवाह होता है[2]। कृष्ण-प्रेम-मतवाली उन गोपिकाओ को—जो अविवाहित है—अनन्यपूर्वा मानकर उनमें पूर्वराग का आरोप किया है। राधवल्लभीय सम्प्रदाय की सखी-भाव की उपासना का भी प्रभाव इन कृष्ण-भक्त कवियो पर पडा हैं। इसमें भक्त का अस्तित्व दर्शक रूप में, सखी अथवा चेरी भाव से होता है। वह कृष्ण और राधा की परिचर्या कर उनके नित्य विलास में सहायक होता है।जैसा कि कहा जा चुका है इन कृष्ण-भक्तो ने कृष्ण की नारी-भाव से उपासना के अन्तर्गत दो भावो को प्रधानता दी है, वात्सल्य भाव तथा दाम्पत्य भाव। अपनी भावनाओ का उन्नयन उन्होने नारी बन कर ही किया[3]।

---

१ "गौरी पति पूजति ब्रजनारि।
नेम धर्म सों रहति क्रिया जुत, बहुत करत अनुहारि।
यहै कहति पति देहु उमापति गिरिधर नन्दकुमार॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, नददुलारे वाजपेयी पृ० ५२४ पद १३८४, काशी २००७

"यह व्रत हिय धरि पूजी, है कुछ अभिलाष न दूजी।
दीजै नन्दसुवन पति मेरे, जो पै होइ अनुग्रह तेरे॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६३०, पद १०७२।१६९०

२ "सनकादिक नारद मुनि सिव विरचि जान।
देव-दुदुभी मृदग वाजे वर निसान॥"
× × ×
"दुलहिन वृषभानु-सुता, अग अग साज।
सूरदास देखौ श्री दूलह ब्रजराज॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६३२, पद १०७४।१६९२

३ "भावनाओं के कृष्ण के प्रति उन्नयन में भक्तों को पौरुष की ग्राहक त्ति से क्या प्राप्त हो सकता था। भक्ति का मार्ग सेवा और समर्पण

राधा, परमानन्द शक्ति की प्रतीक

अष्टछाप के कवियो की राधा केवल सामान्य प्रेयसी नही है, वह ब्रह्म की आदि शक्ति हैं। भक्ति के सिद्धान्त के अनुसार वह कवि की पूजनीया है। वह कृष्ण से अभेद, परम ब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति है। ससार के व्यवहार के कारण उन्हें अपने स्वरूप का विस्मरण हो जाता है। गुरुजनो द्वारा प्रेम-मार्ग मे प्रस्तुत की गई बाधाओ एवम् प्रतिबन्धो से खीज कर वह मुरारी से विनय करती है कि वह अपने मोहन रूप से उन्हें उद्भ्रान्त न करें। लोकापवाद, माता-पिता की ताडना और बन्धुओ के व्यवहार से वह दुखी हो गई है तब कृष्ण उन्हें समझाते हैं कि यह तो मानव शरीर धारण करने का धर्म है, अत इन बन्धनो को मानना ही पडता है[1]। पुन वे कहते हैं कि ब्रजभूमि में जन्म लेकर तुमने अपनी महत्ता को भुला दिया। क्या तुम्हे विस्मरण हो गया कि मैं पुरुष हू और तुम प्रकृति, तथा दोनो अभेद हैं[2]। कृष्ण के इन वचनो को सुनकर राधा नागरी अपने पूर्व-स्नेह को स्मरण कर, पूर्ण ब्रह्म, रसेश्वर कृष्ण के साथ अपनी अभिन्नता का अनुभव कर

का था। स्त्री के समर्पण के अनुकरण द्वारा ही भक्त उस सीमा तक पहुँच सके थे, जहाँ उनके तथा उपास्य के बीच के अन्तर की क्षीण रेखा भी न रह गई थी। अपने प्रियतम की उपासना उसने नारी बन कर की। यशोदा के वात्सल्य की अनुभूति से सूरदास तथा परमानन्द दास के हृदय में वात्सल्य की रसधार फूट पडी। राधा बन कर कृष्ण-भक्तों ने कृष्ण के साथ कुज में विहार किया, गोपिकाओं के रूप में उनके साथ फाग और वसन्त मनाया।"

सावित्री सिन्हा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० ६५, १९५३ दिल्ली

१ "हँसि बोले गिरधर रस बानी।
गुरुजन खिझै कतहि रिस पावत, काहे को पछितानी।
देह धरे को धर्म यही है, स्वजन कुटुम्ब गृह-प्रानी।
कहन देहु कहि कहा करेंगे, अपनी सुरति हिरानी।"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ८४१, पद १६८५।२३०३

"देह धरे को यह फल प्यारी।
लोक लाज कुलकानि मानिए, डरिए बन्धु महतारी।"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ८४२, पद १८६०।२३०८

२ "ब्रजहि बसे आपहि बिसरायो।
प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायो।
जल थल जहाँ रहो तुम बिनु नहिं, बेद उपनिषद् गायो।
द्वै तन जीव-एक हम दोउ, सुख कारन उपजायो॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ८४१, पद १६८७।२३०५

प्रफुल्लित हो उठती हैं[1]। यह राधा शेष महेश नारदादि की स्वामिनी है। राधा के लौकिक रूप में गौरवमयी मानिनी स्वकीया, विरह व्यथिता वियोगिनी आदि नारी के विभिन्न रूपो का चित्रण किया गया है।

प्रेम, पूर्वराग, सयोग-लीला, वियोग की वेदना की इसी पृष्ठभूमि में कृष्ण-कवियो की नारी-भावना का विकास हुआ है। यशोदा तथा अन्य वय प्राप्त गोपियो के रूप में कविगण अपने हृदय की भक्ति को वात्सल्य के रूप में लुटा देते हैं। कृष्ण की बाल-लीलाओ—हठ, क्रीडा आदि—पर उनका भक्त-हृदय रीझ उठता है। नारी हृदय के दो प्रधान तत्वो वात्सल्य और प्रेम के आरोपण से नारी-भावना के विकास में जननी और जाया, माता और प्रेयसी के दो रूप मिलते हैं। नारी कवयित्रियो, मीरा आदि ने कृष्ण को अपना इष्टदेव तथा स्वय को राधा अथवा गोपी मानकर उनकी उपासना की है[2]। नन्दलाल के प्रेम में वह मतवाली होकर लोककानि, मर्यादा का त्याग कर देती है। वह अपनी प्रीति को पुरातन जन्म-जन्मान्तर की मानती है, उसी प्रीति का अवलम्ब लेकर लोकापवाद आदि सहने को प्रस्तुत है। अपने प्रियतम से वह अत्यधिक प्रेम करती है, अत हृदय की अपरिसीम श्रद्धा का पात्र होते हुए भी वह अत्यन्त निकट होने के कारण उपालभ का पात्र भी है[3]। आत्मनिवेदन, प्रणय विह्वलता के क्षणो में इष्ट लौकिक प्रणयी हो जाता है, और समस्त प्रकृति तथा अन्य वस्तुएँ उद्दीपन का कार्य करती हैं[4]। मीरा के

---

१ "तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि स्याम को अति आनन्द भई।
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वै पति, काहे भूलि गई॥"

× × ×

"जन्म जन्म जुग-जुग यह लीला प्यारी जानि लई।
सूरदास प्रभु की यह महिमा, याते बिबस भई॥"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ४८२, पद १६८८।२३०६

२ "मैं अपने सैया सग साची।
अब काहे की लाज सजनी परगट ह्वै नाची।"

मीरा—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ६, २००६ प्रयाग

"श्री गिरधर आगे नाचूंगी।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊ, प्रेमीजन को जांचूगी।"

मीरा—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ६

३ "जावो निरमोहिया जाणो तेरी प्रीति।"

मीरा—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २४

४ "दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणावै।
घुमड घटा ऊलर होइ आई, दामिनि दमक डरावै॥"
नैर झर लावै॥

मीरा—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २६

काव्य मे नारी हृदय की समर्पण की भावना साकार हो उठी है। उनके काव्य से स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में नारी के भक्ति-मार्ग अनुसरण में कितनी बाधाएँ थीं, तथा नारी पर समाज के कितने बन्धन थे। मार्ग के अवरोध एवम् बाधाएँ उनकी भक्ति को तीव्रतर करती गई, उसका प्रेम उन्मत्त अवस्था की सीमा तक पहुँच गया था। निष्काम, भोग लालसा-रहित इस प्रेम को ही गोपी-भाव के नाम से अभिहित किया गया।

यशोदा को बडी उत्कण्ठा और प्रतीक्षा के उपरान्त पुत्र का मुखदर्शन मिला, अत स्नेह और प्रेम की बहुलता स्वाभाविक है। कृष्ण छोटे हैं, यशोदा उन्हें पालने पर झुलाती हैं। धीरे-धीरे मातृ-हृदय का आनन्ददाता कन्हैया बडा होता है। बालक के मुख से तोतले बोल सुनने के लिए माता के हृदय में असीम उत्कण्ठा एवम् लालसा है[1]। दूर खेलने जाने से माता का वात्सल्यपूर्ण हृदय शकित हो उठता है, अत वह हौवा का भय दिलाकर बडी मनोवैज्ञानिकता मे बालक को मना करती है[2]। बडे मनोयोग स्नेह और दुलार के साथ श्याम और राम को 'कलेऊ' कराती है[3]। ब्रज में आने वाली नित नई आपदाओ के साथ जननी के हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह और उसकी कुशल में शका बढती जाती है। वह अपने सुन्दर बालक को कुदृष्टि लग जाने से बचाने के लिए उनके नयनो को काजल-रजित कर देती है। उनका छोटा-सा नन्दलाल जब दीर्घकाय गोवर्धन को उठा लेता है तब जननी की स्नेहमयी दृष्टि उसकी अलौकिक शक्ति की ओर उन्मुख नही होती, प्रत्युत मातृ-सुलभ स्नेह से उसकी भुजा दाबती है[4]। अक्रूर के साथ नदनदन मथुरा

---

१ "नान्हारिया गोपाल तू वेगि वडो किम होइ।
इहि मुख मधुर वचन हँसिकै जननि कहै कब मोंहि॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० २८६ पद ६६३

२ "खेलन दूरि जात कत कान्हा।
आजु सुन्यो मैं हाऊ आयो तुम्ह नहि जानत नान्हा।"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० २८६, पद ८१७

३. "करो कलेऊ बलराम कृष्ण तुम कहत जसोदा मैया।
पाछे वछ ग्वाल सग लै के चलहु चरावन गैया॥"
परमानन्द—परमानन्द पदावली, (अष्टछाप पदावली) १९४० लाहौर

४ "कमलनयन मेरो अखियन तारा कुल दीपक ब्रजनेह।
परमान्दे कहति नन्दरानी, सुतप्रति अधिक सनेह॥"
परमानन्द—परमानन्द पदावली, (अष्टछाप पदावली) १९४० लाहौर
"वृझत लाल कहा कीनो।
चूमति चापि उर लावति सकल मना जु प्रयोनो।
कमलदल अगुरी दन ऊपर गोवर्द्धन कैसे कै लीनो।"
गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी-पदावली, पृ० ३६ ब्रजभूषन शर्मा
प्रा० स० २००६ कांकरोली

चले जाते हैं नद अकेले व्रज लौट आते हैं। यशोदा के क्षोभ की सीमा नही रहती। वह प्रेम की अतिशयता में नन्द को भी बुरा-भला कहती है। मातृ-हृदय की भावनाओ का मनोवैज्ञानिक चित्रण इन कृष्ण-कवियो ने किया है। पथिक द्वारा भेजे गए सदेश में उसकी दीनता मुखर हो उठती है[1]। कृष्ण की दिनचर्या का स्मरण कर उनकी अन्यतम प्रियवस्तु माखन को देखकर उनका सारा सयम और धैर्य विगलित हो जाता है। उनके सरल हृदय को प्रतीति है कि उनके श्याम को माखन जितना प्रिय है उतना राजभोग नही होगा[2]।

सयोगकाल में राधा तथा गोपीगण कृष्ण के साथ क्रीडा करती हैं। इन कृष्ण भक्तो की गोपियो का कृष्ण से प्रेम केवल विलासिनी का विलास नही है प्रत्युत् वह बाल्यकाल के सहवास से पुष्ट हुआ है। नटवर नागर, रसेश्वर, नवीन लीलाएँ करते हैं, कही गोपी गण का चीरहरण करते, कही दान मांगते हैं और कभी उनका माखन खाकर, दही फैलाकर गागर फोड देते हैं। उनकी रसमयी लीला से आह्लादित गोपी यशोदा को उपालम्भ देकर भी पति-भाव से कृष्ण को पाने के लिए पूजा और उपासना करती हैं[3]। सामाजिक मर्यादाओ का अतिक्रमण कर उनका प्रेम पुष्पित होता रहता है। श्यामसुन्दर की जो जिस भाव से उपासना करता है उसी भाव से वह उसकी कामना पूर्ण करते हैं[4]। अत यमुना के पुलिन पर कृष्ण शरद की रजनी की धवल शीतल ज्योत्स्ना में रम्य रास रचते हैं। मुरली की ध्वनि सुनकर आर्य-पन्थ का परित्याग कर, गृह मर्यादा को ठुकरा कर गोपीगण

"आधे आधे वचन सुहावने लाल सुनत जननी मन मोद
मुख चूमत स्तन-पान दै हो लाल लै बैठारति गोद।
काजर लोचन आजिकै हो लाल भौंह मटुका दै बैठि।
अपनो लाल काहू को देखन न दैहों जिनि कोऊ लावौ डीठि।
गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी (पदावली) पृ० ६

१ "जुग जननी जगद विदित, सूर प्रभु हम हरि की है धाइ।
कृपा करहु पठवहु यहि नातै, जीवे दरसन पाइ॥"
सूर—सूरसागर, पृ० ३१७८।३७९६ द्वितीय खण्ड

२ "खान पान परिधान राजसुख कोऊ कोट लडावैं।
तदपि सूर मेरो बाल कन्हैया माखन ही सचु पावैं॥"
सूर—सूरसागर, पृ० ३१७९।३७९७

३ "हमको देहु कृष्ण पति ईश्वर और नहीं मन आन।
मनसा वाचा कर्म हमारे सूर स्याम को ध्यान॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ५२६, ७८२।१४००

४ "व्रत पूरन कियौ नन्द कुमारा, जुवतिनि के मेटे जजारा।
जप तप करि तनु जिनि गारौ, तुम घरनी मैं कत तुम्हारौ॥'
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ५३३, ७९७।१४१५

प्रेम में मतवाली हो जाती हैं। नारी का यह रूप सामान्य नारी के पक्ष में घटित होता है।

प्रेम के विभिन्न रूपो में नायिका-भेद

इन भक्त कवियो ने दिव्य शृगार के अन्तर्गत विभिन्न नायिकाओ का चित्रण किया है। यद्यपि अपने उत्तरवर्ती रीति-कवियो के समान उन्होने नायिकाओ के लक्षण और उदाहरणो से पूर्ण काव्य रचना नहीं की, तथापि इनके काव्य में नायिकाओं के विविध भेद स्पष्ट हैं। राधा मानिनी स्वकीया हैं[1], उनमें परिणीता का गौरव एवम् पत्नी की गरिमा है। अपने अलौकिक सौन्दर्य से उन्होने नटनागर को पूर्णरूप से वश मे कर लिया है, परन्तु कृष्ण के वहुनायकत्व के कारण मान के अवसर प्राय आते हैं। पहले तो उनकी धारणा का आधार सन्देह ही होता है, पर जब कृष्ण की मधुपवृत्ति को वह अपने नयनों से देख लेती है तब पहले परिहास, पुन रुदन और मान मे उनका दुख प्रकट होता है[2]। इन भक्तो को मधुर रस के अन्तर्गत 'खण्डिता' का रूप वहुत प्रिय है। अष्टछाप के कवियो ने राधा तथा गोपियो को 'वासक-सज्जा', 'अभिसारिका', 'खण्डिता', 'स्वाधीन-पतिका', 'सभोग-सुख-हर्पिता', एवम् 'मानिनी', 'प्रवत्स्य-पतिका', 'आगतपतिका आदि के रूप में अकित किया है। प्रिय सग अभिसार कर लौटती हुई राधा रानी के सयोग से मलिन सौन्दर्य का चित्रण इन सभी कृष्णभक्त कवियो ने किया है[3]। मिलन का स्थूल

---

१. "तेरे सुहाग की महिमा मो पै वरनि न जाई।
मदन-मोहन पिय वे वहु-नाइक ताको मन लियो रिझाई।
कवरी गुहत अपने कर लिखत तिलक भाल, रस भरे रसिक राई॥"
गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी पदावली, पृ० ४६२, स० २००६ काकरौली

"मोहन मोहिनि अग सिगारत।
वेनी ललित ललित कर गूंथत, सुन्दर माग सवारत॥"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ११२५, पद २६२८।३२४६

"पाछे ललिता आगे स्यामा, आगे पिय फूल विछावत जात।
कठिन कठिन कलि वीनि करति न्यारी, प्यारो पग गडिवे हि डरात।"
× × ×
"सूरदास प्रभु की लख अधीनता देखत मेरे नैन सिरात।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ११२२, पद २२१६।३२३४

२ "वार वार मैं कहति हौं प्रिय तहां सिधारौ।
आए हौ मन हरन कौं हरि नाम तिहारौ।
भली वनी छवि आज की यथों लेत जमुहाई।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ११०३, २५५८।३१७६

३ "आई तू तिलक कू मिटाये।
रतिरन गोपाल सग नगमर उरलाए।

शृगार दिव्य शक्ति एवम् कृष्ण का होने के कारण अत्यन्त पवित्र एवम् भक्ति भावना से पूर्ण है। सयोग काल में राधावल्लभ के साथ फाग एवम् जलक्रीडा आदि करने वाली गोपियाँ तथा राधारानी आनन्दथकित रहती हैं। सयोग के आनन्द के उपरान्त वियोग के दुखमय दिवस आते हैं। प्रेम-विवशा गोपीगण अपने सतापो एवम् दु ख का कारण समझ कर प्रेम को ही भला बुरा कहती है। दु ख-सुख का आवाहक प्रेम ही है, पर प्रीति करके किसी को भी सुख नही मिला। इन गोपियों के अनुसार सुख बलिदान, एवम् प्राणोत्सर्ग की अपेक्षा करता है[1]। प्रेमिका के लिए प्रेमपात्र ही एकमात्र आधार होता है[2]। वियोग काल में रास-रस-माती गोपियो का वेदना-अग्नि में तपा हुआ उज्ज्वल रूप दृष्टिगत होता है। साधारणत गोपी तथा राधा सामान्य विलास-क्रीडा-रत-नारी दृष्टिगत होती है। उनका अलौकिक रूप वासना की प्रखरता में छिप-सा जाता है परन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन कृष्ण-कवियो का उद्देश्य अपनी समस्त भावनाओ एवम् विकारो को भगवान् में ही समाहित कर देना था। इनके द्वारा चित्रित विशेष नारी का भाग्य सुर-ललनाओ के लिये भी काम्य है[3]। कृष्ण तो प्रत्येक व्यक्ति को उसकी भावना के अनुसार ही मिलते हैं। गोपी रूप मे भक्तो ने उन्हे पति रूप मे पाने के लिए कामना की अत सयोग सुख में उनकी लालसा पूर्ण हुई। अत इनके विलास की वासना मे अलौकिकता एवम् आध्यात्मिकता है।

कपोलन पर पीक लगी नैन कषाए।
हरि सों मिलि मदन जीत्यो दांव उपाए।"
कृष्णदास—अष्टछाप पदावली, सोमनाथ गुप्त सम्पादित, पृ० ४, १९४० लाहौर

"प्रिय सग जागी वृषभानु दुलारी।
अग अग आलस जभाति अति, कुज भवन से भवन सिधारी।"
छीतस्वामी—अष्टछाप, पदावली पृ० २०९

१ "प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ।
प्रीति पतग करी पावक सो आपं प्रान दह्यौ।
अलिसुत प्रीति करी जलसत सौं सपुट माझै गह्यौ।
सारग प्रीति करी जु नाद सौं सम्मुख वान सह्यौ।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० १३७६, ३२८८।३६०६

२ "हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन क्रम वचन नदनदन उर यह दृढ करि पकरी।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड,

३ "अमर नारि अस्तुति करैं भारी।
एक निमिख व्रजवासिनि कौ सुख नहिं तिहुँ लोक विचारी।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ८११, १६०५।२२२३

नारी-आदर्श (लौकिक)

गोपी-भाव से कुलकानि मिटा कर आर्य-पथ की अवहेलना करने वाले उच्छृंखल प्रेम को विशेष नारी के लिए श्रेयस्कर बताते हुए इन कृष्ण-भक्तो ने काव्य के मध्य सामान्य अथवा लौकिक नारी के लिए आदर्श-विधान किया है। इस ससार में जन्म लेकर कुलमर्यादा और लोकधर्मपालन ही श्रेयस्कर है। युग की परम्परा के अनुसार कृष्ण-भक्तो ने भी नारी की चरमगति पति ही को बताया। उनके लिए पातिव्रत धर्म ही चारो पदार्थों का आवाहक है[1]। भारतीय परम्परा का ही अनुमोदन कर यह कवि कहते हैं कि किसी भी अवस्था में पतित्याग करना नारी का धर्म नही है। उस नारी को धिक्कार है जो अपने पति का परित्याग करे, किन्तु साथ ही वह पति भी भर्त्सना का पात्र है जो पत्नी का त्याग करे। पति का भी कर्तव्य है कि वह पत्नी का सम्यक् रूप से प्रतिपालन करें, इसके विनिमय में नारी को एकाग्रता और एकनिष्ठा से उसकी सेवा और उपासना करना वाछित है[2]। नारी के लिए इस ससार-सागर के सतरण का सुगम उपाय पति सेवा ही है। तुलसीदास के समान सूरदास भी रोगी, वृद्ध, मूर्ख, एवम् अभागे पति को ही परमेश्वर मानने को ही मुक्ति का साधन मानते हैं[3]। वास्तव में अपने पति को त्याग कर अन्य से प्रीति करने वाली नारी जीवन-पर्यन्त लोकापवाद अपजस और

"झूठी बात कहा मैं जानौ।
जो मोको जैसेहि भजै री, ताको तैसेहि मानौ।
तुम तप कियौ मोहि को मन दै मैं हौ अन्तरजामी।
जोगी को जोगी ह्वै दरसो कामी को ह्वै कामी।
हमको तुम झूठे करि जानति, तौ काहे तप कीन्हो।"

सूर—सूरदास प्रथम खण्ड, पृ० ७६६, १५६३।२१८१

१ "नारी पतिव्रत मानै जो कोई, चारि पदारथ पावै सोई।"

सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ५३६, ८००।१४१८

२. "यह युवतिन को धर्म न होई।
धिक सो नारि पुरुष जो त्यागै, धिक सो पति जो त्यागै सोई।
पति को धर्म यही प्रतिपालै, युवती सेवा को धर्म।"

सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६११, १०१५।१६३३

३ "कपट तजि पति पूजा करौ, कहा तुम जिय गुनौ।
कंत मानहु भव तरोगी, और नहीं उपाइ।
ताहि तजि क्यो विपिन आइ. कहा पायौ आइ।
विरध अरु विनु भागहू को पतित जो पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ।"

सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६११, १०१६।१६३४

मृत्यु-उपरान्त घोर नरक की भागिनी होती है[1]। इस प्रकार सामान्य नारी के लिए कृष्ण-भक्त-कवि मर्यादा-पालन, पतिव्रत धर्म ही सर्वश्रेष्ठ और श्रेयस्कर बताते हैं। सामान्य नारी के लिए जो अवगुण हैं विशेष के लिए वही गुण।

कृष्ण-काव्यकारो के अनुसार नारी के दो रूप हैं, सामान्य और विशेष। सामान्य नारी के लिए समाज की मान्यताओ का पालन अनिवार्य है। अखण्ड पातिव्रत ही उसकी मुक्ति का साधन है। इस सामान्य रूप में नारी काम-वासना की मूल मानी जाकर भर्त्सना, और तिरस्कार की पात्र रही है। इन कृष्ण काव्य-कारो का नारी-निन्दा का स्वर यदि सन्तो से अधिक नही तो समान उग्र तो है ही। कामवासना की मूल प्रेरणा के अतिरिक्त इन भक्तो ने नारी को विश्वास के अयोग्य तथा नृशस भी बताया है। विशेष नारी परमब्रह्म कृष्ण के साथ गोलोक में नित्य रास में मग्न रहती है। उनकी रागानुगा भक्ति के सिद्धान्तो के अनुसार अपने विशेष रूप मे (भक्त रूप) में नारी का सामाजिक बन्धनो एवम् मर्यादाओ को ठुकराना श्रेयस्कर है। पति, पिता, आदि लौकिक सम्बन्धो की सार्थकता उसके लिए छोडी हुई केंचुल के समान है। इन कवियो का आलोच्य-जीवन सामन्ती सभ्यता की कृत्रिमताओ से परे ग्राम का स्वच्छन्द जीवन है, जहाँ नारी अन्त पुर की वन्दिनी न होकर स्वच्छन्द विहगिनी है। उसे पर्दा अथवा अवगुण्ठन की अपेक्षा नही है। सामान्यत कृष्ण-भक्तो ने नारी का, प्रेयसी-पत्नी आदि विविध रूपों में जो चित्रण किया है, वह सरल शुभ्र, और स्वाभाविक है। यद्यपि कृष्ण के लोकरजक रसेश्वर स्वरूप को लेकर काव्य रचना करने वाले कवियो से जीवन के सामाजिक पक्ष में आदर्श-विधान की आशा तथा अपेक्षा नही की जा सकती, पर इन कवियो ने पति एवम् पत्नी दोनो को अपने कर्तव्यों के समुचित पालन का निर्देश दिया। इनके काव्य ने नारी के धार्मिक तथा आर्थिक अधिकारो के विषय पर कोई प्रकाश नही पडता है। परन्तु भक्ति के क्षेत्र में पुरुष और नारी का भेद-भाव इन्हे मान्य नही हैं। इनके अनुसार शुद्ध-हृदय, तथा भक्ति भाव से जो कोई हरि की उपासना करता है, वह नर अथवा नारी अभय पद का अधिकारी है।

---

१ "तजि भरतार और को भजिए, सो कुलीन नहि होइ।
मरै नरक, जीवत इस जग में भला कहें नहि कोइ॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड. पृ० ६११, १०।७१।६३५

: ६ :

रीति-काव्य में नारी

रीति-शब्द का हिन्दी में प्रयोग संस्कृत से पृथक अर्थ में होता है। यहाँ जिस पुस्तक में रचना सम्बन्धी नियमों का विधान किया गया हो, तथा जो काव्य इन नियमों पर परिचालित होकर, अभ्यन्तर से बाह्य, भाव-पक्ष से कला-पक्ष पर अधिक बल देता हो, रीतिकाव्य के नाम से अभिहित होता है। आलोच्य-काल के उत्तरार्द्ध में रीतिबद्ध और रीतिमुक्त रचनाओं की अनवरत परम्परा चल पड़ी। इस काल में यद्यपि अन्य विषयों पर भी काव्य रचना होती रही, किन्तु प्राधान्य शृंगार-रस-विषयक कविताओं का ही रहा। इस समय के समाज में मुगलशासकों के शासन-काल में शृंगार का मदमत्त प्रवाह बह रहा था। काम-कादम्ब एवम् कामिनी की एकनिष्ठ उपासना हो रही थी। कृष्ण-काव्य के कृष्ण और राधा का शृंगारमय रूप भक्ति का अचल त्याग, आध्यात्मिकता को बहिष्कृत कर, नग्न शृंगार का रूप ले रहा था। कृष्ण और राधा ब्रह्म और उनकी शक्ति के प्रतीक होते हुए भी सामान्य नायक नायिका मात्र रह गए थे। वैभव और विलास के इस वातावरण में, राज्याश्रय में रहने वाले कवियों ने शृंगार रस के अंग-उपांगों पर काव्य रचना की और हिन्दी साहित्य के नायिकाभेदोपकथन को पुष्ट किया।

रीति-काव्य की पृष्ठभूमि

मानव की आदि प्रवृत्तियां शृंगार और प्रेम ही रीतिकाव्य का आधार हैं। साहित्य में सदा ही शृंगार रस का अस्तित्व रहा है। संस्कृत के महाकाव्यों में भी शृंगार का मदिर विलास उपलब्ध है। हिन्दी साहित्य को शृंगार एवम् रीति-साहित्य की प्रेरणा संस्कृत से ही मिली। संस्कृत साहित्य में प्रथमत. दो धाराएँ थीं। एक आध्यात्मिकता को प्रधानता देती थी, दूसरी कर्मकाण्ड पर अधिक बल देती थी। विक्रम संवत् के प्रारम्भ काल में आभीरों के सम्पर्क से ऐहिकता-परक साहित्य की रचना होने लगी। प्राकृत में दैनिक जीवन के हास-रस-विलास से सम्बन्धित सतसई की रचना हुई। गोवर्धनाचार्य और अमरुक ने इसी के अनुकरण पर आर्या सप्तशती और अमरुक शतक में नागरिक स्त्रियों की शृंगारिक चेष्टाओं एवम् मान-वपुओं की रसमयी उक्तियों का वर्णन किया है। संस्कृत के भक्ति-साहित्य में शृंगार और भक्ति की परम्परा समानान्तर चल रही थी। स्तोत्रादि तथा वन्दना के पदों में शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण का शृंगार एवम् नख-शिख वर्णन भी हो रहा था। कामशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना पहले ही हो चुकी थी।

उसकी भोग-प्रधान परम्परा ने नख-शिख वर्णन तथा नायिकाभेद-निरूपण की प्रणाली को एक व्यवस्थित रूप दिया। शृंगारिकता की इस धारा को मुस्लिम सस्कृति के सम्पर्क से भी बल मिला। पुष्टि-मार्ग के सिद्धातों के अनुसार धर्म के क्षेत्र में लौकिकता एवम् वैभव का समावेश हो गया था। पुष्टि शब्द का इच्छानुकूल अर्थ लगाकर धार्मिक सम्प्रदायो में भक्ति विकार-ग्रस्त हो गयी थी। भक्तिकाल में ही कृष्ण और राधा के शृगार में दिव्यता और अलौकिकता के स्थान पर विलासिता का प्राधान्य हो गया था। कालान्तर में वैष्णव भक्तो की इस रागानुगा भक्ति एवम् प्रेम-लीला का पर्यवसान रीतिकाव्य के उन्मुक्त शृगार में हो गया। शृगार एवम् विलास के चटकीले चित्र अकित करने वाले रीति-काव्यकारो ने कृष्ण-राधा-भक्ति को ही अपना आदर्श माना। नायक नायिकाओ की विलास-वासनामयी क्रीडा पर कृष्ण एवम् राधा की केलि का आरोप किया गया।

रीति-काव्य में दो प्रकार के कवियो की कृतिया उपलब्ध हैं—परम्परा में वद्ध रीति-निर्वाह करने वाले रीतिवद्ध कवि और रीतिमुक्त कवि। यह रीतिमुक्त कवि प्रेम की विविध आभ्यान्तरिक दशाओ के अभिव्यजक, विरह-मिलन की स्थितियो के सफल चित्रकार एवम् भाव-मर्मज्ञ कवि हैं। इन रीतिमुक्त कवियो का प्रेम उत्सर्ग और त्याग की भित्ति पर आधारित है। भाषा और भाव पर अधिकार रखने वाले यह रस-सिद्ध-कवीश्वर केवल नरपतियो के चाटुकार मात्र नही हैं। रीतिबद्ध कवि आचार्य कहलाने की स्पृहा करते थे। उनका उद्देश्य काव्य-रचना के साथ पाण्डित्य-प्रदर्शन का भी था, अत वह कलापक्ष की ओर अधिक सतर्क रहे। इनका प्रेम भी परम्परा मे बद्ध रहा और वे केवल उसके वाह्य रूप की ही अभिव्यजना करने में समर्थ हो सके[1]। प्रेम और शृगार वर्णन में भी अलकार वर्णन, रस-निरूपण, नायिका-भेद निर्देश करने का लोभ सवरण न कर सके। मुगल साम्राज्य के शासनकाल में समाज में भी वैभव और विलास का एकाधिपत्य था। जैसा कि द्वितीय अध्याय में बताया जा चुका है कि सामन्तवाद की जर्जर आधार-भूमि पर स्थित समाज का कोई आदर्श न था। राजा और सामन्त, धनिक और निर्धन विलास की मदमत्त छाया में लीन थे। इन राज्याश्रित कवियो के प्रभु विलास और वैभव की अतिरजित छाया में मधुबाला के करों से मधुपान करते। ऐसी परिस्थिति में शृगार रस प्रधान काव्य की रचना अत्यन्त स्वाभाविक थी।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण

विलास का असतुलित रूप रीति-काव्य के जीवन-दर्शन को धूमाच्छन्न किए है। कर्मण्यता और सघर्ष के अभाव में उसमें रूढिवादिता और सकीर्णता है।

---

१. "सहेट की लुका छिपी की लीलाएँ, गुप्ता की गोपन विधियां, विदग्धा के विदग्धालाप, अभिसारिका की साज-सज्जा, छल-कपट से भरे खिलवाड में ही मनोरजन की सामग्री विशेष खोजी है।"

विश्वनाथ प्रसाद—घनआनन्द की भूमिका पृ० ३१, स० २००६ काशी

विलासप्रधान सामन्ती-परम्परा में पनपे हुए जीवनदर्शन में व्यापकता न होकर विलासिता, रसिकता एवम् कामुकता का दृष्टिबिन्दु प्रधान है। विषमताओं के कठोर यथार्थ से निष्कृति पाकर कवियों ने नारी के स्निग्ध अंचल की छाया में दुःख एवम् निराशा का परिहार किया, अतः उनके काव्य में विलास की उत्कट तीक्ष्ण गन्ध, अतृप्त पिपासा, दुर्दम्य वासना विद्यमान है[1]। भावों की नवीनता, अभिव्यक्ति की मौलिकता, आदर्श की प्रांजलता तथा जीवन-शक्ति का अभाव है। इस इस्लामी सामन्ती आदर्शों पर स्थित समाज में व्यक्ति की कोई सत्ता न थी, उसकी इच्छाओं तथा अभिलाषाओं की अभिव्यंजना का कोई प्रश्न ही न था। अतः रीति-काव्य विलासरत-वर्ग के भावों की प्रतिध्वनि है। समाज में अभ्यन्तर की अपेक्षा बाह्य को प्रधानता दी जाती थी। काव्य में भी भौतिक हित और सुखोपभोग ही जीवन का उद्देश्य माना गया। इस जीवन की यथार्थता से पलायन करने वाले कवियों का जीवन वैभवपूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ था। एक एक दोहे पर सहस्रों मुद्राएं पाने वाले इन कवियों का अभाव और न्यूनता, दैन्य एवम् वेदना से कोई परिचय ही न था। जीवन के स्थायी आदर्शों के अभाव में विलास एवम् ललित-कलाओं के रस में अपने को लीन कर देना ही उनका साध्य रहा[2]।

विलास एवम् वासना-प्रधान काव्य रचना करने पर भी इन शृंगारी कवियों को राधाकृष्ण से असीम अनुराग रहा। बिहारी तीर्थाटन आदि बाह्याचारों को निरर्थक बताकर राधाकृष्ण की देह द्युति से अनुराग करने का निर्देश देते हैं[3]। मतिराम जैसे शृंगारी कवि नायिकाओं की रसमयी क्रीडा, रति-विलास में राधाकृष्ण और कृष्ण-गोपी-प्रेम ही देखते हैं। राधाकृष्ण का रसपूर्ण स्नेह जिसको सुनकर न प्रतीत होता हो, उसके नयनों में वह सहस्रों मुट्ठी धूल डालने को

---

१ "पियत रहत पियनैन यह तेरी मृदु मुस्कानि।
तऊ न होत मयस्मुखी तनक प्यास की हानि॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली कृष्णबिहारी—पृ० ४०४, सं० १९९४
द्वि० सं० लखनऊ

२. "तन्त्री-नाद कवित्त रस सरस राग रतिरंग।
अनबूडे बूडे तरे जे बूडे सब अंग॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर : रत्नाकर सम्पादित पृ० ४४, दो० ६५,
१९८३ वि० लखनऊ

३ "तजि तीरथ हरि राधिका तन-द्युति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रजकेलि निकुंज मग पग पग होत प्रयागु॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, (रत्नाकर) पृ० ८६, दो० २०१

प्रस्तुत है[1]। रीति-काव्य की कृष्ण-भक्ति, युग की विलास-प्रधान मनोवृत्ति के प्रभाव से सामान्य शृंगार में परिणत हो गई। राजाश्रय में रहनेवाले इन कवियो में यदि किसी की आकाक्षा सरल सात्विक जीवन व्यतीत करने की रही[2], तो भी अपने आश्रयदाता के प्रसादन के लिए उनकी भोग-प्रधान प्रवृत्ति को तुष्ट करने के लिए अपनी भावनाओ को सयमित कर उन्हें विलास एवम् शृगार की फुलभडी छुटानी ही पडी। ऐसी प्रवृति तो अपवाद ही है, वैसे सामान्यत सभी कवि विलास एवम् वैभव की स्वर्णिम आभा, शृगार-पूर्ण चित्रो के अकन के अनुरागी है। कवि की बहुदर्शिनी प्रतिभा, चित्रात्मक कला, सूक्ष्म निरूपण-कर्त्री कल्पना केलि-भवन, नारी-नखशिख चित्रण में ही केन्द्रित हो गई। इन कवियो के अस्वस्थ जीवन-दर्शन, उपभोग-प्रधान दृष्टिविन्दु के कारण आलोच्य रीति-काव्य उदात्त भावनाओ का परिचायक, मानव-जीवन की विभिन्न दशाओ का अभिव्यजक नही हो सका। इन कवियो के अनुसार जीवन कर्तव्य की उच्चभूमि, सत्कर्मों की रगस्थली, उत्सर्ग का प्रारम्भ न होकर विलास का नन्दन-कानन, कल्पना का मधुमय विहान है। उनके विश्व में वास्तविक दुख, वेदना और पीडा को स्थान नही है। सुख-दुख हर्ष-विषाद, वेदना-आह्लाद कल्पनात्मक एवम् अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। धन के द्वारा सुलभ सौख्य और सुविधाएँ, कृत्रिम जीवन, पुरुषार्थ-विहीन आनन्द उनका काम्य है। तत्कालीन समाज में नैतिकता का कोई महत्व न था। अत उस वाधावन्ध विहीन समाज में पोषित कवियो के लिए भी नैतिक मान उपेक्षणीय हैं। वासना के दुर्दान्त विलास, उपभोग की उत्कट लालसा की पूर्ति के लिए राधाकृष्ण के प्रेम की आड है, साथ ही चारित्रिक पतन को कवि यौवन काल की भूल मानकर क्षम्य और महत्त्वहीन मानता है[3]। सामान्यत जीवन के प्रति इन कवियो का दृष्टिकोण रसिकता का है। सुख और विलास का उपभोग तथा रमणी के साथ केलि ही उनका साध्य और काम्य है[4]।

---

१ "राधा मोहन लाल को जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस ताकी आँखिनि खेह॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली सतसई · पृ० ४४३, द्वि० स०

२ "पट पाँखै भखु काँकरै, सपर परेई सग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं एकै तुँही विहग॥"
विहारी—विहारी रत्नाकर रत्नाकर : पृ० २५६, दो० ६१६

३ "इक भीजैं चहलैं परैं, वूडै वहैं हजार।
किते न अवगुन जग करै, वै-नै चढ़ती वार॥"
विहारी—विहारी रत्नाकर, पृ० १९१, दो० ८६१, १९८३ प्र० स० लखनऊ

४ "तिय-तिथि-तरुन किशोर-वय पुन्यकाल सम दोनु।
काहू पुन्यनु पाइयतु वैस-सन्धि-संक्रोनु॥"
विहारी—विहारी रत्नाकर, पृ० ११५, दो० २७४

रीति-कवि और नारी

रीति-युग शृंगार एवम् वैभव के निर्बाध विलास का युग था। युग की प्रमुख प्रवृत्ति शृंगार और विलासिता की थी। वैभव के योग, उससे उपलब्ध साधनों से भोगैषणा, विलास कामना को प्रोत्साहन मिला। इस शृंगारिकता का केन्द्र नारी थी, अतः काव्य में भी नारी-रूप की प्रधानता है। इन सभी कवियों ने अपने काव्य में महाशक्ति राधा की ही वन्दना की है। बिहारी, कृष्ण को प्रमुदित करने वाली राधा नागरी से ही अपनी भौतिक विपत्तियों के निवारण की विनय करते हैं[1]। देव राधाकृष्ण के जगतवंद्य युग-चरणों की वन्दना करते हुए, उनके रति-शृंगार के मूर्तिमान सच्चिदानन्द स्वरूप की प्रार्थना करते हैं[2]। मतिराम कृष्ण के हृदय-उदधि को उल्लसित करने वाले राधा के मुख-चन्द्र से ही अपने अज्ञान-तम के निवारण की आशा करते हैं[3]। इन कवियों ने नारी को आलंबन मानकर रसराज शृंगार के सभी अंग-उपांगों पर काव्य प्रणयन किया है। नारी के भुवन-विमोहक सौन्दर्य का अंकन, उसके मनोविज्ञान का निरूपण, शृंगार-सज्जा का विस्तृत वर्णन ही कवि का कार्य रहा है। इन रीति-कवियों के लिए नारी वासना का उपकरण होने के कारण त्याज्य न होकर अत्यावश्यक है। अग्निशिखा के समान ज्वलन्त रूप वाली नारी के आलिंगन से उनके उर को गुलाब-जल सी शीतलता मिलती है[4]। हास्योज्वल बाला के मुख से उन्हें फूल बरसते प्रतीत होते हैं[5]। विश्व की मधुरिमा की केन्द्र नारी जब तक बोलती नहीं है, तभी तक ऊख, अमृत, शहद, मधुर प्रतीत होता है, पुनः उसकी वाणी के मधुर रस के समक्ष सब रसहीन हो

---

१ "मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होइ।।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १, दो० १

२ "राधाकृष्ण किशोर जुग पग बंदौ जगवंद्य।
मूरति रति-शृंगार की शुद्ध सच्चिदानन्द।।"
देव—भावविलास, सं० १९९३ प्र० सं० काशी, पृ० १

३ "मो मन तम तोमहि हरौ, राधा को मुखचन्द।
बढ़ै जाहि लखि सिन्धु लौं, नन्द नन्दन आनन्द।।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली (कृष्णबिहारी) द्वि० सं० लखनऊ

४ "ज्यौं-ज्यौं पावक लपट सी, तिय हिय सौं लपटाति।
त्यौं त्यौं छुही गुलाब सौं छतिया अति सियराति।।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १४७, ३५४ दो०

५ "हँसत बाल के बदन में यौं छवि कछू अतूल।
फूली चम्पक बेलि तें झरत चमेली-फूल।।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४०३, द्वि० सं० लखनऊ

जाते हैं[1]। उसकी प्रेयसी के तीक्ष्ण कटाक्ष हृदय में गड जाते हैं[2]। उसके शोभा-पुज गौर आनन पर विकसित मृदु मुसकान रस का प्रवाह बहा देती है[3]। नारी इन कवियो के लिए प्रलोभन, प्रेम और उपभोग की वस्तु है। उसके अग-प्रत्यग के सौन्दर्य ने कवि की कल्पना और भावना को मोहाभिभूत कर लिया है। रीति-कवि नारी के भावगत सौन्दर्य, जीवन के विविध पक्षो में उसके नारीत्व की मनोहर व्यजना नही दिखा सके, प्रत्युत् नारी का सौंदर्य, उसका आकर्षण उनके लिए मोह, आनद और रसिकता का विषय रहा। नारी के निर्बन्ध केश कवि को ससार बन्धनो से विमुक्त करते हैं और नील छविमान केशो की वेणी के साथ ही उसका मन बध जाता है[4]। सुन्दर-पुष्प-सुगन्ध से परिपूर्ण बधुजीव पुष्प के सहोदर नारी के अधर प्रियतम के प्राणो के बधन हैं[5]।

नारी ही आलोच्य रीतिकाव्य में कवि की समस्त भावनाओ की केन्द्र है। परन्तु इन रीतिकवियो, केशव (१५५५ ई०) १६१२ स०, बिहारी (१६०३ ई०) १६६० स०, देव (१६७३ ई०) १७३० स०, घनानद (१७०७ ई०) १७६४ स०, सेनापति (१५८६ ई०) १६४६ स०, मतिराम (१६१७ ई०) १६७४ स०, आदि को नारी का केवल कामिनी रूप ही काम्य था। नारी के रूप-चित्रण में उनकी सूक्ष्मदर्शिनी कल्पना, वर्णनात्मक प्रतिभा और रसपूर्ण दृष्टि उसके शरीर की मासलता और कमनीयता पर ही फिसल गई। उसके अभ्यन्तर तक पहुचने में में उन्हें अधिक सफलता नही मिली। 'सतरौही भौंहें', 'अलसौही चितवन', 'तन की खरी निकाई' ही उसके वर्णन का विषय बन सकी। नारी-जीवन के अन्य महत्व-पूर्ण, सत् कल्याणपूर्ण पक्षो का परित्याग करवा सना की भूमि में ही उसकी रति-

---

१ "छिनकु छवीले लाल वह, नहि जौं लगि वतराति।
ऊख, महूष, पियूष की तौ लगि भूख न जाति॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २०७, दो० ५०४

२ "सेनापति प्यारी तेरे तम से तरलतारे।
तिरछे कटाछ गडि छाती मैं रहत हैं।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० ३३, क० ४

३ "छवि को सदनु गोरो वदन रुचिर भाल
रस निचुरत मीठी मृदु मुस्क्यानि तें।"
घनानन्द—घनानन्द, विश्वनाथप्रसाद पृ० ५८५, स० २००६ बनारस

४. "छुटें छुटावत जगत तैं सटकारे सुकुमार।
मनु बाधत वेनी बधे नील छवीले बार॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर पृ० २३६, दो० ५०३

५ "सुधा मधुर तेरो अधर सुंदर सुमन सुगध।
पीव जीव को बध यह बध-जीव को बन्ध॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली पृ० १०७

प्रगल्भता दिखाने, अभिसार तथा प्रेमक्रीडा-कथन, विरहवेदना से कमल के पत्तो को पापड बना देने के ऊहात्मक चित्रण तक ही यह कवि सीमित रहे। इस वर्णन की पृष्ठभूमि पर नारी कुछ अपवादो को छोड कर—गौरवशालिनी पत्नी और सहधर्मिणी के रूप में न आकर नायिका की क्षुद्र सीमा में बध जाती है। कर्तव्य की उच्चभूमि में प्रवेश उसके लिए वर्जित-सा है। जीवन और ससार की गम्भीर समस्याओं का उसके लिए कोई महत्व नहीं है। शृगार रसमयी क्रीडा करना, नित नूतन प्रसाधन कर पुरुष को विमोहित करना ही उसका एकमात्र कर्तव्य है। पुरुष के प्रसादन हेतु कार्य करती हुई नारी में पतिव्रता की सात्विकता न होकर विलासिनी का निर्वसन विलास और निर्लज्ज विहार स्पष्ट है[1]। यह नारी शक्तिमती दुर्गा, जौहर की ज्वाला में अग्नि-पुष्प बन जाने वाली वीर नारी, पतिसग वन में भी सुखानुभव करने वाली पतिव्रता नहीं है, प्रत्युत् सुकुमारी कामिनी है।

सामन्ती-व्यवस्था में सुकुमारता और कमनीयता ही उसका गुण माना गया है। दैन्य एवम् विषाद की छाया से परे रहने वाली नारी शोभा का भार सभालने में ही असमर्थ है, भूषण तो उसे भार ही है[2]। गुलाब के पुष्पों द्वारा सज्जित शैया पर भी उसे खरोच लगने की शका सखियो को रहती है। उसका समस्त लावण्य एवम् सौंदर्य पुरुष को वशीभूत करने का साधन है। इन कवियो के नारी-चित्रण में गम्भीरता तथा गृहिणीत्व की गरिमा नहीं है प्रत्युत् क्रीडा और आमोद की भावना है। नारी का दुख असीम हो उठता है, किन्तु सहेट के नष्ट हो जाने पर, कपास के वृक्ष उखाडते समय उसे वृद्धावस्था के सूचक श्वेत केशों के बीनने की पीडा होती है[3]। उसके प्राणोत्सर्ग की वेला प्रियतम के परदेशगमन समय आती है। नारीत्व की मर्यादा, गरिमा को ठुकरा कर नैतिकता के बन्धनों को विच्छिन्न कर वह नयन कटाक्षो से नागर पुरुषों का आखेट करने में ही महत्ता समझती है। वास्तव में रीति-काव्य में पुरुषो का ही कार्य-क्षेत्र विलास की क्षुद्र सीमा में बद्ध हो गया।

---

१ "भौंह उचै आँचर उलटि मौरि मुख मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सो जोरि॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १०१, दो० २४२

२ "भूषन भार सभारिहैं क्यों यहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं, सोभा ही के भार॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १३५, दो० ३२२

३ "सूखी सुना सटे न की सूखी ऊगन पेति।
अब फूली फूली फिरै फूली अरहर देखि।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४५० दो० ६७, द्वि० स०

"फिरि फिरि बिलखी ह्वै लखति फिरि फिरि लेत उसासु।
साईं! सिर कच सेत लौं बीत्यौ चुनति कपासु॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ६७, दो० १२८

'चोवा चन्दन' और घनसार से सुरभित वातावरण में कृत्रिम साधनो द्वारा ऋतु-परिवर्तन पर विजय पा लेने वाले पुरुष का ही कोई महत् उद्देश्य नही दृष्टिगत होता है। पुन नारी के व्यक्तित्व का निर्माण इसी विलास-पकिल वातावरण में होता है, जहा उसे शिक्षा मिलती है पति के आज्ञापालन की, पुरुष की इच्छा के समक्ष अपना अस्तित्व मिटा देने की। अत मदिरा की मादकता में लीन पुरुष के प्रसादन के लिए उसका नैतिक-बाधा-बन्ध हीन रूप ही स्वाभाविक है। आचार्यत्व की स्पृहा करने वाले, अलकार-चमत्कार दिखलाने में पटु इन कवियो के श्लेष वर्णन में नारी भी क्रीडा और कौतुक की सामग्री बन गई। श्लेष-वर्णन-पटु कवि सेनापति कभी वर नारी को 'मदन की वारी[1]', 'काम की तलवार', 'शमादान', 'फूलदान', 'रागमाला', महाभारत की सेना' आदि बनाते हैं और कभी नारी को केवल श्लेष-चमत्कार के लिए बाट और काटे में डाल कर, सुवर्ण की मुहर के साथ उपमा देकर उसे परिहासास्पद बना देते हैं[2]।

रीति-काव्य में नायिका-भेद

प्रथमतः नाट्यशास्त्र के आचार्य अपने पात्रो के शील-मर्यादादि के निर्वाह के लिए नायक-नायिकाओ का वर्गीकरण कर उसके भेद-उपभेदो का वर्णन करते थे। रस की प्रतिष्ठा के उपरात शृगार के आलम्बन नायक-नायिका को अधिक महत्व मिला। सर्वप्रथम भरत ने नायिका-भेद का निरूपण किया। उन्होने प्रकृति अनुसार तीन, अवस्थानुसार आठ तथा कर्मानुसार तीन भेद किए। धनजय ने धीरादि भेदो की उद्भावना कर नायिका-भेदोपकथन को पूर्ण किया। हिन्दी में रीतिकाल में शृगार-रस का निरूपण नायिका भेद के ही अतर्गत हुआ। नायिका-भेद में नारी-सौंदर्य, शृगार के उद्दीपन-पक्ष, ऋतु-वर्णन पर कवियो ने ग्रन्थ के ग्रन्थ रच डाले। नारी के समस्त क्रिया-कलाप, उसकी विभिन्न मनोदशाओ, प्रवृत्तियो के चित्रण के लिए नायिकाभेदोपकथन में निर्दिष्ट वर्गों में पाच वर्ग प्रमुख हैं —

(१) जाति अनुसार (चार भेद) —पद्मिनी, चित्रिणी, शखिनी, हस्तिनी
(२) धर्मानुसार (तीन भेद) — स्वकीया, परकीया, सामान्या
(३) दशानुसार —गर्विता, अन्य सभोग दुखिता, मानवती
(४) गुणानुसार —उत्तमा, मध्यमा, अधमा

---

१. "सोभा सब जोवन की निधि है मृदुलता की
राजै नवनारी मानौ मदन की वारी है।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर (उमाशकर शुक्ल) पृ० ५-६
पहली तरग १६४८ तृ० स० प्रयाग

२ "धनी के पधारे बाट कांटेहू में पाउ धरि
यह वर नारी सुवरन की मुहर-सी।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर पृ० ५, कवित्त १४

(५) अवस्थानुसार (दस भेद) —स्वाधीन-पतिका, वासक-सज्जा, उत्कंठिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खंडिता, कलहांतरिता, प्रवत्स्य-प्रेयसी, प्रोषित-पतिका, आगतपतिका।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नायिकाभेद की परम्परा भक्त-कवियों में भी मिलती है। परन्तु भक्तों का शृंगार दिव्य और अलौकिक है, जबकि इन रीतिकवियों का शृंगार लौकिक एवम् ऐहिकतापरक है। इनमें काव्य-शास्त्र और तन्त्रों की परम्परा का भी योग हो गया है। अत. उनमें नारी शृंगार के एक उपकरण के रूप में ही प्रस्तुत हुई। मतिराम के अनुसार नायिका वो वही है जिसके दर्शन-मात्र से हृदय में शृंगार रस का उद्रेक हो। नायिका को सभी कवियों ने सौन्दर्य, सुकुमारता, कमनीयता का केन्द्र माना है। उनके अलस नयनों में विलास की सरसता है। उनके सौन्दर्य की विशेषता तो यही है कि जितना ही उसे समीप से देखे उसकी शोभा विकसित होती जाती प्रतीत हो[1]। स्वकीया नायिका पतिव्रता की परिभाषा में आ जाती है। आपत्ति एवम् सुख, हर्ष-विषाद के अवसर पर वह सम भाव से प्रिय-पति में अनुरक्ति रखती है[2]। युग की प्रवृत्ति तथा विशृंखल नैतिकता के कारण परकीया रूप वर्णन की प्रधानता होने पर भी स्वकीया का उच्चादर्श, इन कवियों के लिए श्लाघ्य है। स्वकीया स्वाधीनपतिका प्रियतम की अनन्य प्रियतमा है। अपने रूप गुण एवम् शील से उसने प्रिय को पूर्णरूपेण वश में कर लिया है। पति अपने हाथों ही उनका पूर्ण शृंगार करता है। वेणी गूंथ, वस्त्राभूषण पहना कर अपने ही करों से उसके भाल पर बिन्दी लगाकर पैरों को आलक्त-रंजित करता है। कहीं नायिका प्रिय द्वारा शृंगार सज्जा में सज्जित होकर लज्जामग्न हो जाती है कि गृह-परिजन क्या कहेंगे ? परन्तु प्रियतम का अनुराग पाकर उसमें गौरव एवम् अभिमान की भावना आ जाती है। प्रिय के हस्त से लगाए हुए, सात्विक के कारण तिरछे हो गए तिलक को दिखाती नायिका इतराती हुई सी घूमती है[3]। सामान्यत स्वकीया नायिका पति की इच्छा को ही प्रधान मानकर

---

१. "कुन्दन को रंग फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आंखिन में अलसानि चितौन में मंजु विलासन की सरसाई॥"

× × ×

"ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै निकाई।"

मतिराम— मतिराम ग्रन्थावली, पृ० २७४, द्वि० सं०

२ "सम्पति विपति जो मरतहूँ सदा एक अनुहारि।
ताहि सुकीया जानिए मन क्रम वच विचारि॥"

केशव—केशव ग्रन्थावली, विश्वनाथप्रसाद, पृ० ८, १९५४ इलाहाबाद

३ 'आपने हाथ सों देत महावर, आप ही बार संवारत नीके।
आपुन ही पहिरावत आनिकै हार संवारि कै मौलसिरी के॥

उसके हित के लिए ही कार्य करती है। स्वकीया नायिका का यह निर्मल उज्ज्वल रूप रीति-काल के वातावरण में भी वासना एवम् विलास की गध से परे पावन और महान है। उसमें पति के प्रति उत्कट प्रेम और एकनिष्ठ भक्ति है[1]। वह स्वय वन्ध्या कहलाने के अगौरव को स्वीकार कर अपने पति की मर्यादा की रक्षा करती है[2]। उसकी स्वय की कोई इच्छा एवम् आकाक्षा नही है, पति पर उसे अविचल प्रतीति है कि वह जो करेगा उचित होगा[3]। आगतपतिका के रूप में वह प्रिय आगमन का शुभ सवाद सुनकर करबद्ध सुरो की वन्दना करती है, गुरुजनो के चरणस्पर्श करती है, अपनी मुक्तामाला को तोडकर शुभ शकुन में मोतियो की चौक पूरती है, तथा प्रियतम पर न्यौछावर करने के लिए भूषण उतार-उतार कर रख देती है। प्रियागमन से नायिका का मुखकमल विकसित हो जाता है[4]। सेनापति की स्वकीया में भारतीय आदर्श के प्रति मोह अधिक है।

हौं सखी लाजन जाति मरी, मतिराम सुभाव कह्‌ कहो पी के।
लोग मिले, घर घैरु करैं, अबहीं ते चेरे भए दुलही के।।"

मतिराम—मतिराम गन्थावली, पृ० ३०९

"कियौ जु चिबुक उठाइ कै, कंपित कर भरतार।
टेढ़ीयै टेढी फिरति टेढैं तिलक लिलार।।"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २१४ दो० ५१८

१ "जानति सौति अनीति है, जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानत लाज हैं, प्रीतम जानति प्रीति।।"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ५०५

२ "गुरुजन दूजे व्याह को, प्रतिदिन कहत रिसाइ।
पति की पति राखै वहू आप वांझ कहाइ।।"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४४४

३ "तेरे पगन की धूरि मेरे प्रानन की भूरि,
कीजै लाल सोई, नीको जोई जिय जानिए।"

सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० ३९ क० २०

४ "धाई खोरि खोरि से वधाई प्रिय आगमन की,
सुनि कोरि कोरि सुख भावनि भरति है।
मोरि मोरि वदन निहारत विहारभूमि,
घोरि घोरि आनन्द भरी सी उघरति है।"

देव—शब्द रसायन जानकीनाथ सिंह पृ० स० ४२, सं० प्र० स० २०००

"पिय आगम सरदागमन विमल बाल-मुख इदु।
अग अमल पानिप भयो, फूले दृग अरविन्दु।।"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ३१९

प्रिय केशो का शृंगार कर, भाल पर मृगमद का तिलक लगाकर, अधरों को ताम्बूलरंजित कर चरणों में महावर देने को चरण पकड़ता है। पत्नी पति के करों का चुम्बन कर उन्हें आदर भाव से आँखों में लगाकर पति द्वारा पत्नी के चरण छूना अनुचित बताती है[1]।

स्वकीया के आदर्श की प्राजलता एवम् महानता को स्वीकार करते हुए भी रीति-कवियों ने परकीया के प्रचण्ड वेगवान प्रेम का वर्णन अधिक किया है। उस युग की शिथिल नैतिकता में परकीया-प्रेम के अनियन्त्रित प्रवाह को कृष्ण-गोपी प्रेम की आड़ में धार्मिक मान्यता मिली थी[2]। प्राय सभी कवियों ने नारी के इसी लोक-लाज, कुल-गौरव को तिलाजलि देकर प्रेम के प्रागण में क्रीड़ा करने वाले रूप का चित्रण किया है। इस परकीया प्रेम में दूती का बहुत महत्व है[3]। इस प्रकार सुस्पष्ट है कि इस काल में कवियों का मुख्य वर्ण्य विषय प्रेम ही है। उन्होंने नायक नायिका को राधाकृष्ण कहा और राधा-कृष्ण, कृष्ण-गोपी की प्रणयलीला का चित्रण किया है पर इनके राधाकृष्ण भक्ति के नहीं शृंगार और प्रेम के देवता हैं। अत नारी के प्रेयसी रूप को ही प्रधानता है। प्रेम के क्षेत्र में रीति-काव्य की नायिका सकोच-रहित और ढीठ है। उसमें नारी सुलभ लज्जा और मर्यादा का अभाव है। उप-पति और उप-पत्नी रीति-काव्य में अधिक उपलब्ध हैं। मर्यादा तथा नैतिकताहीन समाज में पति की उपस्थिति में भी नारी उप-पति की ओर स्नेहपूर्वक देखती है। कभी वह अपने घर की टट्टी चीर कर बाहर खड़े नायक की ओर निर्निमेष नयनों से

---

१ "ह्वैके रस बस दीबैं कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं,
कही प्रानपति यह अनुचित है ॥"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, (उमाशंकर शुक्ल) पृ० ४३ क० ३६

२ "अपभ्रंश की पुरानी रचनाओं और देश-गीतों में स्वकीया प्रेम के बड़े मधुर एवम् मर्मस्पर्शी सद्वृत्त दिखाई देते हैं, पर हिंदी में शृंगार की काव्य-धारा भक्ति धारा से फूटी, सीधे लोकधारा से उसका सम्बन्ध नहीं रहा, अत स्वकीया की प्रीति के रस-स्निग्ध स्थलों का सन्निवेश उसमें रह न सका, अलौकिक दृष्टि से भक्ति के भीतर जो दाम्पत्य प्रेम लाया गया वह सर्वत्र स्वकीया का प्रेम न रहा, क्योंकि उपास्य और उपासक या आराधक और आराध्य के रूप की लम्बी-चौड़ी भूमि परकीया-प्रेम के परिसार में दिखाई पड़ी।"
विश्वनाथप्रसाद मिश्र—घन-आनन्द : भूमिका पृ० २५

३ "पानगत दूती बिना जुरै न और उपाइ।
फिरि ताकै टारे बनै पाकै प्रेम लदाइ ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर पृ० १६३, दो० ३६६

देखती रहती है। उस परकीया नायिका के स्नेह के चिकने घडे पर सखियो के उपदेश का जल ठहरता नही है। प्रेम की उद्दामता, प्रचण्डता के समक्ष दुर्जनो की निन्दा, गुरुजनो के कटु शब्दों की चिन्ता नहीं है। वह अपने प्रेमी के लिए इन सबको सहर्ष सहन करती है[१]। यह प्रेम क्रीडा केवल राजप्रासादो तक नही सीमित हैं प्रत्युत जीवन की सामान्य भूमि में भी व्यापक है। गृह-कार्य के लिए अग्नि लेने आई नायिका ढीठ होकर नयन मिलाती है, सस्मित मुख से स्नेह का आभास देकर नायक के हृदय में वासना अग्नि प्रज्वलित कर जाती है[२]। उस वातावरण में नेत्र-सचालन, कटाक्ष छोडने, काम-क्रीडा करने एवम् शृगार करने से नारी को अवकाश ही नही है। नारी कही प्रेमगर्विता नायिका के रूप में प्रस्तुत की गई है, तो कही रूखी चितवन से मान करती चित्रित की गई है। अपने समस्त रूपों में वह पुरुष की लालसा का साधन ही है।

उसके विरह-वर्णन में भी ऊहात्मकता और अतिशयोक्ति अधिक है, मार्मिकता न्यून। बिहारी की विरहिणी की सखियाँ शीत ऋतु में तो किसी प्रकार निर्वाह कर लेती हैं, परन्तु ग्रीष्म में कैसे निर्वाह होगा[३]। विरह से कृश हुई नायिका निश्वास के वेग से ही छ सात हाथ इधर और छ सात हाथ उधर चली जाती है। पथिक मुख से यह सुनकर कि माघ-मास की भयकर शीतपूर्ण रात्रि में भी उस ग्राम में लू चलती रहती है पथिक समझ जाता है कि उसकी स्त्री जीवित है[४]। मतिराम की विरहातुरा नायिका के अश्रुओं से ग्रीष्म ऋतु मे भी खारे पानी की नदी बहती है[५]। निसशय रीति-काव्य में स्वकीया रूप में नारी के सात्विक स्वरूप की व्यजना हुई है, साथ ही प्रेम और शृगार के विविध क्षेत्रो में नारी मनोविज्ञान का चित्रण स्वा-

---

१ "दुरजन वे निंदित रहें, गुरुजन गारी देत।
सहियत बोल कुबोल ए, लाल तिहारे हेत॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४५२ दो० ८२

२ "नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाइ।
आगि लैन आई हिए मेरे गई लगाइ॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४५६, दो० १२८

३ "आडे दै आले वसन जाडे हूँ की राति।
साहसु ककै सनेह-बस सखी सबै ढिग जाति॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ११६, २८३ दो०

४. "सुनत पथिक-मुँहे माह निसि चलति लुवै उहि गाम।
बिनु बूझै बिन ही कहैं जियत बिचारी बाम॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ १२०, दो० २८५

५ "ग्रीष्महूँ रितु मे भरी दुहूँ कूल पैराउ।
खारे जल की बहति है नदी तिहारे गाउँ॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४४८, दोहा ६१

भाविक हुआ है। इन रीति-कवियों ने भी यदा-कदा नारी के कर्तव्यरत रूप का आभास दिया है[1]। परन्तु वह अपने को तत्कालीन समाज की इस मनोवृत्ति से निरपेक्ष न रख सके कि नारी विलास की सामग्री है। उन्होने समाज में नारी की अनैतिक स्थिति उसके अनुचित प्रणय सम्बन्धो पर व्यग भी किया है[2]। इस युग में नारी भोग इच्छा की तृप्ति का साधन तो थी ही, पुरुप अनेक विवाह करता था। सौतो की डाह, पति-विवाह समय नायिका के उल्लास आदि के वर्णन में स्पष्ट है कि रीति-युग मे बहु-विवाह की प्रथा थी[3]। विलास और वैभव प्रधान वातावरण में मदिरा-पान केवल पुरुषो ही में नहीं सीमित था, स्त्रियाँ भी इसका प्रयोग करती थीं[4]। समाज में नैतिकता का आदर्श अमान्य था। नारी कोमलता एमम् सुकुमा-रता की प्रतिमूर्ति मानी जाती थी। परन्तु वस्तुत समाज को अब भी नारी का कर्तव्य-रत, पति-सेवा-मलग्न रूप काम्य था, तभी उन सभी कवियो ने स्वकीया को ही श्रेष्ठ बताया है। यद्यपि सामान्या के रूप में वेश्या का भी वर्णन हुआ है पर उसकी धन-लोलुपता आदि अवगुणो का भी कथन कर दिया गया। इनका स्वकीया का आदर्श नारी के शास्त्रीय आदर्श से समानता रखता है। देव ने स्वकीया में लज्जा, सुशीलता, शील, मृदु भाषण आदि विशेषताओ का आरोपण किया है[5]।

---

१ "टटकी धोई धोवती चटकीली मुख जोति।
लसति रसोंई कौ बगर, जगर-मगर दुति होति॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १६७, दो० ४७७

२. "चित्त पितुमारक जोग गुनि, भयौ भये सुत सोग।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझै जारज जोग॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २३६ दो० ५७५

३ "दुसह सौति सालै, सुहिय गनति न नाह बियाह।
धरे रूप गुन को गरबु फिरै अछेह उछाह॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४८, दो० ६००

"सेत सारी ही सौं सब सौतैं रगी स्याम रग।
सेत सारी ही सों स्याम रगै लाल रग में॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४०७ दो० २२५

४ बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ७७, दो० १७६

५. "सील भरी बोलत सुसील बानी सबहीं सौं
देव गुरुजननि के लाज सो लची रहै।
कोमल कपोल पर दीसै हरदी सो दुति
सूनो सो सकुचि मुसुकानि मैं मची रहै।
लाजन की लाली अखियन में दिखाई देत
अन्तर निरन्तर प्रेम सो पची रहे॥"
देव—भावविलास, पृ० ५०, सं० १९६१ प्रयाग

इन रीतिकवियो की नारी-भावना की सबसे बडी विचित्रता है कि वह नारी को अत्यावश्यक मानते हैं। अभिनव-यौवन-ज्योति से दीप्त प्रेयसी के शरीर के लिए उनमें अतृप्त पिपासा और तृष्णा है। उसके सौन्दर्य के लिए उनके हृदय में प्रशसा है, परन्तु इस प्रशसा का कारण है उसका विलास में उपयोग। इसी अतृप्त-वासना, पिपासा में आकुल कवि को सन्तो के समान नारी की भर्त्सना करते, उसे भव-पथ की छाया-ग्राहिणी वताते देखते हैं, तो आश्चर्य होता है[1]। वरवै नायिका-भेद आदि शृगार-रस-प्रधान ग्रन्थो की रचना करने वाले रहीम भी साँप, अश्व, नारी, राजा, नीच जाति और अस्त्रो से सावधान रहने का निर्देश देते हैं[2]। नारी-सयोग को तिरस्कार योग्य समझने का कारण रहीम विवाह को विपत्ति मानते हैं[3]। सेनापति भी नारी-सम्पर्क और भोग-विलास को त्याज्य बताते हैं[4]।

इन रीति-कवियो की नारी-भावना भी परम्परा से पोषित और सामन्ती आदर्शों की भित्ति पर स्थित है। किसी प्रकार की कुण्ठा अथवा निग्रह न होने के कारण रीति-काव्य मे नारी के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट ही दैहिक एवम् उपभोग का है। इस अनावृत प्रेम में वासना की तृष्णा और रसिकता है। नारी का कोई विशिष्ट व्यक्तित्व इनके लिए नही है, प्रत्युत वह विलास की अन्य सामग्रियो में से एक है। सभवत बिहारी तथा केशव के विरक्तिमय कथन शृगार और विलास की अतिशयता की प्रतिक्रिया में विकसित हुए हैं। रीति-काव्य मे नारी के विविध रूपो में नायिका रूप ने ही व्यजना पाई है। रीति-कवियो ने नारी में देवत्व का आरोप न कर, उसे मानवी मान कर पुरुषो को सौख्य देने वाली कहा है।

---

१ "या भव पारावार कौ उलघि पार को जाइ।
तिय-छवि छाया-ग्राहिनी ग्रहै बीच ही आइ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १७८ दो० ४३३

२. "उरग तुरग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें समारिये पलटत लगै न वार॥"
रहीम—रहिमन सुधा अनूपलाल मडल पृ० ४२, दो० १६६, द्वि० स० १९३१ प्रयाग

३. "रहिमन व्याह वियाधि है, सकहु तो जाहु बचाइ।
पायन वेड़ी पड़त है, ढोल बजाइ बजाइ॥"
रहीम—रहिमन सुधा (अनूपलाल मण्डल) पृ० ५० दो० २३७

४ "कीनौ वालापन वालकेलि में मगन मन
लीनो तरुनापै तरुनी के रसतीर कौं,
अव तू जग में परयो मोह पींजरा में सेना
पति भजु रामै जो हरैया दुख पीर को।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० १००, कवित्त १२

: ७ :

साहित्य में नारी के विविध रूप

माता-रूप

ममता की मंदाकिनी, स्नेह की अक्षय राशि, दया और वात्सल्य की प्रतीक, त्याग और तपस्या की साकार प्रतिमा माता सदा से ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की श्रद्धा और आदर की पात्री रही। भारतीय संस्कृति में जननी को श्रद्धा और सम्मान के रंगों से अंकित किया गया है। मातृ-स्तन्य देवनदी का विजेता, त्रिलोक में अतुलनीय, पाप पुंज को नष्ट करने वाला कहा गया है। वीर-माता का स्तन-पान कर पुत्र विश्व में अजेय हो जाता है[1]। माता के वात्सल्य और करुणा, ममता और स्नेह का कोष कुपुत्र और सुपुत्र के लिए स्वभाव से उन्मुक्त रहता है। एकांत मनोयोग एवम् एकनिष्ठ साधना से पुत्र के जीवन को आदर्शमय बनानेवाली राष्ट्र और सभ्यता की जन्मदात्री नारी का माता रूप सदा ही अभिनन्दनीय रहा। युग के प्रवाह, कालचक्र में नारी का गौरव परिस्थितियों की शिलाओं से टकरा कर बिखर गया। अनादर और उपेक्षा के मध्य पलती हुई, अपमान के गर्त में पड़ी हुई नारी के जीवन में भी मातृत्व का गौरव अक्षय रहा।

आलोच्य साहित्य की विभिन्न धाराओं में माँ के विविध रूप उपलब्ध हैं। इन सभी रूपों में एक सादृश्य है, सन्तान के प्रति माता का अपरिसीम स्नेह और ममता। यह ममता और वात्सल्य प्रतिदान के आकांक्षी नहीं है। जननी के विविध रूपों में, कभी वह प्रिय पुत्र के अमंगल की आशंका मात्र से सद्-असद् का विवेक परित्याग कर अत्यन्त कुत्सित नीचातिनीच कार्य करने को प्रस्तुत हो जाती है, दूसरी ओर ममतामयी माता अपने वात्सल्य को कर्तव्य के पाषाण से

---

१ 'जगाद पर्णं' किमित. करोमि
   मात स्तिरः स्म यदि हा पतन्ति।
जितद्युकुल्या त्रिजगत्स्वतुल्या
   त्वत्क्षीरधारा धुतपापधारा ॥"
      अमरचन्द्र सूरि—बालमहाभारत काव्य, (सं० शिवदत्त शर्मा) उद्योग पर्व ५।२८।१८९४ ई० बम्बई

'अर्थपतार यदि पायित स्याम
   मात ! पयस्तद् भुवि केन जीये।"
      अमरचन्द्र सूरि—बालमहाभारत काव्य, सम्पादित शिवदत्त शर्मा उद्योग पर्व ५।१२

दबाकर, पुत्र-सुख के स्वर्णिम स्वप्नो के मोह को दूर कर पुत्र को कष्टप्रद, कटकमय मार्ग पर अग्रसर करती है। माता के यह दोनो ही रूप रामकाव्य में उपलब्ध हैं[1]। सन्तकाव्य में जननी स्नेह, वात्सल्य क्षमाशीलता की अखण्ड राशि समाहित कर भगवान पर भी माता के रूपक का आरोप किया गया है। स्नेहमयी जननी के समक्ष पुत्र का बडे से बडा अपराध क्षम्य है, उसकी ममता और वात्सल्य की कल्याणमयी छाया सन्तान के लिए कवच होती है।

आलोच्यकाल के समाज में नारी उपेक्षा और अनादर की पात्री थी। सामाजिक, सास्कृतिक जीवन के निर्माण में उसका कोई भाग न था। उसका व्यक्तित्व अपूर्ण, शिथिल था। किन्तु आलोच्य साहित्य में और तत्कालीन समाज में भी नारी का मातृत्व, उसका जननी रूप गौरव एवम् आदर का विषय था। उपेक्षणीया, दीन होने पर भी वह अपने सन्तान की माता थी, यह उसका सबसे बडा सन्तोष और धन था। उसकी क्षमाशीलता और त्याग, क्षितिज के उस पार तक जानेवाली असीम ममता के ऊपर ही यह लोकोक्ति घटित थी, कि पुत्र कुपुत्र भले हो माता कुमाता नही हो सकती।

सन्तकाव्य के कवियो ने नारी के कामिनी रूप को असत् और अमगल का अश, नाशोन्मुख करनेवाला माना। किन्तु साथ ही नारी के माता रूप को उज्ज्वल माना। उन्होने सुयोग्य पुत्र उत्पन्न करनेवाली जननी की जाति नारी की निन्दा का सर्वथा निषेध किया। नारी की जी खोलकर निन्दा करने वाले, उसे अवगुणों की खान, नरक का कुण्ड बताने वाले सन्त कवियो के हृदय में भी नारी के माता रूप के प्रति मोह और सम्मान रहा होगा। कभी उन्होने हरि को जननी और स्वय को बालक माना है। कबीर और दादू दोनो ने ही इस प्रकार के कथन किए हैं[2]।

सूफीकाव्य में नारी का माता रूप सामान्य जननी का स्नेहमय रूप है। इन सभी काव्यो में माता सन्तान के अमगल की आशकामात्र से व्यथित होनेवाली, उसके वियोग में सन्तप्त होनेवाली, और सुख के आभास पर प्रफुल्लित

---

१ "कहौं जान बन तौ बडि हानी, संकट सोच-बिबस भै रानी।
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी, रामभरतु दोउ सुत सम जानी।
सरल सुभाउ राम महतारी, बोली बचन धीर धरि भारी।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका, पितु आयसु सब धरम क टीका।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १७९

"सीय सकुच बस उत्तर न देई, सो सुनि तमकि उठी कैकेई।
मुनि-पट-भूषन भाजन आनी, आगे धरि बोली मृदु बानी।

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १८८

२ "काहे न औगुन बकसहु मेरा, हरि जननी मैं बालक तेरा।"

अध्याय ४ में उद्धृत

हो जाने वाली जननी है। उसमे कोई विशिष्टता नही है। पद्मावत में रत्नसेन अपनी वृद्धा जननी का एकमात्र अवलम्ब, नयनो का तारा है। गृहदीपक सुत की अनुपस्थिति मे माता के स्नेहमय विश्व को तम और विषाद की छाया आच्छन्न किए हैं[१]। बादल की माता युद्ध को जाने को तत्पर बादल को युद्ध की भयानकता, जीवन की अनिश्चितता दिखाकर विमुख करना चाहती है। उसमें क्षत्राणी माता का ओज और तेज नहीं, जो पुत्र को हँसते-हँसते मातृभूमि पर बलि जाने की शिक्षा दे। वह पुत्र को रण के सघर्ष, अस्त्रों के सघात मे छिपाकर रखना चाहती है और बादल को गौने में आई वधू के साथ विलास-क्रीडा करने का आदेश देती है[२]।

चित्रावली में भी जननी-कौलावती और चित्रावली की माता-का रूप सामान्यत. स्नेहशीला माता का है। चित्रावली की जननी के लिए वात्सल्य के पोषण की अपेक्षा कुल गौरव की प्रतिष्ठा अधिक श्रेयस्कर है। जब चित्रावली को अपवाद लगता है तब उसकी जननी कुल के धवल यश के ऊपर कलक लानेवाली पुत्री की मृत्यु की कामना करती है, वही जननी पुत्री से विलग होते हुए मातृ स्नेह से द्रवित हो, रुदन की अविरल धारा के मध्य चित्रावली को अपना प्राण बताती है। कौलावती की माता भी उसकी विदा के अवसर पर शोक सन्तप्त हो उठती है[३]।

---

१ "नैनन दिष्टि सो दिया बराहीं, घर अँधियार पूत जौ नाहीं।
को रे चलाव सरवन के ठाऊँ, टेक देहि मोहि देखी पाऊँ॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २६६, माताप्रसाद गुप्त सम्पादक

"बिनवै रतनसेन की माता, माथे छत्र पाव तिनि पाथा।
बेरसहु नवलख लच्छि पियारी, राज छाडि जनि होउ भिखारी॥
कैसे धूप सहब बिनु छाहाँ, कैसे नीद परिहि भुइँ माहाँ।
कैसे ओढ़ब काथरि कथा, कैसे पाउ चलब तुम पथा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २०७

२. "बादल केरि जसोवै माया, आइ गहेसि बादल कर पाया।
बादल राय मोर तुइ बारा, का जानसि कस होइ जुझारा।
"जहा दलपति दलि मरहिं जोर का राम।
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुखराज॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५२६

३. "रानी सुनि पिय गौन बिचारा, बिसुकि गिरी भुइँ मार पछारा।
पुनि तोरि मोती छितराई लोचन मोती माल पिराई॥"
उस्मान—चित्रावली, पृ० २२२, २१६

रामकाव्य में माता के दो रूप उपलब्ध हैं, एक सत् और कल्याण का प्रतीक, दूसरा असत् और अकल्याण की छाया। दोनो में ही जननी-सुलभ ममता और वात्सल्य है। अन्तर इतना है कि एक का वात्सल्य स्वार्थ की क्षुद्र एवम् सकीर्ण सीमा में बद्ध है। वह केवल अपने पुत्र की ही हित-कामना करती है। दूसरी का मातृत्व स्वपुत्र ही नही प्रत्युत् सपत्नी पुत्र पर भी कल्याण और स्नेह का वर्षण करता है। पहला रूप कैकेई का है, जो राम को पुत्र से भी अधिक मानती है किन्तु दासी के कपट वचनो पर विश्वास कर स्वपुत्र के लिए राज्यारोहण और सपत्नी-पुत्र के लिए चतुर्दश वर्ष का विपिनवास मागती है[1]। रामकाव्य मे माता का दूसरा रूप अपने ही में महान और उज्ज्वल है। उसका अनन्त स्नेह विवेक से मर्यादित है। पुत्र के राजतिलक की कल्पना करती हुई माता के ऊपर वज्रपात होता है कि उसे विपिनवास मिल रहा है। मानस की मधुर भावनाएँ बिखर जाती हैं, अन्तर में प्रभजन उठने लगता है। वह न तो रुकने को ही कह सकती और न जाने को ही कह सकती। स्नेहकातरा माँ के विशाल हृदय को दुख है किन्तु अपने लिए नही भरत और प्रजा के लिए[2]। माता का पद पिता से पूज्य माना गया है। पुत्र माता के आदेश के समक्ष पिता के आदेश को अमान्य कर सकता होगा। तभी कौशल्या मातृगर्व से स्फीत होकर कहती है कि यदि केवल पिता का आदेश हो तो मेरी आज्ञा है कि विपिन मत जाओ, किन्तु यदि पिता और माता कैकेई दोनो की ही आज्ञा है तो वन ही शत अवध के समान है[3]।

दूसरी आदर्श माता सुमित्रा हैं, जिनका त्याग और भी गौरवास्पद है। वह स्वपुत्र को सपत्नी-पुत्र के साथ वन के विविध सकटो को झेलने को भेज देती है। अपनी वेदना को सहर्ष सहन करते हुए उनका कर्तव्य आदेश देता है[4]। माता कौशल्या कर्तव्यपरायण नारी हैं, विवेक उनका सबल है। प्राणोपम पुत्र राम,

---

१ "सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का, देहु एक वर भरतहि टीका।
मागौं दूसर वर कर जोरी, पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।
तापस वेस विसेषि उदासी, चौदह बरिस रामु वनवासी।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १६८

२ "राजु देन कहि दीन्ह वनु, मोहि न सो दुखलेसु।
तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचड कलेसु॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १७६

३ "जौं केवल पितु आयसु ताता, तौ जनि जाहु जानि बढ़ि माता।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना, तौ कानन सत-अवध-समाना॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १७६

४ "पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें, सब मानि अहि राम के नाते।
अस जिय जानि सग वन जाहू, लेहु तात जग जीवनु लाहू॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १८६

प्रिय पुत्र लक्ष्मण, और स्नेहपालिता पुत्र-वधू सीता वन को चले गए। जननी न तो उनके साथ ही गई और न कुलिश-सा कठोर हृदय ही फटा। किन्तु तो भी माता को राम के सदृश पुत्र की जननी होने का गौरव है[1]।

मानस में माता कौशल्या के हृदय का उद्गार विवेक से दबा हुआ है। गीतावली में भी उनकी कर्तव्य-भावना सुन्दर है किन्तु मातृहृदय की कोमलता भी अभिव्यंजित हुई है। गौरवशीला राजरानी कौशल्या एक सामान्य माँ के रूप में अपत्य-स्नेह में मग्न दृष्टिगत होती हैं। जनकपुर लौट कर आए हुए राम की भुजाओं पर उतार-उतार कर जल पीती हैं। उनको विस्मय है कोमलगात राम लक्ष्मण ने किस प्रकार महाशक्तिशाली सुबाहु और ताड़का को मारा[2]। सूरसागर में चित्रित सुमित्रा और कौशल्या दोनों ही आदर्श माता हैं। वात्सल्य और ममता, स्नेह और भावुकता दोनों के ही हृदय में उद्वेलित होती है। सुत के प्रति स्नेह की सहज भावना और उनके कर्तव्य में द्वन्द्व होता है। इस समय में भावनाओं की सुकुमारता, ममता की स्निग्धता पर विजय पाकर कर्तव्य प्रमुख हो जाता है। उनको पुत्र के जीवन और सौख्य से अधिक चिन्ता है उसके कर्तव्य की। वीर, प्रतापी, शौर्यवान और कर्तव्यपरायण पुत्र से ही वह अपने को पुत्रवती मानती हैं। पुत्र की मृत्यु की आशंका भी उसे कर्तव्यपथ से विचलित नहीं कर पाती[3]। कौशल्या के स्वर में भी वही ऊँचा आदर्शवाद है। राम के प्रति उनका आदेश है कि सकुशल लक्ष्मण वैदेही सहित अयोध्या आवें, नहीं तो स्वयं को भ्राता पर उत्सर्ग कर दें[4]।

"तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू, सँग पितु मातु रामु सिय जासू।
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू, सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १८६

१ "मोहि न लाज निज नेहु निहारी, राम सरिस सुत मैं महतारी।
जिअइ मरइ भल भूपति जाना, मोर हृदय सत कुलिस समाना॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २८२

२ "भुजन पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों तोर्यो कोमल कर कमलनि संभु-सरासन भारी।
क्यों मारीचि सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी।
मुनि-प्रसाद मेरे राम-लखन की विधि बड़ि करवर टारी।
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, गीतावली, पृ० ३२१, पद १०७

३ "धनि जननी जो सुभटहिं जावै।
भीर परें रिपु को दल दलि मलि, कौतुक करि दिखरावै।
कौसल्या सौं कहति सुमित्रा जनि स्वामिनी दुख पावै।
लछिमन जनि हौं भई सपूती। राम-काज जो आवै॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, रत्नाकर, पृ० ४१६, पद ५४३

४ "सुनौ कपि कौसिल्या की बात।
इहिं पुर जनि आवहिं मम बालक, बिनु लछिमन लघु भ्रात।

कृष्णकाव्य में माता का सरस और सहज वात्सल्यपूर्ण रूप प्रस्तुत है। यशोदा की ममता और सारल्य में जननी हृदय की आशाएँ आकाक्षाएं, भावनाएँ मूर्त हो जाती हैं। असीम स्नेह एवम् मनोयोग से वह अपने दुर्लभ धन कृष्ण का लालन-पालन करती है। बालक कृष्ण छोटी-छोटी बातो में हठ करते हैं। दुग्ध पीने से उसे अरुचि होती है। बडे ही मनोवैज्ञानिक रूप से यशोदा उसे कजरी का दूध पीने से चोटी बढेगी, यह आश्वासन एवम् प्रलोभन देती हैं[1]। माता के स्नेह की सतर्कता से पलते हुए कृष्ण पर अनेक विपत्तियाँ आती हैं। उन्ही के साथ माता के स्नेह और आशका में वृद्धि होती जाती है। कृष्ण अपनी उँगली पर दीर्घाकार गोबर्द्धन पहाड उठा लेते हैं। कृष्ण के ब्रह्मत्व, उनकी सर्वशक्तिमानता से अनभिज्ञ जननी को बडा विस्मय होता है कि उनके सुकुमार कन्हैया ने विशाल पर्वत कैसे उठा लिया[2]! चचल कृष्ण गृह के पकवानो, विभिन्न खाद्य पदार्थों की उपेक्षा कर माखन चुराते घूमते हैं। जननी के स्नेह-कातर हृदय को भय है कि कही श्याम के भोजन पर कोई कुदृष्टि न लगा दे[3]। कमल नयन अपनी जननी यशोदा के आँख के तारे हैं। उनके

छाड्यौ राज काज माता-हित, तुव चरननि चितलाइ।
ताहि विमुख जीवन धिक रघुपति कहियौ कपि समुझाइ।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, रत्नाकर, पृ० २४४, पद ५६७

१ "कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेगि बढ़ै चोटी।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ३१६, पद ७६२

२. "गिरिवर कैसे लियौ उठाइ।
कोमल कर चापति महतारी। यह कहि लेत बलाइ।
महाप्रलय जल तापर, राख्यौ एक गोवर्धनधारी।
नैकु नहिं टारयौ नख पर तै मेरौ सुत अहकारी।
कचन-थार दूध दधि-रोचन, सजि तमोर लै आई।
हरषित तिलक करतिमुख निरखति भुज भरिकठ लगाई।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ५६३, पद ६६७।१८८५

३ "माँगि लेहु याही विधि मोसौं माँ आगे तुम खाहु।
वाहिर जनि कवहुँ कुछ खैयै दीठि लगैगी काहु।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६०२. पद ६८७।१६०५

४ "घुटरुवन चलत सुहावनो लाल पग नूपुर के नाद।
कटि किंकिनी रुनझुन करै हो लाल सुनत जननी आह्लाद।
आधे आधे वचन सुहावने लाल सुनत जननी मन मोद।
मुख चूमत स्तनपान दै हो लाल लै वैठारति गोद।
काजर लोचन आजि कै हों लाल भौह माटुकादे वैठि।"

स० व्रजभूषण शर्मा—गोविन्द स्वामी, पृ० ६

परमानन्द—परमानन्द पदावली, प० १११

शारीरिक विकास के साथ ही मातृहृदय की कलित कामनाएँ विकसित होती जाती हैं। घुटनों चलते हुए, नाम की किंकिणी और नूपुर के शब्द माता के हृदय को उल्लसित कर देते हैं। धीरे-धीरे कृष्ण बढ़ते हैं। वह गोदोहन और गोचारण के लिए हठ करते हैं। माता को सबसे बड़ी चिन्ता उनके भोजन की है।

चाहे जितना चपल ढीठ बालक हो, उसके दोषों का वर्णन सुनना, उसकी चंचलता का उपालम्भ माता के लिए असहनीय ही होता है। गोपियों द्वारा बारबार कृष्ण की चंचलता की शिकायत सुन माता का मातृत्व गर्व जागृत हो उठता है[1]। वह उसको दण्ड देने का विचार करती है पर बालक के सरल मधुर शब्द और मोहक मूर्ति दर्शन मात्र से सुत पर माता का सहज विश्वास गोपियों पर ही अविश्वास करने लगता है। कृष्ण की चंचलता, उनके चीर-हरण आदि कृत्यों के विवरण पर यशोदा माता विश्वास नहीं करती, उनके कृष्ण तो अभी दस वर्ष के ज्ञानहीन बालक हैं और वह गोपिकाएँ यौवन से मत्त कामिनी, पुनः इनके उपालम्भ में सत्य कैसे हो सकता है[2]। कृष्ण की अवस्था के साथ उनकी चंचलता में भी अभिवृद्धि होती जाती है। नित्य के उपालम्भों को सुनकर कि तूने अपने पुत्र को बहुत दुलरा दिया है माता का विश्वास और प्रेम आघात पाकर क्रोध में परिणत हो जाता है। इसी समय एक गोपी कृष्ण को पकड़ कर लाती है। यशोदा का क्रोध उसी पर उतरता है। इन स्नेहपालित पुत्रों को मधुपुरी भेजते समय मर्मान्तक वेदना जननी के हृदय को झकझोर रही है, उनके कमलनयन उनके प्राणों से भी प्यारे हैं, इन दोनों छोटे अल्पवयस्क बालकों को वह कैसे मधुपुरी भेज दे[3]। माधव माता को सर्वश्रेष्ठ धनकोष के समान प्रिय हैं, प्रतिक्षण

---

१. "करत कान्ह ब्रजघरनि अचगरी।
खीझति महरि कान्ह सौं पुनि पुनि उरहन लै आवति हैं सगरी।"
× × ×
"जननी कै खीझत हरि रोए, झूठहि मोहि लगावति धगरी।
सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा, कहति सबै जुवती हैं लगरी॥"
नर—सूरसागर प्रथम भाग, पृ० ३६७ पद ६३७

२ "लिहीं उठि धावति भोर।
मेरे बारेहि दोष लगावति, ग्वारनि जोवन जोर॥"
नर—सूरसागर प्रथम भाग, पृ० ३६७ पद ६३८
'तनक तनक पर तारा अगुरिया, तुम जोबन भरी गबन चहुँरिया।
जाहु घरहि तुमको मैं चीन्हो, तुम्हारी जाति जान मैं लीन्ही॥'
स—सूरसागर प्रथम भाग पृ० ५३५ पद ७६८।१५१६

३ "मेरे कमलनयन प्रान ते प्यारे।
इन्हें कहाँ मधुपुरी पठाऊँ, राम कृष्ण दोऊ जन बारे।"
स—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ६६८।१५८६

उनके मुखारविन्द को निहार कर उन्हे अत्यन्त सौख्यानुभव होता है, वह श्याम को नही जाने देगी, अधिक से अधिक कस उन्हें बन्दी ही कर सकेगा[1]। रोहिणी भी यशोदा के समान ही वात्सल्यमयी हैं, बलराम और कृष्ण दोनो उनकी वृद्धावस्था के आधारखण्ड है[2]।

नन्द व्रजवल्लभ को ले गए हैं किन्तु जननी यशोदा के अन्तर मे अभी आशा शेष है कि नन्द कृष्ण को लौटा लावेंगे। नन्द के अकेले लौटने पर उनका सारा दुख, क्षोभ और क्रोध फूट पडता है। कितने स्नेह, मनोयोग ममता के साथ उन्होंने दोनो पुत्रो को बडा किया, उनको नन्द मथुरा में छोड आए। ममता और दुख की अतिशयता में वह नन्द को भी मतिमद तक कहती है, और नन्द की निर्ममता पर व्यग्य करती है[3]। पुत्र विरह से कातर स्नेहमयी माता पथिक द्वारा सन्देश भेजती है, उस सन्देश में मातृहृदय की दीनता सन्निहित है। वह समझती है कि व्रज को विपत्ति से उबारने के लिए व्रजवल्लभ अवश्य आवेंगे[4]। वह पुन कहती

---

१ "मेरी माई निधनी को धन माधौ।
बार बार निहारि सुख मानति, तजति नहिं पल आधौ।
छिनु छिनु परसति अकम लावति प्रेम प्रकृति है बाधौ॥"

× × ×

"करिहै कहा अक्रूर हमारो दैहै प्रान अवाधौ।
सूर स्याम धन हो नहि पठ्यो अवहिं कस किन बाधौं॥"

सूर—सूरसागर द्वि० खण्ड, पृ० २९७१।३५८९

२ "यह सुनि गिरी धरन झुकि माता।
विरध समय की हरत लकुटिया पाप पुण्य डर नाहीं।"

सूर—सूरसागर द्वि० खण्ड, पृ० २९८०।३५९८

३ "तराहों तेरो नन्द हियो।
मोहन सो सुत छाडि मधुपुरी गोकुल आनि जियो।"

३१६५।३७८३

× × ×

"नन्द व्रज लीजै ठोक बजाइ।
देहु विदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहँ गोकुल के राइ॥"

३१६८।३७८६

४ "पथी इतनी कहियो बात।
तुम विन इहां कुवर वर मेरे होत जिते उतपात॥"

× × ×

"ये सब दुष्ट हते हरि जेते भये एकही पेट।
सत्वर सूर सहाइ करौं अब समुझि पुरातन हेट॥"

सूर—सूरसागर द्वि० खण्ड, ३१७१।३७८९ पृ० १३४२

है। किन्तु राधा के छोटे से तर्क से, थोडे से मान से माँ का हृदय द्रवित हो जाता है। राधा अभी स्नेह-प्राणा माता की दृष्टि में निरी अबोध बाला है। उन्हें लोगो पर अनायास ही क्रोध आता है, जो राधा की सरल बालक्रीडा को कलक लगाते हैं[1]। चचल वाक्-चतुर राधा इस प्रकार अपनी इच्छानुसार कार्य कर जननी के छलहीन हृदय को आश्वस्त भी करती हैं। बहुमूल्य मुक्तामाला के खो जाने पर माता स्वभावत ही खीझ कर राधा को माला ढूंढने भेजती है। राधा इतस्तत नन्दलाल के साथ क्रीडा करके देर में घर आती हैं। माता का हृदय इस प्रतीक्षा में व्यस्त हो जाता है, वह अपनी निर्ममता को ही दोष देती है। उनको अपनी प्यारी स्नेहपालिता पुत्री पर क्रोध करने का महान् पश्चाताप है[2]।

आलोच्य युग का वीर-काव्य यद्यपि पूर्ववर्ती युग की परम्परा और आदर्श को लेकर ही चला है परन्तु परिस्थितियो के विषाक्त प्रभाव के कारण नारी के मातृत्व का उज्ज्वलतम रूप न्यून ही है। उस वैभव और विलास की रगीनी, मदिरा की अगूरी मादकता, नूपुरो की रुनझुन के शृगारप्रधान युग मे जटमल की 'गोराबादल की कथा' में बादल की जननी क्षत्रिय माता के उदात्त आदर्श की अवहेलना कर, सुत को रण से विमुख करती है[3]। उसमें वीर माता के स्वदेशा-

---

१. "मन ही मन रीझत महतारी।
कहा भई जो बाढि तनक गई, अबहीं तो है मेरी बारी।
झूठे ही यह बात उडी है राधा कान्ह कहत नर-नारी।
रिस की बात सुता के मुख की सुनति हँसति मन भारी।
अब लौं नहिं कछू यहि जान्यो खेलन देखि लगावैं गारी।
सूरदास जननी उर लावति मुख चूमति पोंछति रिसटारी।"

सूर—सूरसागर, प्रथम पृष्ठ, ८४८, १७१०-२३२८

२ "करति अवसेर वृषभानु नारी।
प्रात तें गई, बासर गयो बीति, सब जाय निसि गई धौं कहाँ बारी।
हार कैं त्रास में कुंवरि त्रासी बहुत, तिहि डरनि अजहू नहिं सदन आवै।"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड २०१४-२६३२

'राधा डरडराति घर आई।
देखति ही कीरति महतारी, हरषि कुंवरि उर लाई।
धीरज भयौ सुता, माता जिय दूरि गयो तनुसोच।
मेरी मैं काहे त्रासी कहा कियौ यह पोच॥"

सूर—सूरसागर, पद २०१५-२६३३

३ "तुझ विन सूझै न नैन कछू, तू टपि मुझ छाती पडे।
तट्टत नाला गोला जहां केम साह समसेर लडे॥"

जटमल—गोराबादल की कथा, स० अयोध्याप्रसाद पृ० २६, १६८१ स०

भिमान वीरत्व एवम् शौर्य के स्थान पर माता की ममता अधिक है। कर्तव्य और हृदय के संघर्ष में जननी के सहज स्नेह की कोमल भावना विजयी होती है। इसी वीर-काव्य की परम्परा में चम्पतराय की माता के रूप में समयानुकूल परामर्श देने वाली आदर्श माता का कर्तव्य-रत रूप उपलब्ध है[1]।

रीतिकाव्य के विलास-जर्जर वातावरण में पनपे हुए काव्य में नारी का केवल प्रेयसी और कामिनी रूप शेष रह जाता है। नायिकाभेदोपकथन, उद्दीपन-शृंगार के चित्रण में कवि जननी के वात्सल्यमय कल्याण-विधायक रूप को विस्मृत कर देता है। उसने केवल नारी में काम-भाव, वासना ही देखी। बिहारी की प्रौढ़ा नायिका शिशु का मुख चूमती है, वात्सल्य की पावन प्रेरणा से नहीं, प्रत्युत नायक द्वारा चुंबित उसके मुख के चुंबन द्वारा नायक के स्पर्शानुभव के रस की प्राप्ति के लिए[2]। आलोच्य साहित्य की विविध काव्यधाराओं में नारी के माँ रूप की विवेचना के उपरान्त यह सुस्पष्ट है, कि अपकर्ष एवम् पतन के इस युग में भी माता रूप में नारी गौरव एवम् सम्मान की पात्री रही तथा अन्य विषमताओं के मध्य उसमें माता के कर्तव्य की सात्विक व्यंजना हुई है।

नारी प्रेयसी-रूप

नारी के जीवन में महोत्सव की वह वेला आती है, जब उस की अनन्त प्रणय-राशि, मानस की मृदुल भावावलियाँ, कोमल कल्पनाएँ, और स्वर्णिम स्वप्न किसी के चरणों में वह बिखरा देना चाहती है। यौवन के उस गुम्फित चमन में मादकता और प्रेम उसके हृदय को गुदगुदाते हैं। सर्वस्व-समर्पण की भावना में नारी अपने को आराध्य के चरणों में उत्सर्ग कर देती है। त्यागमयी नारी अपने निश्छल हृदय से प्रणय और ममत्व के प्रतिदान की आकांक्षा नहीं करती है। भ्रम और संदेह उसके प्रेम की उन्नत भित्ति को छू भी नहीं पाते हैं। उसके निर्वाह पर उसे संतोष होता है एवम् प्रिय पर अगाध विश्वास। इस समर्पण व विनिमय में नारी को वेदना की थाती ही मिलती है फिर भी उस प्रिय से कोई उपालम्भ नहीं करता है। यही प्रेयसी का आदर्श रूप है। इसकी पावनता और कोमलता का अंकन विश्व के समस्त साहित्यों में हुआ है। आलोच्य-साहित्य में नारी का प्रेयसी-रूप विविध दशाओं में अंकित हुआ है। रीति-काव्य में जब नारी कामिनी मात्र रह कर विलास के उपकरण रूप में अंकित होती थी, तब भी नारी का प्रेयसी रूप ही अपने उत्सर्ग और त्याग में गरिमामय बना दृष्टिगत होता है।

1. "यह मुनि पै चवन की माता। दास निषाद ग्वाल ... पाला।
निरख ... पुत्र बुलाये। ... मन्त्र के वचन सुनाए।"
लाल—छत्रप्रकाश पृ० ३७

2. 'हिलि मिलि बुलाइ, बिलोकि ... गोद लिया ... ।
... , दूत की लिय चम्यो मुख ... ॥'
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २२५, दो० ५१३

प्रेम को सभी धाराओ के कवियो ने महत्व दिया है। प्रेम को उपलब्ध कर मानव जीवन के सब दुखो और सतापो को विस्मृत कर देता है। इसी प्रेम का अवलम्ब लेकर सन्त कवियो ने प्रेयसी भाव से निर्गुण ब्रह्म की भक्ति की है। कबीर ने प्रेम को बहुत महत्व दिया है, उन्होने उसे समस्त शास्त्रीय ज्ञान, वाह्याचार के परे माना है। यह प्रेम सिर के मूल्य से मिलता है[1]। इसी प्रेम की साधिका बन कर सतो की आत्मा की विरहिणी नारी अनन्त वेदना और विरह को ही चिर सहचर बना लेती है। उसे इस सत्य का ज्ञान है कि प्रिय मिलन से पूर्व रुदनधारा से हृदय को पवित्र करना पडता है, वेदना की अग्नि में कचन शरीर को दग्ध करना पडता है, तब कही अविनाशी प्रियतम मिलता है[2]। कबीर, दादू, सुन्दरदास, धरनीदास आदि सभी कवियो के काव्य में अनन्त की प्रेयसी आत्मा का अनन्त विरह, असीम वेदना और अखण्ड प्रेम विद्यमान हैं।

सूफी कवियो ने भी प्रेम को ही अपनी इष्ट की उपलब्धि का साधन माना है। लौकिक प्रेम के चित्रण द्वारा अलौकिक प्रेम का आभास देना ही उन्हें अभीप्सित है। अत उन्होने आत्मा को पुरुष और परमात्मा को नारी माना है। फारसी परम्परा तथा रूपक के आरोपो से उनकी 'नारी' को पहले पुरुष प्रेम करता है। पुन चित्रदर्शन, गुणश्रवण अथवा प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेयसी के हृदय में भी प्रेम की अग्नि जलने लगती है। सूफी काव्य की प्रेयसी की प्रेम की धारा प्रचण्ड, अप्रतिहत वेग वाली होती है। उसे जीवन-मरण का भय नही रहता। उसे विश्वास है कि मृत्यु उपरान्त भी उनका प्रेम अक्षुण्ण रहेगा[3]। रत्नसेन के विरह में पद्मावती की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। विरह-वेदना के बाहुल्य में उसे अपने शरीर की सुधि भी नही रहती है। पपीहा के समान वह दिवा-निशा प्रियतम को पुकारा करती है[4]। प्रेमी और प्रेमिका का सम्बन्ध दीपक और शलभ का है। प्रेम का यह

---

१ "प्रेम न वाडी ऊपजै प्रेम न हाट विकाय।
राजा प्रजा जेहि रुचै सीस देह लै जाय॥"
कबीर—कबीर वचनावली, पृ० ११, पद १०३

२ "हसि हसि कत न पाइए, जिन पाया तिन रोइ।
जो हासे ही हरि मिलै, तो न दुहागिन कोई॥"
कबीर—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास सम्पादित, पृ० ६

३ "जौ रे जिअहि मिलि केलि करहि, मरहि तौ एकहि दोउ।
तुम्ह पै जिनि होऊ कछु, मोहि जिय होइ सो होइ॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त सम्पादित
पृ० २६४, १९५२ इलाहाबाद

४ "विरह न आपु सँभारै मैल चीर सिर रूख।
पिउ पिउ करत रात दिन पपिहा गई मुख सूख॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २७२, १९५२ इलाहाबाद

बन्धन अविच्छिन्न है, प्राण जाने पर ही छूट सकेगा[1]। प्रेयसी की दशा अत्यन्त दयार्द्र है। लोक-लज्जा और मर्यादा की बेड़ी उसके पैरों में पड़ी है, वह पिंजरे में बन्द पक्षी के समान विवश और निरुपाय है। प्रेम की इस सर्वदग्धकारी ज्वाला में वह मौन भस्म होती रहती है[2]। सूफी काव्य की प्रेयसी का प्रेम त्याग और बलिदान की भित्ति पर आधारित है। कामकन्दला नर्तकी भी दृढ़ प्रेम और अनुरक्ति वाली है[3]।

राम-काव्य में नारी का प्रेयसी रूप में चित्रण अत्यल्प है। सीता और पार्वती दोनों का विवाह के प्रति पूर्वराग प्रेम के नाम से अभिहित किया जा सकता है। पार्वती को अटल विश्वास है कि यदि उन्होंने कर्म, वचन और वाणी से शिव के लिए सात्विक, अकृत्रिम हृदय से साधना की है तो कृपानिधि भगवान उनके प्रण को सत्य अवश्य करेंगे[4]। नारी की निष्ठा और प्रेम, त्याग और तपस्या पार्वती की कठिन साधना में अपनी चरम विकास पर पहुँची है। पहले कंदमूल, पुन. जल सूखे पत्तों को खाकर तपस्या करने वाली हिम-सुता ने उन सूखे पत्तों का भी त्याग कर दिया। प्रेयसी के इस तप और साधना से उज्ज्वल रूप की कीर्ति से पूरा विश्व पूर्ण है[5]। पार्वती का प्रेयसी रूप सबल और तप एवम् त्याग से उज्ज्वल है। सीता एक शालीन मर्यादाशीला प्रेयसी के रूप में आती है। पुष्पवाटी में राम के मनोहर रूप के प्रथम दर्शन होते हैं। सम्भ्रान्त परिवार की मर्यादा, नारी-सुलभ लज्जा उनको बारम्बार राम की ओर देखने से रोकती है। नयनों के मार्ग से राम की मनमोहक मूर्ति की हृदय में स्थापना कर, पलकों के कपाट लगाकर सुरक्षित कर

---

१ "बाँधी डोरी प्रेम की टूट सो जाइ न छूट।
दीपक प्रीति पतंग ज्यों प्राण जाइ पै छूट॥"
उस्मान—चित्रावली, जगमोहन वर्मा सम्पादित, पृ० १३२, काशी

२ "सबलहुँ नारी गुपुत हौं जरी, सब जिउ कहिय न पूरो करी।
पिंजरा महँ जस पंछी घेरी, सो पग परी लाज की बेरी॥"
उस्मान—चित्रावली, पृ० ९६

३ 'नैन भ्रमर जिमि नेह, गन्ध देह भीतर मदन।
बिछुरत नयो सनेह मन व्याकुल ना चरित भय॥'
आलम—माधवानल कामकन्दला, हिन्दी के कवि और काव्य,
गणेशप्रसाद, पृ० २००, तीसरा भाग

४ "जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत करम मन बानी॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ४३

५. "नाम अपरना भयो परन जब परिहरे।
नवल-धवल जस-कीरति सकल भुवन भरे॥'
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २ पार्वती मंगल, पृ० ३२

लेती है[1]। उनको भी अपने सात्विक प्रणय की पूर्णता का, प्रियतम की उपलब्धि का पूरा विश्वास है, क्योकि अकृत्रिम, वास्तविक प्रेम में मिलन अवश्यभावी है। शूर्पणखा भी राम के सौन्दर्य पर विमुग्ध हो उनसे प्रेम की याचना करती है, पुन लक्ष्मण से। उसके प्रेम में अनन्यता और स्थिरता का अभाव है, अत उसे प्रेयसी न कहकर वासना-प्रेरित नारी कहना समीचीन होगा।

प्रेयसी का सयोग के अनुराग से रजित प्रमुदित रूप और वियोग का करुण, अश्रु-आप्लावित रूप कृष्ण-काव्य में उपलब्ध होता है। यद्यपि उनका प्रेम स्वकीया-भाव का है, किन्तु उन्हें प्रेयसी ही कहा जावेगा पत्नी नही। ब्रज के सामन्ती प्रभाव से मुक्त, स्वच्छन्द वातावरण में सहवास, परस्पर केलिक्रीडा में ही कृष्ण के सौन्दर्य को देखकर गोपियो के हृदय में स्नेह और प्रेम का आविर्भाव होता है। वशीवादन की मधुर ध्वनि सुन वह सब अपनी सुधि विसार देती हैं। माता-पिता का भय, लोक-लज्जा आदि उनके लिए नगण्य हो जाती है। इन ब्रजबालाओ के प्रेम में एक-निष्ठा और निश्चलता है। उनकी समस्त साधनाएं, तप, उपासना, पूजा नद-नदन को पति रूप में प्राप्त करने के लिए होती हैं। प्रेमी द्वारा अधिक मान और आदर पाने से प्रेयसी के हृदय मे गर्व का उद्रेक होना स्वाभाविक है। सुहाग-गर्व से राधा कृष्ण से कन्धे पर चढाने को कहती है। कृष्ण उनके गर्व का अनुमान कर अदृश्य हो जाते हैं। सौभाग्यगर्विता प्रेयसी अल्पकालीन विरह में ही व्याकुल हो उठती है[2]। प्रेयसी के हृदय में प्रियतम पर एकाधिपत्य-स्थापन की लालसा रहती है, कृष्ण द्वारा मुरली का आदर देखकर निर्जीव जड मुरली के प्रति भी उनके हृदय में ईर्ष्या एवम् द्वेष का आविर्भाव हो जाता है। वे अहर्निशि श्याम के सान्निध्य का सुख उपभोग करने वाली, मुरली के सौभाग्य को असीम और अतुलनीय समझती हैं[3]। प्रेयसी के हृदय में प्रिय का प्रेम दृढ हो जाता है, उस प्रेम की अतिशयता में

---

१ "लोचन मगहि रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १००

२ "त्राहि-त्राहि कहि-कहि वनवारी। भई व्याकुल तनु-दसा विसारी।
नैन सलिल भीजी सव नारी। सूर सग तजि गएऊ मुरारी॥"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६४१, पद ११०५।१७२३

३ "वसी वैर परी जु हमारे।
अधर पियूष अस सवहिनि को, इन पीयौ सव दिन निज न्यारे।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६६६, पद १२२९।१८४७

' मुरली स्याम अधर नहि टारत।
वारम्बार वजावत गावत, उर तै नाहीं बिसारत।
यह तौ अति प्यारी है हरि की कहति परस्पर नारी।
याकै वस्य रहत हैं ऐसे गिरि-गोवर्धनधारी॥"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६६६, पद १२३०।१८४८

वह अपनी सुधि ही भुला बैठती है। दधि-पात्र मस्तक पर रखे श्याम प्रेमोन्मत्ता गोपी वनवीथियों एवम् मार्ग पर आत्मविस्मृति में 'गोपाल को लो' कहती घूमती है। प्रेम की मदिरा के पान से उसके चरण डगमगाते हैं[1]। इस प्रेम में विवशता है। वस्तुत समस्त दोष इन सौन्दर्यान्वेषक रूप—लोभी नयनों का ही है। गोपियाँ नयनों के इस सौन्दर्य-प्रेम, लोभ के कारण विवश हैं। सूर द्वारा वर्णित यह प्रेमिका अपने प्रियतम का एक क्षण का भी वियोग सहने में असमर्थ है। कृष्ण के लिए भी राधा का प्रेम आदर की वस्तु है। केलि-क्रीडा के मध्य टूटी हुई राधा की माला को प्रेमपूर्वक बीच ही में ले लेते हैं। माला का भूमि पर गिरना उन्हें असह्य है[2]। संयोगकाल में सौभाग्यगर्विता मानिनी प्रेयसी के स्वरूप का उज्ज्वलतम रूप वियोग काल में दृष्टिगत होता है। प्रियतम की प्राप्ति के लिए गोपियाँ सिंगी, मुद्रा, खप्पर आदि लेकर योगिनी बनने को भी प्रस्तुत हैं। उनके अश्रुपरिप्लुत नयन घनों से प्रतिद्वन्द्विता करते हैं[3]। प्रेयसी का प्रेम निष्काम और भोग का परित्याग कर केवल प्रियतम दर्शन का अभिलाषी रहता है, उनके लोचन चातक के समान आशा में उलझे हैं। उनके नयनों में बोई हुई विरहवेलि अश्रुजल से सिंचित होकर जड़ पकड़ लेती है[4]। रूप-लोभी नयन सब अपने सौन्दर्य-प्रेम के लिए परिताप करते हैं। सूर द्वारा चित्रित प्रेयसी का यह रूप विराग, निष्काम और त्यागमय है। अपने प्रेम की विफलता, वेदना की अतिशयता एवम् घोर नैराश्य को दृष्टिगत कर वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि प्रेम ही उनके समस्त दुःख का कारण

१ "ग्वालनि प्रगट्यो पूरन नेहु।
दधि-भाजन सिर पर धरे कहहिं गोपालहिं लेहु।
बन बीथिन अरु पुर-गलिनि जहाँ तहाँ हरि नाऊ।"
× × ×
"पिये प्रेम वर वारुनी बलकनि सुध न सम्हार।
पग डगमग जित-तित धरति, बिथुरी अलक लिलार।"
सूर—सूरसागर, पृ० ८२८, पद १६४०।२२५८

२. "प्रेम सहित माला कर लीन्ही।
प्यारी हृदय रहति यह जानी, भू पर परन न दीन्ही।"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, ६५८५, ११८६।१८०३

३. "निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे।
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे।"
सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १२६१, पद ३२३८, ३८५७

४ "मेरे नैना बिरह की बेलि बई।
सींचत नैन-नीर के सजनी मूल पताल गई।"
सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड पृ० १२६०, पद ३२५४।३८७८

एवम् सतापो का कारण है[1]। मानिनी राधा कृष्ण के विरह में अत्यन्त विवश और दीन हो जाती है, उनका शरीर अत्यन्त कृश हो जाता है। प्रियतम के विरह में वह आभूषणो को त्याग देती है उनको बस एक प्रिय की रट है। वही प्रियतम नेत्र-हीन के दण्ड के समान उनका अवलम्ब है[2] प्रेयसी के प्रेम की दृढता निश्चलता, महानता दृष्टिगत कर उद्धव से ज्ञानी भी प्रेम के उपासक हो जाते हैं।

रीति-काव्य का मूल ही शृगार एवम् प्रेम है। अत उसमे नारी के प्रेयसी रूप की प्रधानता है। यद्यपि तत्कालीन कृत्रिमता, वैभव आदि के कारण प्रेयसी के रूप मे उच्छृखलता एवम् मर्यादा का अतिक्रमण है। रीति-काव्य की प्रेयसी सामाजिक प्रतिबन्धो को ठुकरा कर प्रेम करती है। वह परकीया है, अत उसका प्रेम अप्रतिहत एवम् अबाध है। प्रेम की रगभूमि मे वह प्रधान पात्री है। प्रेम के आवेग में वह प्रेमी की उडती हुई पतग की छाया को स्पर्श करती घूमती है। उसके नयन ढीठ अश्व हैं जो लाज की लगाम से सयमित नही हैं[3]। प्रेयसी रूप मे नायिका के विभिन्न भेदो का ही विकास हुआ है। विलास के वातावरण में, निर्बाध शृगार, विलास की छाया मे यदा-कदा रीतिकवियो ने प्रिय के प्रेम मे आत्म-विस्मृत, अपना ही प्रतिबिम्ब दर्पण मे देख कर रीझने वाली प्रेयसी के सात्विक रूप का चित्रण किया है[4]। शृगारी कवि देव ने भी राधा के रूप में प्रियतम के साथ तादात्म्य कर लेने वाली कीट-भृ ग गति वाली प्रेयसी का वर्णन

---

१ "मति कोउ प्रीति के फद परै।
सादर स्वाति देखि मन मानै, पखी प्रान हरै।
देखि पतग कहा क्रम कीन्यौ, जीवकौ त्याग करै।"

× × ×

"जैसे चकोर चद को चाहत, जल विनु मीन मरै।
सूरदास प्रभु सौ ऐसे करि मिलै तो काज सरै।"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १३७५, १३७६, पद ३२८७, ३६०५

२. "हरि तिहारे विरह राधा भई तन जरि छार।
विनु आभूषण मैं जु देखी, परी है विकरार।
एकहि रट रटत भोमिनी, पीव पीव पुकार।"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १६२६, पद ४१०८।४७२६

३ "लाज लगाम न मानहीं, नैंना भो वस नाहिं।
यह मुहजोर तुर ग लौ, ऐंचत हू चलि जाहिं॥"

विहारी—विहारी रत्नाकर, पृ० २५२ दो० ६०६

४ "पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि।"

विहारी—विहारी रत्नाकर, पृ० २४२ दो० ५८३

किया है। राधा जब कन्हैया का ध्यान करती है तब प्रेम के बाहुल्य में अभेद भाव की अनुभूति होती है। वह स्वयं कन्हैया होकर राधा का गुणगान करने लगती है। राधा को वह पत्र लिखती है, पुनः एक क्षण के अन्तर में वह राधा होकर कृष्ण द्वारा लिखे पत्र को हृदय से लगा लेती है। इस प्रकार विरहिणी राधा स्वयं अपने आप में ही उलझती और सुलझती है[१]। प्रेम की पीड़ा से व्यथित ब्रज की प्रेयसी की वेदना का निदान वैद्य नहीं कर पाते हैं। प्रियतम के वियोग में शरीर की आवश्यकताओं का भी परित्याग कर वह व्याकुल होकर पड़ी हुई है[२]। उसकी तीव्र निश्वासों से ही निरन्तर प्रवाहित होती हुई अश्रुधारा शुष्क हो जाती है। प्रिय के वियोग में जलहीन मीन के समान वह व्याकुल है[३]।

प्रेयसी की सबसे बड़ी अभिलाषा, कामना प्रियतम का सान्निध्य ही है। वही उसके लिए स्वर्ग है। इस कामना की पूर्ति के लिए वह नन्दनन्दन के स्पर्श में लगी हुई गुलाल की मंजरी के सौभाग्य की सराहना करती है[४]। प्रेम के समक्ष उसके लिए गृह-काज, लज्जा, गुरुजनों का भय, ग्रामवासियों की निन्दा सारहीन है। यह प्रेम उसके लिए त्रैलोक्य के साम्राज्य सदृश्य है। उसके समक्ष योगादि स्वा-मना की सिद्धियाँ तुच्छ हैं[५]।

यद्यपि प्रेयसी का उज्ज्वल रूप रीतिकालीन कवियों की रसिकता, श्रृंगार की लीलाओं के मध्य यदा-कदा धूमिल हो जाता है किन्तु रीति युग के विलास मय वातावरण में भी नारी के प्रेयसी रूप में त्याग और उत्सर्ग, महानता और पावनता भी मिलती है। आलोच्य-काल की नारी का प्रेयसी रूप नारी की प्रेम में विवशता और विषम स्थिति का ही चित्र है। उसके सामाजिक नियमों द्वारा शासित जीवन में प्रेम वरदान और अभिशाप दोनों ही बन कर आता है। या तो स्पष्ट

है कि जीवन के सीमित क्षेत्र में वियोग-काल में नारी की वेदना लोक और समाज के सुधार और परोपकार के साधनो में नियोजित नहीं होती, परन्तु इसे अस्वीकार नही किया जा सकता कि आलोच्य-साहित्य में वर्णित नारी का प्रेयसी रूप त्याग और बलिदान, वेदना और विषाद, उत्सर्ग और विवशता की रेखाओ में अपने उज्ज्वलतम् स्वरूप को उपलब्ध करता है।

नारी पत्नी-रूप

भारतीय सस्कृति के अनुसार नारी के अभाव में पुरुष अपूर्ण रहता है। "पुमानर्द्धे पुमास्तावद्यावर्द्धाया न विन्दति।" पत्नी द्वारा उसके अर्द्धांग की पूर्ति होती है। पत्नी केवल वासना एवम् विलास की प्रतीक न होकर दु ख-सुख की समभागिनी, धार्मिक कृत्यो की सहयोगिनी, सचिव के समान सत् परामर्शदात्री, अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा सद्-असद् के विवेक, ऊँच-नीच के ज्ञान, तथा कर्तव्य-भावना को जागरूक करने वाली, सेवाकाल की दासी तथा क्रीडा-विनोद की सहचरी मानी गई है। पति को परमेश्वर मानने वाली आदर्श-समन्विता पत्नी सतत सम्मान और आदर पाती रही है। गृहिणी के रूप में वह गृह साम्राज्य की साम्राज्ञी, गृहाग्नि प्रज्ज्वलित कर धार्मिक क्रियाओ का सुचारू सम्पादन करने वाली धर्मपत्नी है। ऋग्वेदयुगीन सभ्यता में नारी का पत्नी रूप गरिमामय रहा। युग की समस्याओ, सामाजिक जटिलताओ से उसका गौरव न्यून हो गया, किन्तु महाभारत और रामायण तथा अन्य सस्कृत ग्रन्थो में पत्नी अक्षय मर्यादापूर्ण एवम् गरिमामयी दृष्टिगत होती है। युधिष्ठिर को ओजस्वी वचनो द्वारा परामर्श देती हुई द्रौपदी का सचिव रूप किरातार्जुनीय में दृष्टिगत होता है[1]। इन्दुमती की मृत्यु पर शोकार्त्त अज की वाणी में आदर्श-पत्नी के गुण मुखर हैं[2]। उत्तररामचरित के राम के शब्दो में उसके वचनो का महत्त्व तथा आनन्द अतुलनीय है। पत्नी गृह में लक्ष्मी है, नयनो की अमृतवर्तिका है। उसका स्पर्श चन्दन के गाढे रस के समान शीतल, स्निग्ध और आनन्ददायक है[3]। पत्नी का यह

---

१. "अय क्षमावेव निरस्त विक्रमः
चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपति लक्ष्य कार्मुकम
जटाधर. सन जुहुधीहिपानकम् ॥"

भारवि—किरातार्जुनीय १।३१

२ "गृहिणी सचिव सखीमिथ
प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणा विमुखेन मृत्युना
हरता त्वा वद किं न मे हृतम ॥"

कालिदास—रघुवश, ८।६७

३ "म्लानस्य जीव कुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि

आदर्श सर्वकालिक है। भारतीय पत्नी विवाह की वेदी पर अपनी समस्त आशाओं, अभिलाषाओं की भेंट चढ़ाती है। अपने व्यक्तित्व का विलय वह पति में कर देती है, पति से स्वतन्त्र उसकी कोई इच्छा अथवा अनिच्छा नहीं होती है।

आलोच्य साहित्य की विविध शाखाओं में उपलब्ध नारी का पत्नी रूप अधिकतर इन्हीं आदर्श रेखाओं के संकेत से व्यंजित हुआ है। सन्त-काव्य में भी पत्नी की एकनिष्ठ भक्ति और समर्पण को अत्यधिक महत्त्व मिला है। इन सन्तों की आत्मा आदर्श पत्नी है परन्तु प्रतीक मात्र होने के कारण उसकी विशद व्याख्या अपेक्षित नहीं है। मुसलमान सूफी सन्तों द्वारा लिखी गई प्रेम गाथाओं में भी भारतीय पत्नी के सात्विक रूप का सुन्दरतम् विकास हुआ है। पद्मावती और नागमती, चित्रावली और कौलावती, इन्द्रावती पति को ही जीवनाधार मानने वाली पत्नी हैं। नागमती सर्वप्रथम रूपगर्विता, पति का स्नेह पाकर इठलाती हुई पत्नी के रूप में आती है। अपने सौन्दर्य तथा सौभाग्य पर उसे गर्व है। इसी सौभाग्य के गर्व में वह सुआ को मार डालने का आदेश देती है। राजा के रोष के समक्ष उसका अभिमान नष्ट हो जाता है[1]। नारी के गर्व और सौभाग्य के अभिमान की आधारशिला कितनी दुर्बल है। नित्य सेवा करने वाली पत्नी का समस्त गौरव छोटे से अपराध से नष्ट हो जाता है। पत्नी का समस्त सुख पति-सामीप्य में ही है, नागमती आदर्श पत्नी के रूप में वैभव के समस्त उपकरणों का परित्याग कर पति के साथ योगिनी बनने को प्रस्तुत हो जाती है[2]। पति-

---

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।"
भवभूति—उत्तररामचरित, स० टी० आर० रत्नमऐयर आठवां सं०
पृ० ३८, ३६ श्लोक १९३० बम्बई

"इयं गेहे लक्ष्मी रियममृतवर्तिर्नयनयो
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः"
भवभूति—उत्तररामचरित, स० टी० आर० रत्नमऐयर आठवां सं०
पृ० ४०, श्लोक ३८

१. "मान भरे हौं गरब जो कीन्हा कन्त तुम्हार मरम न चीन्हा।
सेवा करहिं जो बरहौ मांसा, एतनिक औगुन करहु बिनासा।'
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (शुक्ल) पृ० १८०, १९४८ इलाहाबाद

२. 'अब जो हमहिं करहि जोगिनी, हमहूं साथ होइब जोगिनी।
कै हम लावहु अपने साथा, कै अब मारि चलहु येहि हाथा॥
तुम्ह अस बिछुरै पीउ पिरीता, जहंवा राम तहां सँग सीता।
जौ लगि जिउ सँग छाँड़ न काया, करिहौं सेव पखरिहौं पाया॥'
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० [illegible], १९४८ इलाहाबाद

विरहातुरा नागमती निर्निमेष नयनो से सिंहल से चित्तौर आनेवाले मार्ग को निहारा करती है। दुर्बल-हृदया-अबला होने के कारण काम उसको दग्ध करता रहता है[1]। साम्राज्य की साम्राज्ञी नागमती अपनी विशिष्ट सामाजिक स्थिति की अवहेलना कर आत्मविस्मृति में उपवन के प्रत्येक वृक्ष के पास जाकर विरहवेदना निवेदन करती है। पति के वियोग मे समस्त सुख एवम् आनन्द को प्रदान करने वाली वस्तुएँ उसे काल सम प्रतीत होती हैं, वर्ष में षटऋतुओ के परिवर्तन का चक्र चलता है, गृह-गृह में उत्सव, पर्व की आयोजना होती है, परन्तु पति के वियोग में विरहिणी पत्नी के लिए सब शून्य ही है[2]। विरह-वेदना मे दग्ध होकर भी नागमती का हृदय कांचन-सा शुद्ध नही हो पाता, उसमें ईर्ष्या का ताप अवशिष्ट रहता है। सपत्नी का उल्लेखमात्र ही उसे सघन छाया में घोर आतप ताप सा प्रतीत होता है[3]। पद्मावती भी आदर्श पतिव्रता पत्नी होने पर भी पति पर एकाधिपत्य रखने की भावना से शून्य नही है[4]। अन्त मे पद्मावती और नागमती सहगमन द्वारा सतीत्व के उज्ज्वलतम् आदर्श को प्रस्तुत करती हैं। उस्मान की कौंलावती में पत्नीत्व के चरम आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। उसकी उत्सर्ग की भावना प्रतिदान की आकांक्षी नही है, पति तथा सपत्नी के सुख-सौभाग्य के लिए वह आत्मोत्सर्ग को प्रस्तुत है[5]।

रामकाव्य में तुलसी ने सीता, पार्वती, मन्दोदरी, कौशल्या आदि में पत्नीत्व के आदर्शों का विकास किया है। पतिप्राणा भगवती पार्वती को पति-निन्दा सुनना

---

१ "पिय वियोग अस बाउर जीऊ, पपीहा तस बोलै पिउ पीऊ।
अधिक काम दगधै सो रामा, हरि जिउ लै सो गएउ पिउ नामा।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली : गुप्त पृ० ३५३

२ "जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारो तिन्ह गर्व।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्व।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३५५

"सखि मानहिं तेवहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कन्त बिनु तेहि रही छार सिर मेलि।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३५७

३ "जनहु छाँह महँ धूप दिखाई, तैस झार लागी जौं आई।
सहि नहिं जाइ सौत की झारा, दूसरे मंदिल दीन्ह उतारा।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४०६

४ 'अनु हौं कंवल सुरुज की जोरी जौं पिय आपन तौ का चोरी।
हौं ओहि आपन दरपन लेखौं, करौं सिंगार भोर उठि देखौं।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४१३

५. अध्याय ४, प्रकरण २ सूफीकाव्य के नारी आदर्श रूप के अन्तर्गत उद्धृत है।

वियोग जगत मे अतुलनीय दुख है[1]। कोमलागी सीता विपिन के कष्टो को सस्मित सहन करती हुई पत्नी के कर्तव्य का प्रतिपादन करती रहती हैं। वन में माता-पिता के समीप राजसी साधनो के मध्य रात्रि व्यतीत करने में भी उन्हे सकोच होता है[2]। दशानन के प्रलोभन, भयप्रदर्शन, प्रणय-प्रस्तावो के समक्ष सती नारी का एक ही उत्तर है[3]। तुलसी और केशव दोनो ही कवियो द्वारा चित्रित सीता पत्नी के शास्त्रीय आदर्श का मूर्त रूप है। दानव-गृह मे घोर भय के मध्य रही सीता को लोक और समाज के समक्ष अपनी पवित्रता की साक्षी देनी पडती है। इस सघर्ष के समय भी आदर्शपत्नी सीता विवेक एवम् धर्म का ही अवलम्ब ग्रहण करती हैं। उन्हें विश्वास है कि पतिव्रता के अटल सतीत्व के समक्ष अग्नि मक्खन के समान शीतल हो जावेगी[4]। पत्नी के इस आदर्श, स्नेह-स्निग्ध रूप पर पति को भी ममता और मोह है[5]। पति और पत्नी का स्नेह, सवेदनामय प्रेम अन्योन्याश्रित है। रामचरित मानस तथा रामचन्द्रिका में मन्दोदरी असुर नारी होने पर भी पतिव्रता है। वह पति को सद्मार्ग पर उन्मुख करने का पूर्ण प्रयास करती है। उसे कल्याणकारी तथा अशुभ कार्य करने से विमुख करती है[6]। कैकेयी के रूप मे पति का प्रेम पाकर सौभाग्यमद-गर्वित होकर प्रिय पति के विश्वास का दुरुपयोग करने वाली

---

१. "मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं, पिय-वियोग सम दुख जग नाहीं।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १८२

"सहिहौ तपन ताप पर के प्रताप रघुवीर को।
विरह वीर मो सो न सह्यो परै।"
केशव—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ० १३६ स० २००१ प० स०

२ "कहति न सीय सकुचि मन माहीं, इहाँ बसब रजनी भल नाहीं।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २६६

३ "तृन धरि ओट कहत वैदेही, सुमिरि अवधपति परम सनेही।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा, कबहुँकि नलिनी करै विकासा॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३४६

४ "जौं मन वच क्रम मम उर माहीं, तजि रघुवीर आनि गति नाहीं।
तौ कृसानु सब कै गति जाना, मो कहँ होहु श्रिखड समाना॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ४२७

५ "जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय! छाह घरीक ह्वै ठाढे।
पोछि पसेऊ वयारि करौं अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि वाढे।
तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानिकै वैठि विलम्ब लौं कटक काढे।
जानकीनाह को नेह लख्यौ पुलको तनु, वारि विलोचन वाढे।
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, द्वि० भाग (कवितावली) पृ० १६७

६ "कन्त समुझि मन तजहु कुमतिही, सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, प० ३८६

पत्नी का चरित्रांकन भी तुलसी ने किया है। निज सुत को राज्य दिलाने के क्षुद्र स्वार्थ के समक्ष वह पति को कठिनतम दुःख देती है[1]।

कृष्णभक्त-कवियों की रागानुगा भक्ति की धारा जीवन तथा परिवार के लिए उच्च आदर्श लेकर नहीं चली थी। उसमें राधा एवम् गोपीगण के रूप में प्रेयसी के रूप का ही सुन्दरतम् विकास हुआ है। राधा में स्वकीया का गौरव, मानिनी का अभिमान-स्वाधीनपतिका का सौभाग्य-विलास होने पर भी गृहिणी की गरिमा, दुःख-सुख की संगिनी के अभिराम स्वरूप की व्यंजना नहीं है। उनके महत् त्याग, एकनिष्ठ-प्रेम की महत्ता मानते हुए भी उन्हें कृष्ण की पत्नी की संज्ञा से अभिहित करना समीचीन न होगा। यशोदा के माता रूप की वात्सल्यमयी गरिमा के समक्ष 'नन्दघरनी' नगण्य हो जाती है। रीतिकाव्य में नारी केवल नायिका रूप में ही समक्ष आई। रीतिकवियों द्वारा वर्णित पत्नी विलास-शैय्या की सहचरी मात्र है। वह नवोढा मानवती, अभिसारिका आदि के रूप में ही प्रस्तुत होती है। गृह-जीवन के मध्य पति के सुख-दुःख की समसह-भागिनी का कल्याणमय रूप नहीं दृष्टिगत होता है। इन रीतिकवियों ने अपनी संकुचित दृष्टि, एकांगी जीवन-दर्शन से पत्नी को केवल रति, शारीरिक क्षुधा की तृप्ति के साधन के रूप में ही देखा। वह पति में मादकता, अपने सौन्दर्य से ज्वाला उत्पन्न कर सकती है परन्तु उसको कर्तव्य-मार्ग का निर्देश करने की क्षमता अल्पवयस्क, सुशिक्षा-वंचित पत्नी में नहीं है। उसको नारी के उदात्त आदर्शों, पत्नी के कर्तव्यों की शिक्षा ही नहीं मिली है। अपरिपक्व बुद्धिवाली पत्नी को तो सखी द्वारा मान करने, रूठने की ही शिक्षा मिली है। प्रणय अथवा विलास के अतिरिक्त उसका कुछ काम्य नहीं है। पति-प्रेम-रता पत्नी के प्रेयसी पक्ष का चित्रण रीति-काव्य में अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवम् स्वाभाविक है। विदेश गए पति के पत्र को हाथ में लेकर उसका चुम्बन कर, उसे हृदय से लगाकर, भुजाओं से भेंटती है। पुनः बारबार पढती है[2]। वस्तुतः रीतियुग के आदर्शहीन समाज में पत्नी पति द्वारा चरण वन्दना कराने में ही गौरव समझती है[3]। रीति काव्य में पत्नी के स्वरूप की पूर्ण व्यंजना नहीं हो सकी।

---

१. "लखी नरेस बात सब साची, तियमिसु मीचु सीस पर नाची।
गहि पद विनय कीन्ह बैठारी, जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १७१

२. "कर लै चूमि, चढाइ सिर उर लगाइ भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाचति धरति समेटि॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २६१ दो० ६३५

३. "पाइनि प्रेम जनाइ जिन परियै नन्द कुमार।
अनल लाल पग लसति हैं जावक लीक लिलार॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४८० द्वि० सं० १९३४

रीति-काव्य की परिस्थितियो में ही पल्लवित होने के कारण आलोच्य वीर-काव्य के पत्नी रूप मे विलास का आधिक्य है। परन्तु उसमें सतीत्व की मजुल ज्योति भी है। छत्रप्रकाश की छत्रसाल की माता लालकुँवरि अथवा इतिहास तथा अन्य काव्य-ग्रन्थो की सारन्धा में वीर पत्नी का आदर्श पल्लवित हुआ है। रण में वह अपनी कुसुम-कोमल भावनाओ का परित्याग कर शत्रु-सहार में रणचण्डी बनकर पति की रक्षा में आत्मोत्सर्ग कर देती है[1]। जटमल के 'गोराबादल की कथा' की गोरा की पत्नी मे क्षत्रिय पत्नी के इसी वीरागना रूप के दर्शन होते हैं। पति की रण में वीर-मृत्यु उसके लिए गर्व एवम् अभिमान का कारण है। क्षत्रिय पत्नी की चरम गति पति के पार्थिव अवशेष के साथ सती होने में ही मान्य रही है। वह वीर रमणी भी पति की पगडी के साथ सती हो जाती है[2]।

आलोच्यकाल में सूफीकाव्य तथा रामकाव्य का पत्नी रूप आदर्श की रेखाओ में मुखर हुआ। सीता में तो पत्नी के आदर्श, सहनशीलता, पति-भक्ति, दृढ निष्ठा आदि का सर्वांगीण विकास हुआ है। कृष्ण-काव्य में नारी का पत्नी रूप स्पष्ट नही है। रीतिकाव्य मे पत्नी केवल जीवन के एक पक्ष विलास की ही सगिनी है। स्वकीया रूप में पतिव्रता का किंचित मात्र आभास मिलता है, परन्तु पत्नी का आदर्श विलासिता से घूमिल है। पत्नी के रूप में नारी का जीवन पति की इच्छा पर ही अवलवित है। पति ही उसके लिए परमेश्वर है।

वैवाहिक आचार और नारी

हिन्दू आदर्श एवम् जीवन-दर्शन के अनुसार मानव भावनाओ के उद्दाम वेग को सयमित करने के लिए विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है। यह दो आत्माओ को जन्म-जन्मान्तर के लिए प्रणय के मधुर एवम् अविच्छिन्न बन्धन में बद्ध करने वाला पावन सस्कार है। विवाह एवम् इससे सम्बन्धित आचारो में नारी का योग अधिक है, वस्तुत इन आचारो के छोटे से विश्व की विधात्री, सूत्रधारिणी नारी ही है। नारी के स्निग्ध, स्नेहश्लथ आँचल की छाया, उसके भावप्रवण हृदय का आश्रय पाकर ही यह वैवाहिक आचार सजीव हो उठे हैं। आलोच्यकालीन जीवन एवम् काव्य दोनो में ही विवाह और उससे सम्बन्धित आचार, हास-परिहासमयी प्रथाएँ वर-परछन, आरती, मगलगान, कलेवा, वडहर, कोहवर नहछुर, विदा, वधू परिछन आदि मागलिक कृत्य नारी जीवन से गुँथे हुए हैं। विवाह के पूर्व स्वयवर की प्रथा

---

१ "त्यो ही छत्रसाल की माता, जग में एक पुन्य की त्राता।
कढ्यो कटार हाथ में लीन्हो, हुलसि पतिव्रत में मन दीन्हो॥"
लाल—छत्रप्रकाश, स० श्यामसुन्दरदास काशी, पृ० ६०

२ "नारी यह वाणी सुनी, प्रिय की पघडी साथ।
सती भई आनन्द सों सिवपुर दीन्हा हाथ॥"
जटमल—गोरा-बादल की कथा, स० अयोध्याप्रसाद, पृ० ३३, १६८१ स० प्रयाग

का उल्लेख रामचरितमानस में दो स्थान पर मिलता है मोहिनी तथा सीता का स्वयवर[1]। रामचन्द्रिका में भी स्वयवर का उल्लेख है[2]। परन्तु, वास्तव में यह स्वयवर का वर्णन केवल प्रथा के रूप में हुआ है। क्षत्रिय जाति में भी अब स्वयवर की प्रथा का प्रचलन कम था। आलोच्यकालीन स्वयवरो में वर की शक्ति और शौर्य की परीक्षा ली जाती थी[3]। अपवाद रूप में कन्या की रुचि प्रमुख होती थी[4]। परम्परा के रूप में वर्णित स्वयवरो के विवरण से ज्ञात होता है कि आलोच्य साहित्य में वर्णित समाज मे नारी को अपना वर चुनने का यत्किंचित अधिकार उपलब्ध था।

सूरसागर मे रुक्मिणी अपने परिजनो का विरोध कर कृष्ण को पत्र भेज कर उनसे परिणय करती हैं[5]। मूक और सकोचशीला नारी अपने जीवन के इस महत्वपूर्ण सस्कार के अवसर पर गाय के समान किसी भी खूंटे से नही बँध जाती, प्रत्युत् वह जागरूक हो विद्रोह करके स्वय उपयुक्त वर का निर्वाचन करती है। यद्यपि स्वय-वर की प्रथा का उल्लेख केवल रामकाव्य मे ही उपलब्ध है, किन्तु सूफी नायिकाओ के विवाह भी इस प्रकार से स्वयवर ही हैं।

विवाह के समस्त आचारो और प्रथाओ में नारी की ही प्रधानता मिलती है। आलोच्य काव्य में वर्णित वैवाहिक आचारो मे वर एवम् कन्या की माता, भगिनी, भाभी आदि नारियो का ही सक्रिय योग मिलता है। मध्ययुगीन साहित्य में प्राप्त विवरण मे विवाह का सर्वप्रथम आचार नहछू है। उन छोटे से सस्कार में भी जननी

---

१ "सखी-सग लै कुँअरि तब चलि जनु राज-मराल।
देखत फिरै महीप सब कर सरोज जयमाल॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ६१, १६८० काशी
"रगभूमि जब सिय पगु धारी। देख रूप मोहे नर नारी।
हरषि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १०७

२ "सीता जू रघुनाथ को अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की हृदयावलि भूपाल॥"
केशव—रामचन्द्रिका, दीन पृ० ७२, स० २००१ इलाहाबाद

३. "कुँवरि मनोहरि विजय बडि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार विरचि जनु रचेउ न धनु-दमनीय॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १०८

४ "धरि नृप तनु तहँ गएउ कृपाला। कुँअरि हरषि मेलेउ जयमाला।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ६०

५ "द्विज पाती दै कहियो स्यामहि।
कुन्डिनपुर की कुँवरि जरति तिहारे नामहि॥"
सूर—सूरसागर द्वितीय भाग, पृ० १६५०, पद ४१६८।४७६०
सूरसमिति काशी

की ही प्रधानता है। वह पुत्र के सिर पर कल्याणमय आँचल रखे हुए नाइन को नहछुर का आदेश देती है। नहछुर भी 'अति गुनखानि नाइन' ही करती है, नाई नहीं[१]। नहछुर के उपरान्त दूसरा आचार वर-परछन है। इस आचार में भी वधू की माता की ही प्रधानता है। यह विवाह प्रजापत्य की कोटि मे ही आते हैं। जब मगल वाद्यो के मध्य बारात द्वार पर आती है तब वधू की माता तथा अन्य सुमगला नारियाँ मगल-गान करती हुई परछन करती हैं। पार्वती-विवाह में भी माता कचन के थाल से आरती करती है[२]। विवाह-अवसर पर पुरोहित का आदेश पाकर कुल की वयप्राप्त महिलाओ तथा विप्रवधू के द्वारा ही कुल-रीतियाँ सम्पादित कराई जाती है। सीता का वधूवेष में शृगार कर उनकी सखियाँ उन्हें मडप में ले आती हैं। तुलसी ने इस तथ्य पर भी प्रकाश नही डाला है कि विवाह के मागलिक आचारो में विधवाएँ भाग ले सकती थी अथवा नही। कालिदास के काव्य में तो वधू का शृगार अविधवा और पुत्रवती नारी ही करती है[३]। सम्भवत सोलह-शृगारो से सज्जित गजगामिनियो से तुलसीदास तात्पर्य सौभाग्यवती नारी से ही रहा होगा[४]।

मधुपर्क आदि मगल द्रव्यो की व्यवस्था होती है, कलश स्थापना होती है। विवाह लौकिक और वैदिक दोनों ही रीतियो से सम्पन्न होता है। जनक कन्या को राम को समर्पित करते हैं[५]। इसके उपरान्त भाँवरि होती है। वर कन्या के मस्तक को सिन्दूर के साथ अनन्त सौभाग्य से रजित करता है। कन्या-सम्प्रदान सूफी काव्यो में भी मिलता है। कुतुबन वैवाहिक सम्बन्ध को अटूट और अविच्छिन्न

---

१ तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, रामलला नहछू, पृ० ४, १९८० काशी

२ "नयन नीर हठि मगल जानी, परिछन करहिं मुदित मन रानी।
वेद-विहित अरु कुल आचारू, कीन्ह भली विधि सब व्यवहारू॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १३५

"मैना शुभ आरती सँवारी, सग सुमगल गावहिं नारी।
कचन थार सोह वर पानी, परिछन चली हरहिं हरषानी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ४५

३ "वधू का मडन बड़े विस्तार से होता था। वह मडन केवल ऐसी अविधवाएँ ही करती थीं जिन्होंने पुत्र उत्पन्न किए हो।
भगवतशरण उपाध्याय—कालिदास युगीन भारत, पृ० १२६, १९८० काशी

४ "चली ल्याह सीतहि सखी आदर सजि सुमगल भामिनी।
नवसत साजे सुन्दरी सब मत कुन्जर गामिनी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १३६, १९८० काशी

५ "करि लोक-वेद-विधानु कन्यादानु नृप भूषन कियो।'
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १३८, १९८० स० काशी

बताकर उसी को सत्य वन्वन मानते हैं[1]। चित्रसेन कुश और जल लेकर कन्या-दान करते हैं[2]। विवाह में नारी से अपना तन, मन, यौवन सभी का पूर्ण समर्पण वाछित है[3]। मध्ययुगीन वैवाहिक आचारों में नारी की स्थिति अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। कुलदेव कलश और सिल की पूजा होती है, वर-वधू को पारस्परिक स्नेह की स्थिरता को दृढ करने के लिए अखण्डता का प्रतीक ध्रुव दिखलाया जाता है[4]। किन्तु वैदिक विवाह की ऋचा के गौरवपूर्ण आशीर्वचन पत्नी को आलोच्ययुग के काव्य में नही मिलते हैं, वरन् राजा जनक राजा दशरथ से सीता आदि को दारिका, परिचारिका समझ कर उनका करुणापूर्वक पालन करने का अनुरोध करते हैं। यह तो वधू पक्ष वालो की विनम्रता और शालीनता में आ जाता है। परन्तु वास्तव में पूरे आलोच्य साहित्य मे वैवाहिक आचारों में नारी का वह उज्ज्वल, गरिमामय रूप दृष्टिगत नहीं होता है। हाँ, इनका यह महत्व अवश्य है कि वैवाहिक आचारो में नारी को अपनी समस्त वेदना और दुख का विस्मरण होकर हास और परिहास के मध्य विश्रान्ति और सन्तोष मिलता होगा। विवाह-उपरान्त कोहवर में ले जाकर परस्पर हास-परिहास होता है, उसका चित्रण आलोच्य काल के अनेक कवियो ने किया है। कोहवर में मधुर गीतो की ध्वनि, मृदुल हास्य व्यंग्यों के मध्य वर-वधू एक दूसरे को लहकौरि खिलाते है। तुलसी के काव्य में इसका वर्णन अधिक है[5]। इस समय वर-

---

१ "पढ़ी वेद वामन वेदुआई, चित्रावली सुजानहि लाई।
ततखन आन कीन्ह गठजोरा, वन्धन सो छूट न छोरा॥"

उस्मान—चित्रावली, जगमोहन सम्पादित, पृ० २०२

२. "चित्रसेन पुनि लै कुश पानी, सकल्पी धिय सब जानी।"

उस्मान—चित्रावली, जगमोहन सम्पादित, पृ० २०२

३ "पुनि धनि भरि अजलि जन लीन्हा, जोबन जरम कन्त कह दीन्हा।"

जायसी—पद्मावत, माताप्रसाद गुप्त सम्पादित, पृ० ३१५
१९५२ इलाहाबाद

४ "पूजे कुल गुरु देव, कलस सिल सुभ धरी,
लावा होम विधान वहुरि भाँवरि परी।
वन्दन वदि, ग्रथिविधि करि ध्रुव देखेउ।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा भाग, पार्वती मगल, पृ० ४१

५ "कोहबरहि आनि कुँअरि सुआसिनिन्हि सुख पाइकै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मगल गाइकै।
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सिय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास-विलास-रस वस जनमु को फल सव लहैं।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पहला भाग, पृ० १४१, १९८० स० काशी

वधू को जुवाँ भी खिलाया जाता है[1]। ककन खोलने में परस्पर स्पर्धा होती है[2]। इन समस्त प्रथाग्रो में सखियाँ तथा अन्य सुआसिनी नारियाँ योग देती हैं। अत विवाह समय के इस आनन्दोल्लास का आलोच्य-युग की विवश, दासता की शृंखलाओ में बद्ध, गृह की चहार दिवारी के सीमित क्षेत्र में रहने वाली नारी के जीवन में पर्याप्त महत्त्व रहा होगा।

विवाह के उपरान्त जेवनार आदि के समय गाली गाने की प्रथा का भी उल्लेख आलोच्य साहित्य में हुआ है। वैवाहिक कार्यक्रम समाप्त होने पर वधू पति-गृह आती है। वर की माता पुत्रवधू का मुख देखकर हर्ष-विभोर होकर परछन करती है[3]। वर-वधू के कल्याणार्थ समस्त मागलिक सामग्री एकत्रित कर आरती उतारती है। इस वैवाहिक आचार में नारी को पर्याप्त महत्त्व मिला है। श्वसुर-गृह में आई हुई नारी का स्वागत सुख-सौभाग्य और सास का स्नेह करता है। वधू को अखण्ड सौभाग्य का आशीर्वाद मिलता है[4]।

आलोच्य युग के वैवाहिक आचारो से तत्कालीन नारी की स्थिति पर भी यत्किंचित प्रकाश पडता है। विवाह मे केवल कन्या समर्पण ही दिखलाया है, वर कोई प्रतिज्ञा आदि नही करता है। सम्भवत नारी के लिए तो विवाह अविच्छिन्न

---

१ "सीता अरु राम जुवा खेलत जनक धाम।
सेनापति देखि नयन नेकहु न मटकै॥"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, उमाशकर शुक्ल सम्पादित, पृ० ७९
१९४८ प्रयाग

२ "कर कपै ककन नहि छूटै।
रामसिया कर परस मगन भए।
कौतुक निरखि सखी सब सुख लूटै।
गावत गारि नारि सब दै दै तात भ्रात की कौन चलावै।
तव कर डोरि छूटै तब जब कौसल्या माता आवै।
पुगीफलयुत जल निर्मल आनी भरि कुडी जो कनक की।
खेलत जूप सकल जुवतिन मे हारे रघुपति जिती जनक की।"
सूर—सूरसागर, नवम् स्कन्ध, पृ० १९५, सूर समिति

३ "उमँगि उमँगि आनन्द विलोकति वधुन सहित सुतचारी।
तुलसीदास आरती उतारति प्रेम-मगन महतारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ३३१ पद १०७ गीतावली

४ "मुदित मन आरति करै माता।
कनक वसन मनि वारि वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता।
पालागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत साता।
देहि असीस 'ते वरिस कोटि लगि अचल होउ अहिवाता'।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ३३१ पद १०८

सम्बन्ध होगा, पर वर उसको भग कर सकता होगा। तुलसी ने कहा है विप्र-वेप रखकर वेद स्वय विवाह-विधि करते हैं, पर वह विवाह-विधि क्या है ? उससे वर और कन्या की स्थिति में क्या अन्तर होता है, आदि पर प्रकाश नही डाला है। नारी की सामाजिक स्थिति-विषयक कोई ज्ञान नही प्राप्त होता है। इन वैवाहिक आचारो का एक महत्त्व अवश्य नारी के जीवन में था, जिसका उल्लेख किया जा चुका है। नारी का केवल पारिवारिक जीवन के आचारो में महत्व था। विवाह के निश्चित करने, अन्य विवाह सम्बन्धी प्राथमिक आचारो में कन्या तथा वर के पिता आदि का प्रमुख भाग होता था।

शिक्षा और नारी

समाज का व्यक्ति, उसके द्वारा निर्दिष्ट नियमो का ही आधार मान कर चलता है। आचारशास्त्र में उल्लिखित तथा स्वजनों, गुरुजनो, गुरु, शिक्षक आदि से उपलब्ध निर्देश ही जीवन-पथ पर उसके सवल होते हैं। स्वभाव से ही कोमल नारी परिस्थितियों के द्वारा पराश्रयी तथा परमुखापेक्षी वनी। नियामको ने उसके कर्तव्य-मार्ग का विधान किया। हिन्दू सस्कृति ही नारी को धरित्री सदृश सहनशीलता, उत्सर्ग, कर्तव्य-पालन, करुणा की शिक्षा देती है। एकनिष्ठ पति-प्रेम और भक्ति ही उसकी चरम गति वताई गई है[1]। आलोच्यकाल की इस्लाम के साथ सम्पर्क से परिवर्तित होती हुई परिस्थितियो मे पति को परमेश्वर समझने की प्रवृत्ति वलवती हो गयी थी। प्रधानत पुरुषो द्वारा रचे हुए मध्ययुगीन काव्य में यह एकपक्षीय आदर्श ही प्रतिध्वनित हुआ।

आलोच्य काल के साहित्य मे नारी शिक्षा-निकेतन आदि का किसी प्रकार का उल्लेख उपलब्ध नही है। गृह के सकुचित वातावरण में माता, पिता या किसी गुरुजन से ही सभवत नारी अक्षर-ज्ञान कर लेती होगी। विवाह से पूर्व माता, पिता, सखी आदि से वार्तालाप के मध्य नारी को अपनी कर्तव्य विषयक शिक्षा मिलती है[2]। कही कवि कथा-प्रसग में किसी भी पात्र द्वारा नारी-धर्म का कथन करता है[3], अथवा स्वय ही नारी को कर्तव्य की शिक्षा देते हुए, उसके लिए नियमावली निर्धारित करता है।

---

१ "सहज अपावन नारि पति सेवत सुभ गति लहै।
जसु गावत श्रुति आजहु तुलसिका हरिहिप्रिय।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० २८६

२ उस्मान—चित्रावली, पृ० २२५
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली प्रथम भाग, (पार्वती विदा) (सीता विदा) पृ० ४८, पृ० १४४

३. तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, (अनुसुइया द्वारा शिक्षा) पृ० २८६
केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध पृ० ३३४ (राम द्वारा कौशल्या को उपदेश)

आलोच्य साहित्य में ललित कलाओ की शिक्षा के लिए शाला थी या नही इस विषय का कोई विवरण सूफी साहित्य में भी नही मिलता। जायसी-ग्रन्थावली में पांच वर्ष की अवस्था में पद्मावती को शास्त्र पढने बैठा दिया जाता है[1]। पर इस विषय मे कवि मौन है कि वह गृह पर ही किसी शास्त्रविद् पण्डित से शिक्षा पाती रही अथवा उसका विद्याध्ययन पाठशाला में हुआ। अन्य आलोच्य काव्यो मे भी नारी की शिक्षा, उसकी पद्धति अथवा शास्त्रीय विधि सम्बन्धी विवरण नही मिलता है।

सूफी-काव्य मे चित्रसारी के विवरण से ज्ञात होता है कि आलोच्यकाल में नारी ललितकलाओ, चित्रकला आदि से भिज्ञ होती थो। चित्रावली द्वारा अकित उसका चित्र देख कर सुजान मुग्ध हो जाता है। उस सौन्दर्य का अकन करने वाली रेखाएँ अवश्य कलाकुशल करो द्वारा खीची गयी होगी[2]। माधवानल-कामकदला की नायिका, नृत्य आदि सगीत कलाओ से अभिज्ञ है[3]।

रामकाव्य में भी नारी की क्रमिक शास्त्रीय शिक्षा का कोई रूप नही उपलब्ध है। राम के लिए गोस्वामी जी निर्देश करते हैं कि उन्होने अल्पवयस में ही समस्त वेद और शास्त्रों पर आधिपत्य पा लिया, पर सीता की शिक्षा-दीक्षा के विषय में कोई कथन नही किया। उस समय की स्त्रियाँ ललितकलाओ में दक्ष, सगीत, वाद्य की प्रेमिका होती थी[4]।

सन्तकाव्य प्रधानत गीति अथवा मुक्तक काव्य है। उसमें भक्त कवियो ने स्वय को 'राम की बहुरिया' मान कर दाम्पत्य भाव के प्रतीक के द्वारा अपने हृदय-गत भावो की अभिव्यक्ति की। भावनाप्रधान होने के कारण उसमे नारी की शिक्षा-दीक्षा अध्ययन सम्बन्धी कोई निर्देश उपलब्ध नहीं है। पतिव्रता के आदर्श स्वरूप की व्याख्या करते हुए, अवश्य सन्त कवियो ने नारी को पातिव्रत एवम् एकनिष्ठ प्रेम की शिक्षा दी[5]। समस्त सन्त कवियो में शिक्षा का यही रूप

---

१ "भै पदुमावति पडित गुनी, चहूँ खण्ड के राजन्ह सुनी।
× × ×
एक पदुमिनी और पडित पढी, दहुँ केहि जोग दैय असि गढी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त सपादित, पृ० १५५ १९५२ इलाहाबाद

२ "नैन लगाय रहेउ मुख वौरा। चित्रचाद भा कुँवर चकोरा।
सुधि विसरी वुधि रही न गा वौराइ प्रेममद पिये॥"
उस्मान—चित्रावली

३ आलम—माधवानल-कामकदला, पृ० १९२ हिन्दी के कवि और काव्य तीसरा भाग

४. केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध पृ० १७३, २२०

५ "अपने घर का दुख भला पर घर का सुख छार।
ऐसे जानै कुल वधू सो सतवन्ती नार।"
चरणदास—चरनदास की वानी, वेलवेडियर प्रेस, पृ० ४७, १९०८

उपलब्ध है।

कृष्ण-काव्य मे कृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति के अन्तर्गत कृष्ण-राधा एवम् गोपियो की प्रणय-लीला का चित्रण हुआ। कृष्णकवियों विशेषत सूर की राधा प्रगल्भ, वाक्चतुर एवम् प्रत्युत्पन्न मति वाली है, पर उसके इस नैपुण्य का आधार किसी प्रकार की शिक्षा है, अथवा नही, यह विवरण नही मिलता है राधा की माता, राधा को समय पर घर आने और केवल लडकियो के साथ ही खेलने की शिक्षा देती हैं, किन्तु वह केवल घरेलू सीख मात्र है[1]। रम्यरास के समय विहार के लिए आई हुई गोपियो एवम् राधा को कृष्ण भी पतिभक्ति, एवम् परिवार की मर्यादा-पालन की शिक्षा देते हैं[2]।

वीरकाव्य में भी नारी की शिक्षा उसकी विद्वता का कोई निर्देश नही मिलता है। मान के राजविलास मे राजा राजसिंह को पत्र भेजने वाली रूपनगर की राजकन्या शिक्षित प्रतीत होती है[3]। केशव के वीरसिंह देव चरित में, वीरसिंह-देव की रानियो की दिनचर्या से प्रकट है कि वह पठन-पाठन में अपना समय व्यतीत करती हैं। वह ललित कलाओ में भी पारगत हैं[4]।

रीतिकाव्य मे कवि नायिकाभेद, शृगार के विभिन्न रूपो के भेद एवम्

---

१ "अब राधा तू भई सयानी।
मेरी सीख मानि हिरदय धरि, जंह-तंह डोलति बुद्धि अयानी।"
सूर—सूरसागर, प्रथम भाग, दशम स्कध, पृ० ८१०, १७१६-२३३४

२ "घर ही मैं तुव धर्म सदाई, सुतपति दुखित होत तुम जाहु।
सूर स्याम यह कहि परमोधत सेवा करहु जाइ घर नाहू।।"
सूर—सूरसागर प्रथम भाग पृ० ६११, १०१५-१६३३

"इहि वेद-मारग सुनौ।
कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ।
कंत मानहु भव तरौगी, और नाहिं उपाइ।
ताहि तजि क्यों विपिन आइ, कहा पायौ आइ।
बिरध अरु बिन भागहूं कौ पतित जौ पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ।"
सूर—सूरसागर, प्रथम भाग, पृ० ६११ पद १०१६-१६२४

३ राज—मान-विलास, पृ० १०७

४ "तहं रमनि राजति बहुं भाँति, पदमिनी चित्रिनि हस्तिनि जानि।
गवा कँह वजावति वीन कहूं पढावति पढति प्रवीन।"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २५०

"सूक्षमवाणी दीरघ अर्थ पढति पढ़ावति सुकनि समर्थ
दक्षिण दशा कहावै वाम, गुनगन वलित सुअवला नाम।।
केशव – वीरसिंहदेव चरित पृ० २६६

विस्तार में इतने उलझे रहे कि अन्य किसी विषय पर प्रकाश डालना, ध्यान देना उनके लिए असम्भव ही सा था। तत्कालीन समाज में नैतिकता के मान शिथिल थे, समाज का प्रत्येक व्यक्ति वर्ग की विलासी सस्कृति का पोषक था। नारी को सभवत ललित कला तथा सगीत आदि की शिक्षा दी जाती हो। रीतिकाल की शिक्षा का रूप ही भिन्न है, सखी शिक्षा देती है पर मान छुड़ाने के लिए। नारी-धर्म का कोई आदर्श इन कवियों ने प्रत्यक्षत प्रस्तुत नही किया। शिक्षा देना सखी का काम माना गया[1]।

सूफी काव्य में शिक्षा का एक दूसरा रूप भी उपलब्ध है। मातृगृह में स्नान करते समय सखियाँ पति को अपने वश मे रखने एवम् नियमित तथा सयमित व्यवहार द्वारा अपने पति तथा ससुराल वालो को मुग्ध करने पर विचार करती हैं। पति की आज्ञापालन और भक्ति से ही जीवन सार्थक हो सकता है[2]। चित्रावली में भी सखियाँ चित्रावली को मधुर भाषण एवम् क्रोध पर सयम रखने की शिक्षा देती हैं। ससुराल में प्रत्युत्तर देने अथवा रोष करने से कुल को अपयश का भागी होना पडेगा[3]।

विदा समय पुत्री को उपदेश देने की परम्परा का उल्लेख अभी किया जा चुका है, यह परम्परा सूफी तथा रामकाव्य दोनो में ही अपनी सम्पूर्ण मार्मिकता सहित उपलब्ध है। विदा की मार्मिक बेला है, स्नेहपालिता पुत्री स्वजनो से विलग होकर अपरिचित गेह में जा रही है। अपरिचित गेह, अनजाने व्यक्तियो को उसे अपने स्नेहस्निग्ध व्यवहार से अपना बनाना है। बहुत सभव है, उसे नवगृह में विरोध, कटुता, दुर्व्यवहार सहना पडे, पग-पग पर कुवचन, और अपशब्द उसका स्वागत करें। अत नारी को विदा होते समय पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए उपयुक्त ही उपदेश मिला है[4]।

---

१ "मडन अरु शिक्षा करन, उपालभ परिहास।
काज सखी के जानियो, औरो बुद्धि बिलास॥

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० २३३, द्वि० स० १९३४

२ "माता पिता वियाही सोई। जन्म निवाह पिय सो होई।
भरि जमवर चहै जहँ रहा, जाइ न मेटा ताकर कहा।
ताकह बिलब न कीजै बारी। जो आयसु सोइ पियारी।
चलहु बेग आयम भा जैसे। कत बोलावै रहिये तैसे॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२५

"बोलत ऊँच सास देइ गारी, ननदी बीच बोल बेवहारी।
रिस आइब राखब जिउ मारी, रिस कीन्हें आवे कुलगारी॥"

उस्मान—चित्रावली पृ० ४६

"सकल जन्म नैहर सुख सारा, अब तुम चलहु जहाँ ससुरारा।
कठिन आहि ससुरार की रीती, सोई जान जाहि सिर बीती।

गुरुजन माता पिता, अन्य स्वजनो कथा पुराणो से सुनी हुई जो कुछ भी शिक्षा नारी को मिलती है, उसका सार अपने व्यक्तित्व, आकाक्षाओ को विस्मृत कर अनासक्त भाव से गुरुजनो की सेवा करना है। सूफी कवियो के काव्यो में इस प्रकार के अन्य शिक्षा-वचन उपलव्ध हैं। गृह-परिजन-सेवा, नि शब्द आज्ञा-पालन सहनशीलता और पातिव्रत का अवलम्ब ही नारी के लिए श्रेयस्कर वताया गया[1]। रामकाव्य में तुलसी ने सीता और पार्वती दोनो को कुलरीति और नारी-धर्म की शिक्षा विदा समय मिलने का उल्लेख किया है। पति के प्रेम और आदर की प्राप्ति ही नारी जीवन की सार्थकता वताई गई। नारी के लिए सवसे वडा देव एवम् पूज्य पति ही है, अत उसका आदेश-पालन ही आनन्द और सौभाग्य का आवाहक है[2]।

नारी जीवन त्याग और उत्सर्ग की अश्रुप्लावित कहानी है, उसके जीवन का मूलमत्र ही सेवा-मान रहित सेवा-तथा ईर्ष्या द्वेष का परित्याग है। अपने जीवन से राग और द्वेष का परिहार कर उसे सपत्नी के साथ भी सद्व्यवहार करना अपेक्षित है। मानहीन सेवा एवम् क्रोधदमन यह मदनारी के मापमान हैं। इन्ही

अव तो धरि दुइ माह पिय लै गौनहि गहि वाँहि।
वचन दुइ एक उपदेशहित, कहौ धरव जिय माँहि॥
सजग रहव गवने ससुरारा, अहितअलेखित हित दुइ चारा।
पर आपन जौ लौ न चिन्हाई, सव सो राखव वदन छिपाई।
ओवरी भा रहव दिन गोई, आंगन होव रात जव होई।
वैसव सदा वार दै पीठी, परै न सौंह आनकी दीठी॥"

उस्मान—चित्रावली पृ० २०३

१ "उतर न देव कहै जो कोई, लाजव रहव चरन तर गोई।
औ चित लाइ करव पिय सेवा, एक पीउ दोउ जग सुखदेवा॥
मत्र तत्र साधक जनि कोइ, सेवा एकपीउ वस होई।
जो वस होइ तो गरव न करिये। आप अधीन होइ मन हरिये।

उस्मान—चित्रावली पृ० २२३

२ "करेहु सदा संकर पद पूजा, नारि धरम पतिदेव न दूजा।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली पृ० ४८

"वहु विधि भूप सुता समुझाई। नारि धरम कुलरीति सिखाई।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १४६

"पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं, देईं असीस सिखावन देही।
होयेहु सतत पियहि पिआरी, चिरु अहिवात असीस हमारी।
सास-ससुर गुरु सेवा करेहू, पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू।
अति-सनेह-वस सखी सयानी, नारिधरम सिखवहिं मृदु वानी।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १४४

विस्तार मे इतने उलझे रहे कि अन्य किसी विषय पर प्रकाश डालना, ध्यान देना उनके लिए असम्भव ही सा था। तत्कालीन समाज में नैतिकता के मान शिथिल थे, समाज का प्रत्येक व्यक्ति वर्ग की विलासी सस्कृति का पोषक था। नारी को सभवत ललित कला तथा सगीत आदि की शिक्षा दी जाती हो। रीतिकाल की शिक्षा का रूप ही भिन्न है, सखी शिक्षा देती है पर मान छुडाने के लिए। नारी-धर्म का कोई आदर्श इन कवियो ने प्रत्यक्षत प्रस्तुत नही किया। शिक्षा देना सखी का काम माना गया[1]।

सूफी काव्य में शिक्षा का एक दूसरा रूप भी उपलब्ध है। मातृगृह में स्नान करते समय सखियाँ पति को अपने वश में रखने एवम् नियमित तथा सयमित व्यवहार द्वारा अपने पति तथा ससुराल वालो को मुग्ध करने पर विचार करती हैं। पति की आज्ञापालन और भक्ति से ही जीवन सार्थक हो सकता है[2]। चित्रावली में भी सखियाँ चित्रावली को मधुर भाषण एवम् क्रोध पर सयम रखने की शिक्षा देती हैं। ससुराल में प्रत्युत्तर देने अथवा रोष करने से कुल को अपयश का भागी होना पडेगा[3]।

विदा समय पुत्री को उपदेश देने की परम्परा का उल्लेख अभी किया जा चुका है, यह परम्परा सूफी तथा रामकाव्य दोनो में ही अपनी सम्पूर्ण मार्मिकता सहित उपलब्ध है। विदा की मार्मिक वेला है, स्नेहपालिता पुत्री स्वजनो से विलग होकर अपरिचित गेह में जा रही है। अपरिचित गेह, अनजाने व्यक्तियो को उसे अपने स्नेहस्निग्ध व्यवहार से अपना बनाना है। बहुत सभव है, उसे नवगृह में विरोध, कटुता, दुर्व्यवहार सहना पडे, पग-पग पर कुवचन, और अपशब्द उसका स्वागत करें। अत नारी को विदा होते समय पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए उपयुक्त ही उपदेश मिला है[4]।

---

१ "मडन अरु शिक्षा करन, उपालभ परिहास।
काज सखी के जानियो, औरो बुद्धि विलास॥
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० २३३, द्वि० स० १९३४

२. "माता पिता बियाही सोई। जन्म निवाह पिय सो होई।
भरि जमवर चहै जहँ रहा, जाइ न मेटा ताकर कहा।
ताकहु विलब न कीजै वारी। जो आयसु सोइ पियारी।
चलहु वेग आयम भा जैसे। कत बोलावै रहिये तैसे॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२५

३. "बोलत ऊँच सास देइ गारी, ननदी बीच बोल बेवहारी।
रिस आइव राखव जिउ मारी, रिस कीन्हें आवे कुलगारी॥"
उस्मान—चित्रावली पृ० ४६

४ "सकल जन्म नैहर सुख सारा, अव तुम चलहु जहाँ ससुरारा।
कठिन आहि ससुरार की रीती, सोई जान जाहि सिर बीती।

गुरुजन माता पिता, अन्य स्वजनो कथा पुराणो से सुनी हुई जो कुछ भी शिक्षा नारी को मिलती है, उसका सार अपने व्यक्तित्व, आकाक्षाओ को विस्मृत कर अनासक्त भाव से गुरुजनो की सेवा करना है। सूफी कवियो के काव्यो में इस प्रकार के अन्य शिक्षा-वचन उपलब्ध हैं। गृह-परिजन-सेवा, नि शब्द आज्ञा-पालन, सहनशीलता और पातिव्रत का अवलम्ब ही नारी के लिए श्रेयस्कर बताया गया[1]। रामकाव्य में तुलसी ने सीता और पार्वती दोनो को कुलरीति और नारी-धर्म की शिक्षा विदा समय मिलने का उल्लेख किया है। पति के प्रेम और आदर की प्राप्ति ही नारी जीवन की सार्थकता बताई गई। नारी के लिए सबसे बडा देव एवम् पूज्य पति ही है, अत उसका आदेश-पालन ही आनन्द और सौभाग्य का आवाहक है[2]।

नारी जीवन त्याग और उत्सर्ग की अश्रुप्लावित कहानी है, उसके जीवन का मूलमत्र ही सेवा-मान रहित सेवा-तथा ईर्ष्या द्वेष का परित्याग है। अपने जीवन से राग और द्वेष का परिहार कर उसे सपत्नी के साथ भी सद्व्यवहार करना अपेक्षित है। मानहीन सेवा एवम् क्रोधदमन यह मदनारी के मापमान हैं। इन्हीं

अब तो घरि दुइ माह पिय लै गौनहि गहि बाँहि।
वचन दुइ एक उपदेशहित, कहौ धरव जिय माँहि ।।
सजग रहव गवने ससुरारा, अहितअलेखित हित दुइ चारा।
पर आपन जो लौ न चिन्हाई, सव सो राखव वदन छिपाई।
ओवरी भा रहव दिन गोई, आगन होव रात जव होई।
वैसव सदा वार दै पीठी, परै न सौंह आनकी दीठी ।।"

उस्मान—चित्रावली पृ० २०३

१ "उतर न देव कहै जो कोई, लाजव रहव चरन तर गोई।
औ चित लाइ करव पिय सेवा, एक पीउ दोउ जग सुखदेवा ।।
मत्र तत्र साधक जनि कोइ, सेवा एकपीउ वस होई।
जो वस होइ तो गरव न करिये। आप अधीन होइ मन हरिये।

उस्मान—चित्रावली पृ० २२३

२ "करेहु सदा सकर पद पूजा, नारि धरम पतिदेव न दूजा।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली पृ० ४८

"बहु विधि भूप सुता समुझाई। नारि धरम कुलरीति सिखाई।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १४६

"पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं, देई असीस सिखावन देही।
होयेहु सतत पियहि पियारी, चिरु अहिवात असीस हमारी।
सास-ससुर गुरु सेवा करेहू, पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू।
अति-सनेह-वस सखी सयानी, नारिधरम सिखवहिं मृदु बानी।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १४४

आदर्श रेखाओ पर चल कर वह नारी जीवन की सार्थकता की प्राप्ति कर सकती है[3]। आलोच्य काव्य में नारी को विवाहोपरान्त भी पातिव्रत एवम् स्वधर्म-पालन की शिक्षा दी जाती थी। राम वन-गमन को प्रस्तुत है, सुकुमारी सीता उनके साथ जाने को उद्यत, उस समय रामचन्द्र उन्हें सास-ससुर की पदवन्दना, उनकी सेवा ही उत्कृष्ट धर्म बताते हैं[1]।

आलोच्यकाल के साहित्य एवम् आचारशास्त्र सभी की सम्मिलित ध्वनि यही है कि नारी के लिए सबसे बडा पुण्य, धर्म और कर्तव्य पतिपूजा ही है। पति द्वारा प्रदत्त यातनाओ और कष्टो को सहना ही श्रेयस्कर एवम् सुख का मूल है[2]। पति-सेवा ही नारी को परमगति प्राप्त करने का सुगमतम् उपाय है। तत्कालीन समाज का पातिव्रत का आदर्श ही समस्त शिक्षावाक्यो का मूल है। माता, सखी, तथा अन्य परिजनो द्वारा प्रदत्त शिक्षा से सुस्पष्ट है कि आलोच्य युग का समाज नारी से आदर्शों के अक्षरश पालन की अपेक्षा करता था।

---

३. "जिउ दुख दै सेवब सुख त्यागी, सगरी रैन गवावब जागी।
सौतिहु सग इरखा नहि करना, साइ सग सदा जिय डरना।।"

× × ×

"अलप मान सेवा अधिक रिस राखब जिय मारि।
जेहि घन मा ये तीन गुन साई सुहागिनि नारि।।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २२४

१ "राजकुमारि सिखावन सुनहू, आन भाति जिय जनि कछु गुनहू।
आपन मोर नीक जो चहहू, वचन हमार मान गृह रहहू।
आयसु मोर, सासु सेवकाई, सब विधि भामिनि भवन भलाई।
एहि ते अधिक धरम नहि दूजा, सादर सासु-ससुर-पद-पूजा।।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १८१

२ "बिनु श्रम नारि परम गति लहहीं, पतिव्रत धरम छाँड़ि छलु गहई।
पति प्रतिकूल जनम जंह जाई, विधवा होइ पाइ तरुनाई।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० २८६

'तुम क्यो चलो वन आजु जिन सीस राजनु राज।
जिय जानिवे पति देवा, करि सर्व भांतिन सेवा।
पति देइ जो अति दुक्ख, मन मानि लीजै सुक्ख।
सब जग जानि अमित्र, पति जान केवल मित्र।।"

केशव—रामचन्द्रिका पचम सस्करण (भगवानदीन) पृ० १३४
स० २००१

नारी के विविध पारिवारिक सम्बन्ध

भारतीय सस्कृति में परिवार मानव की भावनाग्रो, कोमल मनोवृत्तियो, स्नेह एवम् ममता का केन्द्रस्थल होता है। प्रेम ग्रौर स्नेह, दया ग्रौर करुणा, त्याग ग्रौर उत्सर्ग इन सभी उदात्त भावनाग्रो का प्रस्फुटन परिवार के ममत्वपूर्ण वातावरण में होता है। नारी परिवार का एक विशिष्ट ग्रग रही है, उसके जननी, जाया, पुत्री, वधू ग्रौर भगिनी रूप मानव-हृदय की स्निग्ध तरलता से ग्राप्लावित हैं। ग्रालोच्य काल में सामाजिक, साहित्यिक एवम् राजनीतिक क्षेत्र में नारी का कोई उल्लेखनीय स्थान न था। वाह्य ग्राक्रमणो से उत्पन्न ग्ररक्षित वातावरण, मध्ययुगीन ग्रपकर्षोन्मुख मनोवृत्ति तथा रुढवादिता ने ऋचाग्रो की रचना करने वाली गौरवमयी नारी के क्रिया-कलाप केवल गृह की सीमा में केन्द्रित कर दिए। वह सुकुमारी कुसुमकोमला नारी ग्रपनी कमनीयता में ही दुर्वल ग्रौर पर-निर्भर वन गई। तव भी परिवार में नारी को सतत स्नेह एवम् ममता उपलब्ध होती रही। ग्रालोच्य साहित्य के ग्राधार पर नारी के विविध पारिवारिक सम्वन्धो पर प्रकाश पडता है।

उस रुढ़िग्रस्त वातावरण में भी पुत्री-जन्म हर्ष ग्रौर ग्रानन्द का ग्रावाहक माना जाता था[1] तथा कन्यादान पुण्य का प्रतीक समझा जाता था[2]। पुत्र-जन्म ग्रधिक ग्रानन्दप्रद था, किन्तु जन्म के उपरान्त ग्रात्मजा या पुत्री परिवार के स्निग्ध स्नेह एवम् ममता की पात्री होती थी। माता के हृदय की कोमलता, पितृ-हृदय की गम्भीरता उस नयन-पुत्तलिका की भविष्य रेखाग्रो को पढने को उत्सुक हो जाती। सन्त-साहित्य के गेय रूप मे नारी का केवल एक प्रतीक रूप दृष्टिगत होता, उसमें मातृ-हृदय की स्निग्ध कोमलता का वर्णन उपलब्ध नहीं है। किन्तु रामकाव्य, कृष्णकाव्य एवम् सूफी-काव्य के प्राप्त विवरणो से नारी की परिवार में स्थिति पर प्रकाश पडता है।

तुलसी के रामचरित में हिमाचल के गृह में कन्या-जन्म होता है। उसके साथ ही सुख ग्रौर सौभाग्य की परिवृद्धि होती है। नारद मुनि के ग्राने पर पर्वतराज पुत्री द्वारा ऋषि के चरणो की वन्दना करा कर उसके शुभाशुभ जानने की ग्रभि-

---

१ "जव ते उमा सैल गृह ग्राई, सकल सिद्धि सम्पति तहँ छाई।
जहँ तहँ मुनिन सुग्रास्रम कीन्हें, उचित वास हिम भूधर दीन्हें॥"

× × ×

"निज सौभाग्य वहुत गिरि वरना, सुता वोलि मेली मुनि चरना॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम ग्रध्याय, पृ० ३३

२. "ग्रात्मजा जो होत एक होत सदन उजियार।
कन्यादान दिहे सो होतै मुकत हमार॥"

नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० ८३, हिन्दी के कवि ग्रौर काव्य भाग ३
गणेशप्रसाद द्विवेदी

लाषा प्रकट करते हैं[1]। ऋषिराज द्वारा यह सुनने पर कि उसे वृद्ध, विरोगी वर मिलेगा, मातृ-हृदय विकल हो उठता है। माता कहती है पुत्री का विवाह सुयोग्य वर से ही करना है, उसके अनुकूल वर न मिलने पर उसे आजीवन कुमारी ही रहने दो[2]। सम्भवत रामकाव्य के समकालीन आचार-शास्त्र में योग्य वर न मिलने पर पुत्री को कुमारी ही रखने का विधान न था। अविवाहित रहने पर लोक और वश में निन्दा होती थी, अत पार्वती-जननी अपनी स्नेहपालिता पुत्री को अयोग्य वर से व्याहने की अपेक्षा उसे लेकर पर्वत से गिरना, अग्नि में जलना, एवम् समुद्र में कूद पडना उत्तम समझती है[3]।

केवल जननी का ही वात्सल्य पुत्री के प्रति उत्कट नही है, प्रत्युत् पिता का गम्भीर हृदय भी पुत्री के लिए असीम स्नेह से आप्लावित है। पुत्री के विवाह अवसर पर विदा का समय अत्यन्त ही मार्मिक होता है, उस समय पिता के चिर-सचित विवेक एवम् सयम की मर्यादा भग हो जाती है[4]। सूफी-काव्य में भी इस अवसर पर के हृदयस्पर्शी चित्र मिलते हैं, जिनसे प्रमाण मिलता है कि पुत्री को परिवार में कितना स्नेह एवम् ममत्व प्राप्त था[5]। आलोच्यकाल के नारी के सामान्यत अध पतन एवम् उपेक्षा के समय भी पुत्री स्नेह एवम् ममता की पात्री है। योग्य और पुण्यवती पुत्री दोनो कुलो को तारने वाली बताई गई है।

कृष्णकाव्य मे सूर ने पुत्री के प्रति माता के असीम स्नेह का वर्णन किया

---

१ "त्रिकालग्य, सर्बग्य तुम, गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोषगुन, मुनिवर हृदय बिचारि।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३३, १९८० स० बनारस

२ "पतिहि इकान्त पाइ कह मैना, नाथ न मैं समुझे मुनि बैना।
जौ घरु बरु कुल होइ अनूपा, करिय बिवाहु सुता अनुरूपा।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३५, १९८० स० बनारस

३. "तुम्ह सहित गिरि ते गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घर जाउ अपजस होउ जग जीवत बिवाह न हौं करौं।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ४६, १९८० स० बनारस

४ "सीय बिलोकि धीरता भागी, रहे कहावत परम बिरागी।
लीन्ह राय उर लाइ जानकी, मिटी महा मरजाद ग्यान की।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १४६

५ "बिनती करै राउ औ रानी, बरखहिं नैन सेवाती पानी।
चित्रावलि अब अगसर आई, तुम जानहु और कुल की बड़ाई।
जात अहो तुम्ह सग लै, हम दुहूँ घट कर प्रान।
आव बडाई हेरि के, राखव एहि करि मान।।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० २२५

है[१]। रामकाव्य में एक वधू के रूप में वह सास और श्वसुर की नयन-पुत्तलिका है। सीता के लिए दशरथ अत्यन्त स्नेहपूर्ण वचन कहते हैं[२]। श्वसुर गृह में वधू और सास के मध्य माता और पुत्री के समान अत्यन्त स्नेहमय सम्बन्ध हैं। वधू सास के प्रति असीम एवम् अपरिमित श्रद्धा रखती और उसकी सेवा को अपना सौभाग्य समझती, सास भी वधू को जीवनाधार समझती है।

वधू सास के समक्ष पति को उत्तर देना अनुचित समझती है, अत वह प्रथम ही सास से क्षमायाचना कर लेती है, पुन उनकी चरण वन्दना कर सेवा में असमर्थ होने को अभाग्य बताती है[४]। तुलसी की आदर्शवादी मनोवृत्ति के कारण मानस में नारी के विविध पारिवारिक सम्बन्ध भी त्याग और ममता से पूर्ण हैं। देवर-भाभी का सम्बन्ध भी स्नेह और ममता का प्रतीक है। देवर के लिए भाभी मातृ तुल्य है एवम् असीम श्रद्धा तथा आदर की पात्री है। भाभी भी अपने हृदय की मगल कामनाओं का कोष उसके ऊपर बिखरा देना चाहती है[५]। सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सीता को माता मानते हैं। सीता के राम की आर्त्त वाणी सुनने पर उनकी

---

१. "राधा डरडराति घर आई।
देखति ही कीरति महतारी, हरषि कुवर उर लाई।
धीरज भयौ सुता माता हिय, दूरि भयौ तनु सोच,
मेरी को मैं काहे त्रासी, कहा कियौ यह पोच॥"
सूर—सूरसागर द्वितीय भाग, पृ० ९४२, पद २०१५।२६३३

२ "वधू लरकिनी पर घर आई, राखेउ नयन-पलक की नाई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १५२
"लिए गोद करि मोद समेता, को कहि सकै भयेउ सुख जेता।
वधू सप्रेम गोद बैठारी, बार बार हिय हरषि दुलारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १५२

३. तात सुनहु सिय अति सुकुमारी, सास ससुर परिजनहि पियारी।
नयन पुतरि करि प्रीति बढाई, राखेउ प्रान जानकिहि लाई।
कलप बेलि जिमि बहु विधि लाली, सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १८०

४ "तब जानकी सासु पग लागी, सुनिय मात मैं परम अभागी।
सेवा समय दैव बन दीन्हा, मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १८४

५ "सानुज भरत उमगि अनुरागा, धरि सिर सियपद-पदुम-परागा।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए, सिर करकमल परसि बैठाए।
सीय असीस दीन्ह मन माहीं, मगन-सनेह देह सुधि नाहीं।
सब विधि सानुकूल लखि सीता, भै निसोच उर अपडर बीता।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २५१

आज्ञानुसार लक्ष्मण को कुटी तज कर चले जाना पडता है पर जनकजा का असीम स्नेह उन्हे बारम्बार पीछे घूम कर देखने को विवश कर रहा है[1]। गृह तथा बन दोनो स्थानो में सीता सासो की यथाशक्ति सेवा करती रहती है, राजतिलक होने पर भी कौशल्यादि सासो की निरभिमान सुश्रूषा करती रहती है[2]।

सूफी-काव्य में माता के घर नारी अवश्य स्नेह और आदर, ममता और वात्सल्य की पात्री है। पर श्वसुरालय की कल्पना, ननद, सास के कटु व्यवहार को लिए हुए है। पितृ-गृह सुख का आवास है, जब तक पुत्री माता-पिता के वात्सल्य की मधुमयी छाया में है तभी तक वह अपने इच्छानुकूल खेल-कूद और आमोद-प्रमोद का उपभोग कर सकती है। पुन उसे ससुराल जाना होगा, जहाँ की दुखद, भयपूर्ण कल्पनाएँ उसके वर्तमान को भी दुखित कर देती हैं, वहाँ गुरु-जनो की लज्जा और भय प्रतिक्षण रहेगा, ऊँचे स्वर से बोलने पर सास गाली देगी, ननद कटु व्यग्य करेगी। समस्त दुख और क्रोध को सयमित कर मौन व्रत का अवलम्बन श्रेयस्कर होगा[3]। सभव है तुलसी की पारिवारिक जीवन एवम् विभिन्न सुख सामजस्यपूर्ण सम्बन्धो की भावना कल्पना पर आधारित हो तथा सूफी-काव्यो में प्रस्तुत चित्र यथार्थ का अकन करता हो। श्वसुरालय के लिए यह भय और आतक उसमान और जायसी दोनो में ही उपलब्ध है[4]।

सूफी-काव्यो में भी, चित्रावली मे सास और वधू के मध्य सवेदनात्मक स्नेहपूर्ण सम्बन्ध का आभास मिलता है[5]। इन अनेक पारिवारिक सम्बन्धो में सपत्नी का

---

१. "बन-दिसि-देव सौंपि सब काहू, चले जहाँ रावन ससि राहू।
चितवहि लखन सीय फिरि कैसे, तजत बच्छ निज मातुहि जैसे।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ३०९

२ "सीय सासु प्रति वेष बनाई, सादर करहि सरिस सेवकाई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० २५५

३ "पुनि सासुर हम गौनब काली, कित हम कित यह सरवर पाली।
कित आवन पुनि अपने हाथा, कित मिलिके खेलब इक साथा।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं, दारुन ससुर न आवै देहीं।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० १५६

४ "कठिन रहब ससुरे कर आहे, तबहीं कुशल क त जब चाहे।
सकुचहि ते बीती पल जेती, छूटत न छिन अचल कर सेती।
लाज आस पुनि गुरुजन केरी, सौंह न सकब काहु तरेरी।
बोलत ऊँच सास देइ गारी, ननदी नीच बोल बेवहारी।
रिसि आइहि राखब जिउ मारी, रिसि कीन्हें आवै कुल गारी।"
उसमान—चित्रावली, जगन्मोहन सक्सेना, पृ० ४६

५ "मानिक मोती भरि भरि थारा, नेवछावरि साजै परिवारा।
चित्रावली लै मदिल उतारी, औ पुनि सग कौलावति बारी।

सम्बन्ध भी है। आलोच्य काल में समाज में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पुरुष अनेक विवाह कर सकता था तथा रक्षिताओ को प्रश्रय दे सकता था, फलत परिवार में सपत्नियो में सघर्ष और द्वेष की भावना स्वाभाविक रूप से पलती थी। सूफी-काव्य पद्मावत में पद्मावती और नागमती में कटु वाद-विवाद एवम् व्यग्यात्मक सवाद होता है, अन्त में रत्नसेन उनका समाधान करता है[1]।

चित्रावली में सपत्नी के उल्लेख मात्र से चित्रावली ईर्ष्या के वशीभूत हो जाती है[2]। कौलावती आदर्श सपत्नी है जो द्वेष की भावना का परित्याग कर चित्रावली एवम् सुजान के सुख-सौभाग्य के लिए प्राणोत्सर्ग को तत्पर है। इस स्नेहमय व्यवहार से दोनो सपत्नियाँ स्नेहमयी भगिनी बन जाती हैं[3]।

नारी के विविध पारिवारिक सम्बन्धो पर एक दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि परिवार में नारी का स्थान आदरणीय था। रीति-कवियो ने केवल प्रेमी-प्रेमिका अथवा पति-पत्नी के सम्बन्ध का वर्णन किया है। परिवार के सदस्यो के मध्य की सद्भावना, विविध पारिवारिक सम्बन्धो में नारी के सत्रूपों के विकास

सासु चरन लागी दोउ आई, रानी गहि दुहूँ अक में लाई।
फिरि फिरि आचर डारै रानी, चन्द सूरज अपने घर जानी।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २३६

१ "लाजनि बूडि मरसि नहिं ऊभि उठावसि माँथ।
हौं रानी पिउ राजा तो कहँ जोगी नाथ॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४१४

"तुम्ह गगा जमुना दुइ नारी, लिखा मुहम्मद जोग।
सेवा करहु मिल दूवहूं, औ मानहु सुख भोग॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४१७

२. "सौति सग सालै जनु काँटा, अग अग लागै जनु चाँटा।
सुलगी उरध आगि सन सेजा, औटि होइ जल रकतकलेजा।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २२६

३ "चित्रिनि कहँ आई गुनभरी, वदन विलोकि पाउँ लै परी।
कहिसि कि हौं अपराधिनि तोरी, करहु छोह सुन विनती मोरी।
रहै सदा तुम्र सीस पर सेन्दुर भाग सोहाग।
हौं समदति हौं चरन गहि इहै मोर अनुराग।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २३१

"कहिसि कि तजौ सौत कर नाता मोरि तोरि एकै जनु माता।
हौं जिउ देऊँ रहउँ तुम दोऊ, मोरे मुये होइ सो होई॥"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २३१

"उद्धरण सख्या अध्याय ८, प्रकरण २, सूफी-काव्य में भी दिए गये हैं।"

की ओर उनकी दृष्टि ही नही उन्मुख हुई। बिहारी ने नारी के एक दो पारिवारिक सम्बन्धों का उल्लेख अपनी सतसई में किया है, किन्तु वह भी विलासिता से पकिल है। कुलवधू का रूप अवश्य उज्ज्वल दृष्टिगत होता है, वह अपने परिवार की मर्यादा, उसमें फूट बचाने के लिए स्वय देवर की अनुचित इच्छा का विरोध करती हुई, मौन यातना की भागिनी बनती है[1]। देवर-भाभी का पुनीत सम्बन्ध, जो तुलसी की आदर्श भावना और रामकथा का आश्रय पाकर माता-पुत्र-सीता-लक्ष्मण के पुनीत रूप में हमारे समक्ष आता है, वही बिहारी की सतसई में अनुचित हो जाता है[2]। प्राय अन्य रीतिकवियो में सास, ननद आदि का उल्लेख आता है, वह नायिका के उनसे छिपा कर सहेट में जाने के अवसर पर।

नारी के पारिवारिक सम्बन्धो के द्वारा भी आलोच्य काव्य के कवियो के काल में नारी की स्थिति आदि पर भी थोडा सा प्रकाश पडता है। काव्य के प्रकाश में नारी को परिवार में स्नेह, ममता, आदर और सम्मान उपलब्ध था। पुत्री, पत्नी माता आदि विविध सम्बन्धो में वह आदर एवम् स्नेह की पात्री थी।

नारियो की केलि-क्रीड़ाएँ और उनकी स्थिति पर प्रकाश

आलोच्यकाल में नारी की प्रतिभा-विस्तार का क्षेत्र गृह की क्षुद्र सीमा ही रह गया था। वैदिक काल की उषा सी स्वच्छन्द नारी सामाजिक बन्धनो की शृखला में बद्ध हो गई। जैसा कि द्वितीय अध्याय में बताया जा चुका है आलोच्य काल की परिवर्तित होती हुई परिस्थितियो, सामन्ती विचारधारा पर आधारित जीवन-दर्शन में नारी केवल एक उपकरण, पुरुष की कामना पूर्ति का एक साधन-मात्र रह गई। इस नवीन सामाजिक सगठन में नारी का कार्यक्षेत्र गृह ही रह गया था, अत उसका मनोरजन एवम् केलि-क्रीडाएँ गृह में केन्द्रित रह गईं। सामाजिक एवम् सास्कृतिक मनोरजन अथवा क्रीडा के समारोहो में उसका भाग न्यून ही रह गया। ऋग्वेद काल के सवन[3] की भाति कोई ऐसे उत्सव की आयोजना न होती थी जहाँ स्त्री-पुरुष समभाव से सम्मिलित हो सकें। परन्तु यत्र-तत्र साहित्य में बिखरे हुए उदाहरण मिलते हैं जब स्त्री-पुरुष सम्मिलित रूप से फाग खेलते हैं, अथवा जल-क्रीडा करते हैं।

१　"कहत न देवर की कुबत कुल-तिय कलह डराति।
पजर-गत मजार-ढिग सुक ज्यौं सूखत जाति॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ४०, दो० ८५

२　"और सबै हरषी हँसति, गावति भरी उछांह।
तुही, बहू, बिलखी फिरै, क्यों देवर के ब्याह॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४८, दो० ६०२

३　भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद, पृ० १८५, १९४२ बनारस

आलोच्य काल के साहित्य में स्त्रियो की केलि-क्रीडाओ में जलक्रीडा, फाग, झूला, वीणावादन, सगीत, शुक-सारिका पढ़ाना, आंखमिचौनी अथवा चोर मिहींचिनी खेलना इत्यादि हैं। इनकी फाग आदि क्रीडाएँ सम्मिलित रूप से होती हैं। सन्तो के प्रतीकात्मक काव्य में फाग और हिंडोला आध्यात्मिक है। आत्मा-दुलहिन अथवा प्रेयसी असीम प्रियतम के साथ आध्यात्मिक होली खेलने को उत्सुक है। उस आध्यात्मिक होली के रग से उसका तन मन भीग जावेगा। नदी के उस पार पडे हुए हिंडोले में वह नित्य कन्त के साथ झूलती है[1]। सूफी-काव्य में नारी की केलि-क्रीडाओ अथवा मनोरजन के साधनो में जल-क्रीडा मुख्य है। पद्मावत, इन्द्रावत और चित्रावली तीनो ही काव्यो में सरोवर खण्ड में नायिकाएँ अपनी सखियो सहित सरोवर में जल-विहार करती हैं और इस जलक्रीडा के मध्य ही आंखमिचौनी खेलती अथवा हार को जल में फेंक कर सभी सखियाँ ढूढ़ती हैं। इन्द्रावती में राजद्वीप की सभी पुत्रियाँ पिता के स्नेहमय राज्य में जल-क्रीडा करती हैं[2] कौलावती आदि यह सूफी नायिकाएँ ममता और स्नेह वैभव और ऐश्वर्य के मध्य पालित-पोषित होती हैं। दुख और दैन्य से अपरिचित निर्द्वन्द्व जीवन में वह कभी गेंद खेलती हैं, अथवा चित्र-लेखन करती हैं[3]। इन्ही केलि-क्रीडाओ

---

१ "सतगुरु हो महाराज, मोपै साईं रग डाला।"

कबीर—कबीर वचनावली, पृ० १३८

"दरिया पारि हिंडोलना, मेल्या कन्त मचाइ।
सोई नारी सुलषणी, नित-प्रति झूलण जाइ॥"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, पृ० ८१

२ 'हौं छिपाऊँ एहि सरवर माहीं, तुम खोजहु कोऊ पावहु नाहीं।
मोहि खोजत जो आइ उचावै, हारउँ वचन मांग सो पावै॥
बाएँ घाट गहिर जल जानी, तहँ छपि रहीं कौंल गहि पानी।
काहु न जाना केहि दिसि गई, सरवर मथन करत सब भई॥"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ४०

"बोलिन राजदीप की बारी, आवहु जल मा रचौं धमारी।
जब लग सीस पिता की छांहा, खेलहिं कोई नाहीं जग माहां॥"

नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० १०४

"तीर धरिन सब चीर उतारी, धाइ धँसी सब तीर मँझारी।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ४७

"लागी केलि करै मँझ नीरा, हस लजाइ बैठ होइ तीरा।
पदुमावती कौतुक करि राखी, तुम्ह ससि होइ तराइन साखी॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १६१

३ "साजि गेंद कौलावति रानी, सखी एक कहँ मारि परानी।
हँसति आव धाय कै तहँवां, कुंवर सुजात बैठ हुत जहँवां॥"

उस्मान—चित्रावली, पृ० १२२

से उनके जीवन में नवीनता एवम् जीवन का उन्मेष होता है। इन छोटी-छोटी हास-परिहासमय क्रीड़ाओ का नारी के जीवन में बहुत महत्त्व रहा है।

रामचरित मानस में नारियो की केलि-क्रीडाओ का उल्लेख नही मिलता है, पर गीतावली में पुरुष और नारी की जलक्रीडा, फाग खेलने के प्रसग मिलते है[1]। राघो ने अपनी प्रजा के प्रमोद के लिए सुन्दर हिडोले डलवा दिए हैं। उन हिडोलो में कलात्मक सौन्दर्य का भी उच्चतम उदाहरण उपलब्ध है। श्रावण मास की सुखद रिमझिम में जब प्रकृति और प्राणी दोनो ही प्रफुल्लित हैं, उपयुक्त समय जानकर, रूप गुण और यौवन सम्पन्न नारियों का समूह हिंडोला झूलने जाता है[2]।

बसन्त के मादक सौरभश्लथ वातावरण में राम अनुज सहित झोली में अबीर और हाथ में पिचकारी लिए फाग खेलते हैं। मृदग आदि विविध वाद्य यन्त्रो की मधुर ध्वनि मे जानकी युवती समूह को लिए सस्वर पाचरि और झूमक का गान करती हुई फाग के आघातो का प्रत्युत्तर देती हैं[3]।

केशव से काव्य मे दरबारी प्रभाव के कारण नारी की केलि-क्रीडाओ का उल्लेख पर्याप्त मिलता है। विपिनवास में सगीत में निपुण सीता वीणा-वादन द्वारा दुख और खेद को दूर कर प्रियतम के चित्त का प्रसादन करती हैं[4]। तत्कालीन

---

१ "समय विचारि कृपानिधि देखि द्वार अति भीर
खेलहु मुदित नारि-नर बिहँसि कहेउ रघुबीर
नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु
देखि रामछबि अतुलित उमगत उर अनुरागु।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४२४, गीतावली, पद स० २१

१. "सो समो देखि सुहावनो, नवसत सँवारि-सँवारि।
गुन-रूप-जोवन सींव सुन्दरि चली झुँडनि झारि॥"
× × ×
"झूलहि, झुलावहि ओसरिन्ह गावै सुहो गौड मलार।
मजीर-नूपुर-वलय-धुनि जनु काम करतल तार॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४२१-२२' पद १८

२ "सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ, झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ।
बाजहि मृदग, डफ ताल बेनु, छिरकै सुगन्ध भरे मलयरेनु।
उत जुवति-जूथ जानकी सँग, पहिरे पेट भूषन सरसरग।
लिए छरी बेंत सोधे विभाग, चाँचरि झूमकि कहैं सरस राग।
नूपुर-किकनि-धुनि अति सुहाई ललनागन जब जेहि धरइ धाइ।
लोचग आँजहि फगुहा मनाइ, छाँडइ नचाइ हा हा कराइ॥"
तुलसी— तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४२६ पद २२

४ "जब जब धरि वीना प्रकट प्रवीना, बहुगुन लीला सुख सीला।
प्रिय जियहि रिझावै दुखन भजावै विविध बजावै गुन सीला॥"
केशव—रामचन्द्रिका- पूर्वार्द्ध, पृ० १७३, स० २००१ प्र० स०

राजदरबारो में नारी की प्रतिभा और कला पुरुष की विलासिता और मनोरजन अग थी। का केन्द्र थी। अन्त पुर की साज-सज्जा और विलास वस्तुओ की शोभा का वह एक इसी मनोवृत्ति के कारण दरबारी कवि केशव ने पुरुषोत्तम राम को अनेक नारियो के साथ क्रीडा करते चित्रित किया है। पन्नगी, नगी, एवम् सुर-असुरों की नारिया विविध वाद्ययन्त्रो पर अनेक प्रकार के भजन आदि का गान करती हैं। सगीत भी नारियो के मनोरजन का एक साधन रहा होगा। हिंडोले पर सगीत की मृदु लहरो के साथ झूलना भी नारियो की केलि-क्रीडाओं में से था[1]। रामचन्द्र अनेक स्त्रियो के साथ जल-विहार करते हैं, नारीगण जल में विविध क्रीडाएँ करती हैं। इस जल क्रीडा में पूर्ण सहयोग दे, स्त्रियो सहित वह जल से निर्गत होते हैं[2]।

कृष्णकाव्य में ब्रज का वातावरण अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द है। सामाजिक बन्धन एवम् परम्परा उनके जीवन को बहुत कम प्रभावित कर पाए हैं। ब्रज का वातावरण सामन्ती परम्परा के प्रभाव से परे उन्मुक्त है। वहाँ नारी पर्दा की अनुगामिनी नहीं है, प्रत्युत् ग्राम के इस वातावरण में वह स्वच्छन्द विहार तथा क्रीडाएँ करती है। समाज के प्रतिबन्ध तथा मर्यादाएँ वहाँ हैं तो अवश्य, परन्तु उनका अक्षरश पालन नहीं होता। आलोच्य साहित्य के कृष्णकाव्य में राधा एवम् गोपीगण कभी यमुना में जलविहार करती हैं, कभी कृष्ण के साथ हिंडोला झूलती हैं और कभी प्रेम और यौवन की मादकता में मत्त होकर कृष्ण के साथ होली खेलती हैं। कालिंदजा के तीर पर ब्रजागनाओ के साथ राधा रानी स्नान करती हैं।

---

१. "पन्नगी नगी कुमारि, आसुरी सुरी निहारि
विविध किन्नरीन किन्नरी बजाव
मानों निष्काम भक्ति शक्ति अप आपनीस
देहन धरि प्रेमन भरि, भजन भेद भावै।"

केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, भगवानदीन, पृ० १२७, तृ० स०

"शुभ्र हीरन को सुभ्रांगन है हिंडोरा लाल।
सुन्दरी तहँ झूलहि प्रतिबिम्ब के तहँ जाल॥"

केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, भगवानदीन, पृ० ४३

२ "एक दमयन्ती ऐसी हरं हरि हस वंश
एक हसिनी सी बिसहार हिये रोहिणी।
भूषण गिरत एकै लेती बूडि बीचि बीच
मीन गति लीन हीन उपमान टोहियो।
क्रीडा सरवर में नृपति कीन्हीं बहु बिधि केलि
निकसे तरुणि समेत जनु सूरज किरण सकेलि॥"

केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, भगवानदीन, पृ० १९५

उसी स्नान के मध्य वह एक दूसरे को पकडती हैं, तथा पानी उछालती हैं[1]। प्रेम और सयोग के मदोन्मत्त क्षणो में राधा और सकल ग्वालिनी घर-घर फाग खेलती फिरती हैं, उनमें अनन्त सुहागमयी राधा सबसे अधिक प्यारी है, वह समूह बनाकर नद द्वार पर झूमक गाती घूमती है[2]। कृष्ण व्रजबालाओ के साथ हिंडोला झूलते हैं[3]। रास के समय कृष्ण-राधा तथा अन्य गोपियो का यमुना में जल-विहार करने का भी उल्लेख सूरसागर में मिलता है, सभवत उस समय जल-क्रीडा बहुत प्रचलित थी[4]।

आलोच्यकाल के रीति एवम् वीर-काव्य में वातावरण एकसा ही था। राजा और प्रजा दोनो ही आकठ विलास में लीन थे। तत्कालीन शिष्ट समाज का कोई आदर्श न था, वाताबरण में विलासिता व्याप्त थी। उस निश्चिन्त वातावरण में समाज का ध्येय खेलना और खाना और मस्त पडे रहना ही था। नवाबी प्रभाव से

---

१ "गई ब्रज नारि जमुना तीर
सग राजति कुँवरि राधा भई शोभा भीर,
देखि लहर तरग हरषीं, रहत नहिं मन धीर
स्नान को वे भई आतुर सुभग जल गभीर,
एक एकहि धरति, भुज भरि एक छिरकति नीर
सूर राधा हँसति ठाडी भीजी छवि तनु चीर ॥"

सूरदास—सूरसागर, सूर समिति, पृ० ८६२, १७५२।२३७०

"राधा जल बिहरति सखियन सग
ग्रीव प्रजत जल में ठाड़ी छिरकति जल अपने अग।"

सूर—सूरसागर, सूर समिति, पृ० ८६२, १५५३।२३७१

२. "गोकुल सकल गुवालिनी, खेलत घर-घर फाग।
भमोरा झूमक रो
तिनमें राधा लाडिनी जिनकौ अधिक सुहाग
झुडन मिलि गावत चलीं झूमत नन्द दुवार।

सूर—सूरसागर, पृ० १२३०, २८९४।३५१२

३ "झूलत मदन गोपाल हिंडोलना।
नवल नवल व्रजनारिन सग कलोलना ॥"

गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी (पदावली), पृ० ८६

"स्याम सग खेलन चली स्यामा, सव सखियन को जोरि
चदन अगर कुमकुमा केसरि, वहु कचन घट छोरि।"

सूर—सूरसागर, दशम स्कन्ध, पृ० १२४०, प्र० २९०७।३५२५

४ "जमुना जल क्रीडत नन्द नन्दन।
गोपी वृन्द मनोहर चहुँदिसि मध्य अरिष्ट निकन्दन ॥"

सूर—सूरसागर, दशम स्कन्ध, पृ० ६५६, १५५८।१७७६

पुरुष जहाँ तीतर लडाते, पतग उडाते, कबूतर उडाते, ताश और गजीफा, शतरज और चौपर खेलते, साँडो की लडाई देखते, वहाँ स्त्रियाँ भी गृह के विलासपूर्ण वातावरण मे अकर्मण्यता से ताश गजीफा, शतरज, चौसर, पतग, सुग्गा-मैना पढाने तथा कहने, काव्य विनोद तथा वाद्ययन्त्रो के वादन में समय व्यतीत करती। इनमें से कुछ ही मनोरजनो के उदाहरण आलोच्य साहित्य में प्राप्त है।

केशव दीर्घकाल तक वैभवपूर्ण दरबारी वातावरण में रहे थे, अत उनके काव्य में इन शिष्ट नागरिक मनोरजनो का विवरण अधिक मिलता है। केशव के 'वीरसिंह देव चरित्र' में वीरसिंह देव के महल में अनेक स्त्रियाँ हैं, वह अनेक प्रकार के मनोविनोद करके कालयापन करती हैं। कोई शृगार करती है, कोई सुक और सारिका पढ़ती है, कोई वृक्षो को जल से सींचती है, कोई पुष्प चयन करती है, कोई मोर चुगाती है[1]। राजा अनेक तरुणियो सहित जलक्रीडा करते हैं[2]। दरबारी वातावरण में पले हुए कवि केशव ने नारियो के शतरज खेलने का उल्लेख कई स्थानो पर किया है। वृषभानु-कुमारी अपने सखीवृन्द में बैठी चौपर खेलती हैं[3]।

रीतिकालीन शृगारी कवियो में स्त्री-पुरुष आपस में आँख-मिचौनी भी खेलते थे। मतिराम की नायिका नायक के साथ पिछले दिवस के समान चोर मिहीचनी खेलती है। राधा और नद-किशोर अन्य सखियो के साथ 'मिहीचनी' की क्रीडा करते हैं। परस्पर क्रीडा विनोद के लिए बारम्बार वही दोनो आँख-मिचौनी के चोर होते हैं[4]। रीति युग के नागरी वातावरण में घर-घर फारसी सभ्यता के प्रभाव से विलास की

---

१ "कोऊ उर सींचति, तरुमूल, कोऊ तोरत फूले फूल।
एकै चतुर चुगावति मोर, लीनै सारी सुक चितचोर॥"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६८

२ "भीजै वस्त्रनि सों तिहि काल, तिनमें छूटत जल कन जाल।
पल पल मिलि कीजै वहु भोग, सदन करतु जनु वियोग॥"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २९२

३ "वैठी हुती ब्रजनारिन में वनि श्रीवृषभानु कुमारी सभागी।
खेलत ही सखी चौपर चाल भई तिहि खेल खरी अनुरागी॥"
केशव—केशव पंचरत्न, दीन सम्पादित, पृ० १०

४ "खेलन चोर भिहीचनि आजु, गई हुती पाछिलै द्यौस की नाई।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, स० कृष्णविहारी मिश्र, पृ० २०६
छुवत परस्पर हेर के, राधा नन्द किसोर।
सबने वेई होत है चोर भिहचनी चोर॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, सं० कृष्णविहारी मिश्र, पृ० ४५५
"लाल तिहारे सग में खेले खेल बलाइ।
मूंदत मेरे नयन हौ करन कपूर लगाइ॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, सं० कृष्णविहारी मिश्र, पृ० २०६

अलस छाया छाई थी। कहा जा चुका है कि गृहो में नारी शतरज और गजीफा, ताश, चौसर आदि खेलती थी। देव के काव्य में नारी अपनी सखियो के साथ शतरज खेलती है। बिहारी की नायिका भी नायक के सग जलक्रीडा करती है[१]। इन क्रीडाओ के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण-काव्य तथा कुछ अन्य अपवादों को छोड कर नारी की समस्त केलि-क्रीडाएँ गृह में केन्द्रित थीं। इन केलि-क्रीडाओ में भी, प्राय सम्मिलित क्रीडाओ में, नारी विलास पूर्ति के साधन रूप में ही प्रस्तुत हुई है।

नारी-सौन्दर्य

सौन्दर्य में मानव मन को विमुग्ध कर, उसमे विविध भाव-तरगो को उद्वेलित करने की क्षमता है। सौन्दर्य का पारखी पुरुष, प्रकृति के प्रत्येक कण में उसका अन्वेषण करता है। प्रकृति के विश्व-विमोहन रूप के साथ ही नारी की सुन्दरता, उसके विविध अगो की कमनीयता ने कवि के काव्य मे व्यजना पाई है। प्रत्येक युग, देश और जाति के साहित्य में कामिनी की कान्ति, षोडशी की शोभा, सुकुमारी की मनोहरता काव्य का विषय बनी, उसके वर्णन के दृष्टिकोण में चाहे विविधता और अन्तर रहा हो। आलोच्य साहित्य में भी नारी-सौन्दर्य का चित्रण मिलता है। यह परम्परा सस्कृत से आगत है। महाकवि कालिदास ने जगत के माता-पिता के शृगार के मध्य पार्वती के रूप का वर्णन किया है। अध्यात्म रामायण में भी स्वयवर के अवसर पर की सीता की छवि का विवरण है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल मे पृथ्वीराज रासो में सौन्दर्य का चित्रण उपलब्ध है। सन्तो ने नारी को कामिनी रूप में ही देखा है, अत उसका रूप और सौन्दर्य सुकुमारता और मोहकता उनके लिए घृणास्पद और कुरूप थी। अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त उपमाओ का ही प्रयोग कर सन्त कवि सुन्दरदास ने उसको अत्यन्त घृणित, भय का कारण बताया[२]। अन्य सन्त कवियों ने नारी का वर्णन उसकी भर्त्सना एवम् तिरस्कार के लिए ही किया। स्वय को 'अविनाशी की बहुरिया' मान कर, नारी

---

१ "लै चुभकी चल जात जित जित जल केलि अधीर।
कीजति केसरि नीर से तित तित केसरि नीर॥"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ६७, दो० १५२

छिरके नाह नवोढ़ दृग कर पिचकी जल जोर।
रोचन रग लाली भई बिय तिय लोचन कोर॥"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ६८, दो० १५३

२ "कामिनी के देह मानो कहिए सघन वन
उहाँ कोऊ जाइ सुतो भूलिकै परतु है।
कुंजर है गति, कटि केहरि को भय जामैं
बैनी काली नागिनीऊ फन को धरतु है।
कुच है पहार, कामचोर रहैं जहाँ
साधिकै कटाक्ष बान प्रान कों हरतु है।

के स्नेह-स्निग्ध समर्पण, उसके अन्तर की उत्कट प्रेमाभक्ति का आभास तो दिया, किन्तु उसके सौन्दर्य के विषय में उन्होने कुछ नही लिखा।

सूफी-काव्य में नारी-सौन्दर्य का चित्रण पर्याप्त एवम् नग्नरूप मे मिलता है। वस्तुत रूपक की व्याख्या के अनुसार पुरुष रूपी साधक नारी रूपी परमात्मा के जमाल, उसके सौन्दर्य का वर्णन सुनकर ही उसके लिए पागल हो उठता है। अत सूफी-कवियो ने नारी के नख-शिख और सौन्दर्य की विशद व्याख्या की। पद्मावत, इन्द्रावत, चित्रावली, मधु-मालती, माधवानल-कामकदला आदि सभी सूफी-काव्यो में नायिकाओ के रूप और नख-शिख के वर्णन में प्रचलित और अप्रचलित उपमानो का प्रयोग हुआ है। रूपक अथवा सूफी सिद्धान्तो के कारण इन सौन्दर्य चित्रणो मे अलौकिकता का भी समावेश हुआ है। इन कवियो ने समस्त नारी अगो-कपोल, नयन, नासिका, कान, केश, अधर, दात, ग्रीवा, वक्ष, जघा, त्रिवली, वाहु, उँगली, पैर, कटि आदि का पृथक-पृथक चित्रण किया है। मुख में सवसे पहले केशो का वर्णन हुआ है, केशो की कवियो ने अन्धकार, वादल, नदी आदि से उपमा दी है किन्तु सर्वप्रिय उपमा लहराते हुए लम्वे केशो की सर्प से समानता दिखलाना ही है। जायसी एवम् मझन ने केशो की विषभरे सर्पो से उपमा दी है[1]। सुदीर्घ कृष्ण केशराशि के मध्य सुशोभित माग की श्वेत रेखा को उन्होने वादल में विजली, कालिन्दी में कनकरेखा बताया[2]। मुख में सवसे महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले नयनो को खजन की जोरी एवम् मछली से उपमा योग्य कहा गया[3]।

सुन्दर कहत एक और अति डर तामैं
राक्षस वदन षाऊँ षाऊँ ही करतु है।"
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ४३७

"सुन्दर कहत नारी नख शिख निंद रूप
ताहि जै सराहैं तेतौ वडेई गँवार हैं।"
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ४३९

१. "विसहर लुरै लेहि अरघानी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) १९५३ पृ० १८५
"गरल भरी विषधर हत्यारी।"
मझन—मधुमालती

२ "जनु घन महँ दामिनि परगसी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० १८६
"यमुना तीर कनक जनु आई।"
सूर—नलदमन, पृ० ३४

३ "वर कामिन चष मीन सम निमिष हेर तन जाहि,
वहुरि जनम भरि मीन जिमि, पलक न लागै ताहि।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० ७१

दोनो कपोलो की नारगी से उपमा दी गई। नयन की शोभा-वर्द्धन में भृकुटी का महत्त्वमय स्थान उनकी सुन्दरता एवम् वक्रिमता में ही है[1]। जायसी की नायिका के रतनारे अधरो के समक्ष बन्धूक का फूल तुच्छ है[2]। उसकी कटि पृथ्वी में अपने सौन्दर्य में एक ही है। उस्मान को उँगलियाँ मूगे की बेल के सदृश दृष्टिगत होती हैं। वरन् उनमें मूंगे के सदृश कठोरता न होकर मूंगफली सी कोमलता है[3]। इन्द्रावती की कटि केश के समान पतली है, चरणो पर जघा कमल पुष्प पर श्वेत रग वाले केले के खम्भे की सुडौलता में शोभित है। समस्त सौन्दर्य के लक्षण उसमें विद्यमान हैं[4]। कपोल पर शोभा पाती हुई केश की लट की उपमा धन पर दृढतापूर्वक रक्षण के लिए स्थापित नाग से दी है[5]।

इन कवियो ने अपनी नायिकाओ के रूप में अलौकिकता का वर्णन किया। पद्मावती के नयनवाणो से ससार विद्ध हो जाता है, चित्रावली का मुखचन्द्र विश्व को आलोकदान देता है, अधरो का अमृत प्राणदाता है। नूर मुहम्मद की इन्द्रावती ऐसी लावण्यमयी है कि बिना देखे ही सब उसकी सराहना करते हैं, उसके मुख

"सुमर समुद्र नैन दुइ मानिक भरे तरग।
आवत तीर जाहिं फिरि काल भँवर ते सग॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १८८

१. "कँवल कपोल गोल अति बने।"

सूर—नलदमन, पृ० ४०

"भौंहें स्याम धनुक जनु ताना, जासैं हेर मार विख वाना।"

जा० ग्र० पृ० १८७

"वरुनी का बरनौं इमि बनीं, साधे वान जानु दुइ अनी।"

जा० ग्र०, पृ० १८८

२ 'अधरौ सुरँग अमिय रसभरे, बिंब सुरँग लाजि बन फरे।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १९० गुप्त

३ "विद्रुम बेलि सों आगुरी दी भी, वह कठोर यह मूंगफली सी।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ७५

४ "पातर लंक केस की नाईं, ताही सो सिरजा जग साईं।
जँघ चरन सो आचम्भो है रम्भा खम्भ कमल पर सोहै।
सुन्दरता को लच्छन केते प्यारी चेरे तेरे तेते।
लट कुंतल अति स्यामल आहै, भौंह स्याम जेहि इन्द्र सगाहै।"

× × ×

"ललित कपोल गुलाब लजाहीं, जग मन मधुकर सम लोभाहीं।"

नूर मुहम्मद—इन्द्रावती हिन्दी के कवि और काव्य: पृ० १०४

५ नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० १०५

खोलने से उषाकाल और केश निर्बन्ध करने से सायकाल हो जाता है[1]।

इन सूफी कवियो ने शुभ्रदन्त पक्ति की उपमा हीरे, बिजली आदि से दी है, अधरो की बधूक पुष्प से तुलना की है। इन्होने नायिका को अत्यन्त कोमल और सुकुमार बताकर सुकुमारता को सौन्दर्य का अग माना[2]। प्राय नयन, अधर, कपोल, जघा आदि की उपमा में एक ही से भाव भिन्न-भिन्न कवियो में मिलते हैं। इन कवियो की सूक्ष्मदर्शी दृष्टि से चिबुक का गढ़ा भी नही बचा है। फारसी प्रभाव के कारण सूफी-कवियो में नख-शिख का वर्णन, अथवा नारी-सौन्दर्य अकन अधिक मिलता है। पद्मावती के सौन्दर्य की क्षण-क्षण परिवर्तित होती हुई रूप-राशि को चित्र की रेखाओ में उतारने का प्रयास अनेक चित्रकारो ने किया, पर वह सब असफल ही रहे[3]।

रामकाव्य में तुलसी ने रामचरितमानस में नारी-सौन्दर्य का अत्यन्त मर्यादित एवम् शिष्ट चित्रण किया है। अपनी आराध्या माता सीता के विविध अगो का वर्णन वह खुल कर नहीं कर सके। उनकी अनिवचनीय शोभा, अनुपमेय सौन्दर्य को लेखबद्ध करने मे कवि को समस्त उपमाएँ जूठी लगती हैं। विधाता ने अपनी सारी निपुणता और चातुर्य सीता के सौन्दर्य-निर्माण में ही समाप्त कर दिया है[4]। गोस्वामी जी ने रामायण में सूफी कवियो के समान सीता के नख शिख का निरूपण नही किया, प्रत्युत उनकी समस्त शोभा का एक साथ ही वर्णन किया। उन्होने भी हाथो की कमल और गति की हँस से तुलना की है[5]।

---

१ 'बदन मयंक जगत उजियारा, अमिरित अधर प्राण देन हारा।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ७२

"अरु रूपवन्ती सुन्दर आहे, बिनु देखे सब ताहि सराहें।
खोले मुख परभात दिखावें, खोलें केस साझ होइ आवे ॥"

नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० ६०

२ "छीर न पियें अतिहि सुकुमारा, पान फूल के रहहि अधारा।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ७६

३ 'सबै चितेर चित्र कै हारे, ओहिक चित्र कोई करै न पारै।
कया कपूर हाड़ जनु मोती, तेहि ते अधिक दीन्ह विधि जोती ॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, गुप्त सम्पादित पृ० ४८४

४. "सिय सोभा नहिं जाइ बखानी, जगदम्बिका रूप गुन खानी।
उपमा सकल मोहि लघु लागी, प्राकृत नारि-अंग-अनुरागी ॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १०६

"सुन्दरता कहँ सुन्दर करई, छविगृह दीपशिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरौं विदेह कुमारी ॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १००

५ "सोहति सीय राम की जोरी, छवि शृंगार मनहि एक ठोरी।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ११४

सीता के विवाह के अवसर पर गान गाती हुई नारियो के सौन्दर्य का अकन भी प्रचलित उपमाओं के द्वारा ही किया है[1]। थोडे बहुत स्थलो को छोडकर तुलसीदास के रामचरितमानस में नारी-सौन्दर्य का अत्यल्प वर्णन मिलता है, किन्तु उनके उत्तरवर्ती ग्रन्थों में नखशिख-निरूपण की प्रणाली को अपेक्षाकृत अधिक महत्व मिला। 'मलिनिया', 'नउनिया', और 'बरिनियाँ' के सौन्दर्य-अकन की रेखाएँ अधिक मुखर हैं[2]। प्रबन्धकाव्य रामचरितमानस की आदर्शात्मकता को निभाने में तुलसी ने नारी-सौन्दर्य वर्णन की ओर अधिक ध्यान नही दिया, कविता-वली में भी वर्णन न्यून है, यद्यपि सजीवता अधिक है। वस्तुत तुलसी ने अपने चरितनायक एवम् आराध्य राम के ही नखशिख का विशद वर्णन किया है।

केशव रामकाव्यकार होने के अतिरिक्त रीतिकाव्य प्रणेता आचार्य भी थे। रूप और विलास वर्णन में रुचि रखने वाले रीतिकारो में नारी रूप-वर्णन की प्रवृत्ति की प्रधानता है। उन्होने नारी-रूप-वर्णन में पृष्ठ पर पृष्ठ समाप्त कर दिए हैं। सीता के रूप-वर्णन में उन्होने उनके सौन्दर्य के समक्ष कमल, स्वर्ण और चन्द्र कुरूप बताए हैं। सीता के सौन्दर्य-वर्णन में उनकी कल्पना मर्यादित रही है। इन्दुमती, दमयन्ती और रति विश्व-विश्रुत लावण्यमयी नारियो का सौन्दर्य अहर्निशि विद्युत द्वारा वारे सँजाने पर भी सीता के सौन्दर्य की समता नहीं कर सकता[3]। वन-गमन समय मार्ग में सीता की भुवन विमोहन छवि समस्त नारियो को विमुग्ध कर लेती है। वह परस्पर सलाप करती हैं, कोई सीता के मुख की कमल से और कोई चन्द्र से उपमा देती है, और कोई चन्द्र और कमल से भी सौन्दर्ययुक्त बताती

"गवनी बाल मराल गति, सुखमा अँग अपार।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ११३

"सखिन्ह मध्य सिय सोहत कैसे, छवि गन मध्य महा छवि जैसे।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ११२

१ "विधुबदनी सब सब मृगलोचन, सब निज तन छवि रति मद मोचनि।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १३४

२ "बतिया की सुघर मलिनिया सुन्दर मातहि हो,
कटि कै छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो;
चन्द्रवदनि मृगलोचन सब रस खानिहि हो,
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।"
तुलसी—रामलला नेहछू, तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० ४

३ "कोहै दमयती इदुमती रति रातदिन होहिन छबीली छवि जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप, जातवेद बापुरो विरूप सो निहारिये।।
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो। चन्द बहुरूप अनुरूप कै विचारिये।।"
केशव—रामचन्द्रिका भगवानदीन पृ० ६६, स० २००१

हैं[1]। सीता का सौन्दर्य रावण-भगिनी सूर्पणखा को भी मोहित कर लेता है। वह उन्हें मयतनुजाके स्वरूप को लज्जित करने वाली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी बताती है[2]।

सीता-स्वयंवर के समय उपस्थित उनकी सखियों की शोभा का भी वर्णन केशवदास ने किया है। रामचन्द्र की सेवा में लगी हुई सीता की सखियाँ बिजली के समान रूप तेजमयी हैं। उनके लज्जावनत लोचन अन्य लोगों के नयनों को विजयी अभिभूत कर लेते हैं[3]। जनकपुरी की स्त्रियाँ भी अनुपम सौन्दर्य की स्वामिनी हैं, उनके स्वच्छ कपोल दर्पण सदृश हैं, बाहें चम्पा की माला के समान सुकोमल

---

१. "वासो मृग अंक कहैं तोसो मृगनैनी सब,
वह सुधाधर तुहूँ सुधावर मानिये।
वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजैं,
वह कलानिधि तुहूँ कलाकलित बखानिये॥"
× × ×
"वाके अति सीतकर तुहूँ सीता सीतकर
चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये॥"
केशव—केशव ग्रन्थावली (रामचन्द्रिका), पृ० २७७,
"सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति
सीता जी को मुख सखि केवल कमल सो।"
केशव—केशव ग्रन्थावली (रामचन्द्रिका), पृ० २७८
"देखैं मुख भावैं अनदेखेई कमल चंद,
ताते मुख मुखैं सखी कमलैं न चंद री।"
केशव—रामचन्द्रिका, पृ० १४७

२ "मय की सुता धौं को ह्वै, मोहिनी ह्वै मोहै मन
आजु लौं न सुनी सु तौ नैनन निहारिये।
देव दुति दामिनी हू नेह कामिनी हू
एक लोम ऊपर पुलोमजा निहारिये।"
× × ×
"सात दीप सात लोक, सातहू रसातल की
तीयन के गोत सबै सीता पर वारिये॥
केशव—केशव ग्रन्थावली, पृ० २८७

३ "तँह सोभिजै सखि सुन्दरी जनु दामिनी वपु मंडिकै।
घनश्याम को तनु सेवहीं जड़ मेघ ओघनि छंडिकै।
केशव—केशव ग्रन्थावली, पृ० २६१
"मुख एक है नत लोल लोचन लोक लोचन को हरै
जनु जानकी संग सोभिजै शुभ लाज देहहि को धरै।"
केशव—केशव ग्रन्थावली भाग १, (रामचन्द्रिका), पृ० २६१

हैं, नयनो की दृष्टि में कस्तूरी की श्यामता और कपूर की शुभ्रता है[1]। उन कोमलागी नारियो को चलते समय महावर ही भारस्वरूप प्रतीत होता है, उनकी स्वयसिद्ध सुन्दरता को किसी प्रसाधन एवम् वाह्य शृगार की अपेक्षा नही है[2]। सीता के रूप-वर्णन की मर्यादा निभा कर कवि की, रीतिकाल के शृगारी वातावरण में पोषित, मनोवृत्ति अरिपत्नी मन्दोदरी के अगो का नग्न चित्रण करने में सकोच नही करती है[3]।

कृष्णकाव्य रागानुगा, प्रेमलक्षणा भक्ति को लेकर चला। उसमें कृष्ण और राधा तथा अन्य गोपियो के प्रेम का चित्रण है। इस प्रेम के आलम्बन और आश्रय हैं, चचल खजरीट नयनी राधा और कृष्ण। अत स्वभावत ही सौन्दर्य-निरूपण अधिक मिलता है। कृष्ण और राधा की प्रणय-लीला के चटकीले चित्रो में दोनो के सौन्दर्य-वर्णन की प्रधानता है। अपने लावण्य और मोहन रूप से राधा यशोदा को भी आकर्षित कर लेती है, उसके खजन से गतिशील, कमल-विनिन्दित नयन जसुमति को लुभा लेते हैं[4]।

शरद-ज्योत्स्ना मे रास के समय कृष्ण की प्रिया राधा की श्री अपूर्व है। आलस्यपूर्ण, निन्द्रालस नयन उसके मुख के सौंदर्य का परिवर्द्धन करते हैं, चपक-कली-सी श्वेत नासिका है। अजन, एवम् प्रसाधन रहित आनन, पूर्णिमा का समस्त कलाओ से पूर्ण चन्द्र लगता है। कवि ने अपनी आराध्या के समस्त अगो का वर्णन किया है। तुलसी के समान उसका सौन्दर्य वर्णन मर्यादित नही है[5]।

---

१ "अमल कपोलं आरसी बाहुइ चपकमार।
अवलोकनैंविलोकिजै मृगमदमय घनसार॥"
केशव—केशव ग्रन्थावली (रामचन्द्रिका), पृ० २५६

२ "गति का भारु महाउरै अग अस के भार।
केशव नखशिख शोभिजै सोभाई सिंगार॥"
केशव—केशव ग्रन्थावली, पृ० २५६

३ "छुटी कण्ठमाला लुरैं हार टूटे,
खसं फूल फैले लसे केश छूटे।
फटी कचुकी किंकिनी चारु छूटी,
पुरी काम की मनो रुद्र लूटी।
विना कचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं,
किधौं सांचहू श्रीफलै सोम साजैं।
किधौं स्वर्ण के कुभ लावण्य पूरे,
वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे।"
केशव—केशव ग्रन्थावली भाग २, पृ० ३३१

४ "नैना तेरे जलजजीत हैं खजन तैं अति नाचैं।
चपला तैं चमकति अति प्यारी कहा करैंगी स्यामहि।"
सूर—सूरसागर, पृ० ५११, पद० ७१८-१३३४

५ "आनस उनीदे नैन, लागत सुहाए
नासिका चपक कली कौं अली भाए।

सूरदास ने राधा के स्वरूप वर्णन में समस्त प्रचलित उपमानो का प्रयोग किया है। मोहन की प्रेयसी राधा रूप और सौन्दर्य-सिन्धु से मथन कर निकाली हुई अनुपम युवती है। उनका आनन चन्द्रमा से अधिक सौन्दर्य-युक्त है। कवि ने सौन्दर्य का चित्रमय सजीव तथा यथावत वर्णन किया। उसका मासल और शरीरी रूप ही खजन, मृग की गुरुता का खण्डन करता है। अधर बिंब बन्धूक पुष्प को लज्जित करने वाले हैं, दसनो की कुन्दकली, केशो की अहि से, बाहुओ की मृणाल से, कटि की सिंह से, जघा की केला-खम्भ से परम्परागत उपमा दी है[1]।

सूर की उपास्या राधा रानी के भुवन-विमोहन सौन्दर्य का दर्शन नयनों को शान्ति एवम् शीतलता प्रदान करने वाला है। उसके विकसित सरोज से अरुण नयन पाप का नाश करने वाले हैं[2]। वृषभानुनदिनी के नयनो की चचलता, विशालता देखकर मृगो ने निश्चिन्त क्रीडा विहार करना छोड दिया, अवगुन्ठन से अनावृत नयनों को निहार कमल मुरझा गए और गर्वीली रति भी राधा के पैरो पर विनयावनत है[3]। कवि नयनो की वकिमता, भौहो की कुटिलता, विमोहक शक्ति पर पद

वदन-मंजन तैं अंजन गयो ह्वै दूरि
कलक रहित ससि पून्यौ ज्यौं कला पूरि।
गिरितैं लता है भई यह तो हम सुनि
कचन लता तैं भए ह्वै गिरिवर पुनि।"

सूर—सूरसागर भाग १, पृ० ६३३, पद १०७६-१६६४

१ "खजरीट मृगमीन की गुरुता नैननि सबै निवारी,
भृकुटि कुटिल सुदेश शोभित अति मनहुँ मदनधनु धारी।
भाल बिसाल, कपोल अधिक छवि नासा द्विज मदगारी,
अधर बिंब-बन्धूक-निरादर, दसन कुन्द-अनुहारी।
परम रसाल श्याम, सुखदायक बचननि सुनि, पिक हारी॥
कवरी अहि जनु हेम खभ लगी ग्रीव कपोत बिसारी।
बाहु मृनाल जु उरज कुम्भ गज निम्न नाभि सुभ गारी,
मृग नृप खीन सुभग कटि राजति जघ जुगल रभा री।
मदन रुचिर जु बिडाल-रसन सम चरनतली ललिता री॥"

सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, सूर समिति, पृ० ६८३, पद ११६७।१८१५

२ "किसोरी देखत नैन सिरात
बलि बलि सुखद मुखारविन्द की चन्द्र-बिंब दुरिजात
अघमोचन लोचन रतनारे, फूले ज्यौं जलजात।"

सूर— सूरसागर प्रथम खण्ड, सूर समिति, पृ० ६८६, पद १२०६।१८२४

३ "तब ते मृगनि चौकरी भूली
उघरयौ बदन सहज घूंघट पट नकुचे कमल कुमुदनी फूली,

लिखता गया। नयनो की निशकता, चचलता, विशालता, मोहकता आदि विशेपताओं का पृथक उल्लेख किया गया है[1]।

जिस राधा के नाम को सुनकर हरि उसके नाम का ही मन्त्र जपने लगते हैं, उन राधारानी का रूप और सौन्दर्य असाधारण होना स्वाभाविक ही है। उनके शरीर के विभिन्न अगो से जो उपमाएँ दी जाती हैं वह उस शोभाभार वहन में अशक्य है[2]। कवि सौन्दर्योपासक है। यद्यपि मजन उपरान्त धुले हुए मुख को वह पूर्णचन्द्र बताता है, पर वस्तुत सँवारे हुए कृत्रिम सौन्दर्य से उसे अधिक आकर्षण है। तभी कवि के नारी सौन्दर्य-वर्णन में प्रसाधन एवम् शृगार द्वारा परिवर्द्धित सौन्दर्य का चित्रण अधिक मिलता है[3]।

परमानन्ददास ने तो नन्दरानी ही के दही विलोने के समय के सौन्दर्य का चित्रण किया है। दधि-मन्थन समय हाथो एवम् पैरो के सचालन से ककण और नूपुर

निरखि भौंहि मनमथ मन काँप्यो, छूट्यो धनुष भुजा भई लूली
सूरदास रति पाइ पलोटति, हुती जो गरब हिंडोरैं झूली।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, सूर समिति, पृ० ११६०, पद २२७१।३३५६

१ "राधे तेरे नैन किधौं मृगवारे
रहत न जुगल भौंह जूये तैं, भजत तिलक रथ डारे
जदपि अलक अजन गहि बांधे, तऊ चपल गति न्यारे।"
सूर—सूरसागर भाग २, सूर समिति, पृ० ११६०, पद २७४०।३३५८
"चल भामिनि की भौंहें व क
अलक तिलक छवि चित्रलिखी सी स्त्रुति मडल तोटक।"
सूर—सूरसागर भाग १, सूर समिति पृ० ११६१, पद २७४४-३३६२
'राधे तेरे नैन किधौं री बान।"
सूर—सूरसागर भाग २, सूर समिति, पृ० ११६१, पद २७४२।३३६०

२ "राधे तेरे रूप की अधिकाई
जो उपमा दीजै तेरे तनु तामें छवि न समाइ,
सिंह सकुचि, सर विरथा भरत दिन, विनु सोइ तीर सुलाइ,
ससिउ घटत, हेम पावक परै, चपक रहे कुम्हलाई।"
सूर—सूरसागर भाग २, सूर समिति, पृ० ११७०, पद २७७६।३३६४

३ "विराजति राधा रूप निधान
सुदरता की पुज प्रगट ही, को पटतर तिय आन,
सिंदुर सीस, मांग मुक्तावलि कच कमनीय विनान;
मनहु चन्द्र मुख कोपि हन्यौ, रिपु-राहु विषम बलवान,
तरल तिलक ताटक गड पर झलकत कल विवि कान।"
सूर—सूरसागर भाग २, सूर समिति, पृ० १०६६, पद २४४५।३०६३

की मिश्रित ध्वनि प्रमुदित श्यामसुन्दर के यश का गान करती है[1]। कुम्भनदास को भामिनी के सिर के बिखरे हुए सुमन नभ के नक्षत्र प्रतीत होते हैं, और निर्बन्ध कृष्ण केशो में छिपा हुआ मुख काले बादलों में चन्द्र सदृश दृष्टिगत होता है[2]। मुख पर नयन शरद कमल पर खजन से दिखाई पड़ते हैं[3]।

कृष्णकाव्य में नारी-सौन्दर्य का वर्णन शृंगारपरक अवश्य है, पर वह परमानद स्वरूप श्रीकृष्ण, वेद-ऋचा एवम् उनकी आह्लादिनी शक्ति राधा का शृंगार है। लौकिक प्रतीत होते हुए भी वह अलौकिक है। रीतिकाव्य तथा वीरकाव्य की परिस्थितियाँ समान थीं। वैभव एवम् विलास की पृष्ठभूमि में, मदिरा की मादक हिलोरो एवम् मधुबाला के नृत्य के मध्य नारी-सौन्दर्य पूजा और उपासना की वस्तु न हो कर खिलवाड और बाजारू इश्क का विषय था।

आलोच्यकाल के वीर-काव्य में नारी-सौन्दर्य-चित्रण अत्यल्प है। उसमें नारी-सौन्दर्य वर्णन में कोई नवीनता न होकर प्रचलित और परम्परागत उपमानो द्वारा ही सौन्दर्य की व्यजना का प्रयास किया गया है। जटमल की पद्मिनी मृगनयनी, पिकवैनी, सिंह-सी कटि वाली, हीरे से दत वाली एवम् भौहो की वक्रिमता में अनुपम है[4]। उसकी सुकुमारता और कमनीयता विश्वदुर्लभ है, वह पान से भी क्षीण है। उस चम्पकवर्णी सुरग नारी के पग तलो में कमल देखकर सुर नर मुनि वन्दना एवम् सेवा करते हैं[5]। राजा वीरसिंह के अन्त पुर की कोमलागियो के वर्णन में

---

१ "प्रात समय गोपी नन्दरानी
मिश्रित धनि उपवर्तहि औसर दधि मन्थन और मथानी,
तीक्ष्ण लोल कपोल विराजत ककण नुर क्वणित एक रस,
रज्जु करयत भुज लागत छवि गावत मुदित श्यामसुन्दर यश;
चंचल, अचपल कुच हारावलि, वेणी चारु खसित कुसुमाकर,
मणि प्रकाश नहि दीप अपेक्षा, सहजभाव राजत ग्वालिन घर।"
परमानन्द पदावली, अष्टछाप पदावली, स० सोमनाथ गुप्त, पृ० ९२

२ "तेरे शिर कुसुम वियुरी रह्यौ भामनी मानो नभ शिश तार,
श्याम अलक छूटि रही री वदन, चन्द छिपयौ मानो बादर कारे।"
कुम्भनदास—(कुम्भनदास पदावली) अष्टछाप पदावली, पृ० १४२

३ कुम्भनदास—कुम्भनदास पदावली, अष्टछाप पदावली, पृ० १४४

४ "मृगनैन वैण कोकिल, सरस केहर लकी कामिनी,
अधर लाल हीरे दत्तण ओह धनु धन धनक्लि मेवार।"
जटमल—गोरा बादल की कथा, (अयोध्याप्रसाद) पृ० ३, १९९१ प्रयाग

५. "पानहू ते पातरी प्रेम पूरण सो झालं।"
× × ×
"पदम चरण तल रहं, देख सुर नर मुनि टालं मही।"
जटमल—गोरा बादल की कथा, (अयोध्याप्रसाद) पृ० १२

केशव उनको चचल चितवन वाली, निश्चल हृदय वाली सुन्दर निपुण, मृदुल और कठोर उरजवाली स्वाभाविक रूप से हृदय को हरने वाली वताते हैं[1]। रीति के प्रभाव के कारण सौन्दर्य और वस्त्राभूषण दोनो का विवरण साथ-साथ चलता है[2]। भूषण ने नारी-सौन्दर्य का निरूपण वैभव की पृष्ठभूमि में किया है[3]।

रीतिकाव्य में नारी-सौन्दर्य-वर्णन प्रमुख हो गया है। निश्चिन्त जीवन से उद्भूत विलास की भावना के कारण जन जीवन और काव्य दोनो में ही नूपुर की रुनझुन और विलास की रागिनी व्याप्त थी। कृष्ण-काव्य के कृष्ण और राधा सामान्य नायक-नायिका होकर विविध प्रकार से रसकेलि करते। नारी-सौन्दर्य उपभोग और विलास का साधन था। विलासप्रिय नरेन्द्रो के आश्रय में शृगारी कवि प्रभुप्रसादन के लिए जिस मुक्तक काव्य का सृजन कर रहे थे, उसमें नारी के नख-शिख-वर्णन की बहुलता और प्रधानता थी। नारी का शरीर, उसकी शोभा और सौन्दर्य शाब्दिक क्रीडा, विलासभावना एवम् दुर्वासना का केन्द्र बन गए थे। रीतिकाव्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण में कोई दुराव अथवा छिपाव न होने के कारण सौन्दर्य वर्णन स्पष्ट और शारीरिक ही है। रीति कवियो का सौन्दर्य वर्णन नारी के शृगारी, कामोत्तेजक रूप की ओर ही इगित करता है, उस सौन्दर्य में पावनता एवम् शुचिता के दर्शन में वह असमर्थ हैं। रीति कवियों का वर्णित सौन्दर्य अकृत्रिम और स्वाभाविक सौन्दर्य न होकर नाना वस्त्राभूषण चीर, और रत्नों द्वारा प्रसाधित है, यद्यपि एकाध कवियो ने नारी की सहज स्वाभाविक शोभा का भी वर्णन किया है[4]।

---

१ "अचल चित्त चितवन चलबनी, सुन्दर चातुर तन मन धनी
उर अन्तर मृदु उरज कठोर, सुद्ध सुभाव भाव चितचोर।"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, श्यामसुन्दरदास द्विवेदी, पृ० २६६
२०१३ प्र० स०

२ "सुचि सुरभि सकोमल सारी, कव्वरि मनु नागिनी कारी,
सिर मोती मॉग सुराजै, रावरी कनक मय राजै।"
मान—राजविलास, पृ० १०४, ७वाँ विलास

३ "मुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक महलन सग मैं
विकसत कोमल कमल मानहुँ अमल गग तरग मै।"
भूषण—शिवराज भूषण, भूषण ग्रन्थावली, पृ० १३

४ "लाल मनरजन के मिलिवे कौं मजन कै
चौकी वैठि वार सुखवति वर नारी है।
अजन, तमोर, मनि, कचन, सिंगार, विन
सोहत अकेलो देह शोभा कै सिंगारी है।
सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी
देखि कै दृगन जिय उपमा विचारी है।

नायिकाभेद एवम् अलकरण की प्रवृत्तियो की प्रमुखता होने के कारण प्राय नारी के रूप का वर्णन विविध नायिकाओ के ही रूप में हुआ है, और कवियो ने उसमें अलकारों का चातुर्य दिखाने की ओर अधिक ध्यान दिया है। ये सभी नायिकाभेद के प्रमुख कवि हैं। नायिका-भेद के विविध भेदोपभेदो में वय-सन्धि के प्रति इन रीतिकालीन कवियो को विशेष मोह है। शिशुता और तारुण्य के सगमकाल के अनुपम लावण्य के अकन के लिए बिहारी और सेनापति दोनो ही प्रयत्नशील हैं[1]। इन कवियो के अनुसार नायिका की परिभाषा ही है अपनी कमनीय देहकान्ति, छवि से मानव मन को अधिकाधिक लुभा लेने वाली कामिनी। उसके अग कुदन से भी उज्ज्वल और शुभ्र हैं, उसके अलस नयनो की दृष्टि में विलास की अरुणिमा है, उसकी स्मिति के मधुर मिष्ठान्न ने सभी को विना मोल लिए ही वशीभूत कर लिया है। सबसे बडी विशेपता तो यही है कि ज्यो-ज्यो उसके समीप जाइए उसकी शोभा और भी अधिक प्रतीत होती है[2]। इस परिभाषा में

ताल गीत बिन, एक रूप कै हरति मन
परवीन गाइन की ज्यों अलापचारी है।"

सेनापति—कवित्त रत्नकार, उमाशकर शुक्ल, पृ० ४८ तरग २
५४ कवि, १९४८ प्रयाग

१ "लोचन जुगल थोरे-थोरे से चपल सोई
सोभा मद पवन चलत जलजात की।
पीत है कपोल तहां आई अरुनाई नई
ताही छवि करि सीस आभा पात पात की।
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत
उज्ज्वल बिमल दुति पैये गात गात की।
सैसव निसा अथौत जोवन दिन उदोत
बीच बालवधू झांई पाई परभात की।"

सेनापति—कवित्त रत्नाकर, तरग दो, कवित्त २६

"छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोवनु अगु,
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफ्ता रग।"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, टीकाकार रत्नाकर, पृ० ३४, दो० ७०

२ "ज्यों ज्यो निहारिए नेरे ह्वै नैननि
त्यो त्यो खरी निकसै री निकाई।"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० २७४

"मालती की माल तेरो तन को परसपाइ,
और मालतीन हूँ तें अधिक बसानि है।
सोने तें सरूप, तेरे तन को अनूप रूप।
जातरूप-भूषन तें और न सुहाति है॥

सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० ४०, कवित्त २८

आई हुई इन नायिकाओ के प्रत्येक अगों का पृथक-पृथक वर्णन हुआ है। नायिका के कपोल पर भ्रमर सदृश अकित तिल की शोभा निरूपण में ही शतक लिखे गए। गोरे मुख पर का तिल ही इन शृगारी कवियो के लिए पूज्य हो जाता है, और उसकी सालिकराम से उपमा दी जाता है[1]। नयनों की तीक्ष्णता, विशालता, चचलता पर इन कवियो ने पृथक पद कवित्त एवम् दोहे लिखे। अगो का गौरवर्ण उपमा और वर्णन का विषय बना। शरीर के विविध वर्णनीय अगो में नयन, कपोल, केश, अधर, दात, भौं, कटि, जघा आदि हैं। नायिका के तीन रग के तीखे, मायावी, नयन, मीन और कमल को लज्जित करते[2], कही रीतिकालीन प्रसाधन की बहुलता की प्रवृत्ति में अजन रजित, खजन, मीन, हरिण विजयी नयन तीक्ष्ण, चचल और आकर्षक बने हैं[3]। कर्ण विलवित कामराज के बालक के समान नायिका के दृगो ने दर्शन की पिपासा को प्रबल और न बुझने वाली कर दिया। यह नयन ही विविध भावनाओ, मानसिक अवस्थाओ के अभिव्यजक हैं[4]। यह नयन मीन मद-भजन, और मुख पर चन्द्र के अक में दो कमल सदृश शोभायुक्त हैं। यह तीक्ष्ण, विना काजल के ही श्यामल नयन चचलता के प्रतीक हैं, और कर्ण-विलम्बित यह नयन नागर नरो को अपना शिकार बनाते हैं[5]। इन कवियो ने नैनो के सौन्दर्य के अतिरिक्त, उनके

---

१. "गोरे मुख पर तिल बसै ताहि करौं परनाम।
मानहु चन्द विछाइ कै वैठे सालिकराम॥"
शेख मुबारक—तिलशतक, अलकशतक, सेलेक्शन फ्राम हिन्दी लिटरेचर
१५४ पृ०, पोथी ४, भाग १

२ "सायक सम मायक नयन, रगे त्रिविध रग जात।
झरकौ विलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, टीकाकार (दीन) पृ० २६, दो० ५५

३ "अजन सुरग जीत खजन, कुरग, मीन
नैक न कमल उपमा कौं नियरात है।"
× × ×
"कान लौं विसाल कामभूप के रसाल बाल
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है।"
सेनापति—कवित्तरत्नाकर, पृ० ३३, तरग २, कवित्त १

४ "वहके, सब जिय की कहत ठौरु कुठौरु लखै न।
छिन औरै, छिन और से, ए छबिछाके नयन॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ८, दोहा ६०

५ "खेलन सिखाए, अलि, भलै चतुर अहेरी मार,
कानन चारी नैन मृग नागर नरनि शिकार।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४, दो० ४५

गुण और प्रकृति एवम् प्रभाव का भी वर्णन किया है।

कालिन्दी की वार और अलिमाल से कृष्ण स्निग्ध, दीर्घ, घने केशो[1] की शोभा का भी मुख शोभा में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन कवियो ने दन्त, ग्रीवा, कटि, अधर, चिवुक वाहुमूल को सुन्दरता का सहायक माना है। कटि का सौन्दर्य सूम का दान, मतिमूढ के ज्ञान जैसे नए उपमानो द्वारा व्यजित किया गया है[2]। कवि की शृगारपूर्ण दृष्टि ने नारी-सौन्दर्य पर काम-भाव का आरोप किया है, उसे भामिनी के वाहुमूल काम पीडा का हरण करने वाले प्रतीत होते है[3]। नारी के अरुण अधर उसे अमृतपूर्ण दृष्टिगत होते है[4]। इनके दृष्टिकोण से यौवन के उद्दाम

"पैने अनियारे कँ सहज कजरारे दृग,
पोट सी चसाई चितवन चचलाई की।"

देव—शब्द रसायन, पृ० ७१

"रूप गुन मद उन्मद नेह तेह भरि
छलवन आतुरी, चटक चातुरी पढ़े।
घूमत घुरत, गरबीले न मुरत नैको
प्रानन सो खेले अलवेले लाड़ के वढे।
मीन कंज खजन कुरग मात भृग को
सीचे घनानन्द खुले सकोच से मढे॥"

घनानन्द—घनानन्द ग्रन्थावली, स० विश्वनाथप्रसाद, पृ० १८

१ "सहज सचिक्कन, स्याम रुचि, सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनतु न मनु पथु अपथु लखि बिछुरे सुथरे वार॥"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ४४

२ "सूम कैसो दानु, मतिमूढ़ जैसो ज्ञानु
गौरी गौरा जैसों मान मेरे जान समुदित है।
कौन है सँवारी वृषभानु की कुँवारी यह
जाकी कटि निपट कपट कैसो हितु है॥"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (स० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २००, १६५४ प्र० स०

३ केसोदास गोरे गोरे गोल कामसूल हर
भामिनी के भूजमूल भाइ से उतारे हैं।"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (स० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २०१

४ "अरुन अधर अति सुबुधि सुधा के घर
कोमल अमल दल दुति छीनि लीनी है।"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (स० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २०३

वेग से तरगित कुदनाभ अगो की सार्थकता प्रियतम स्पर्श ही में है[1]। नारी-सौन्दर्य केवल आनन्द एवम् भावना के सन्तोष का उपकरण न होकर शरीर की आकाक्षा की पुष्टि के लिए है। यद्यपि इन्होने नारी-सौन्दर्य के सुन्दरतम् चित्र अकित किए, पर यह सब वासनात्मक छाया लिए हैं। सौन्दर्य में केवल सुन्दरतम् का योग है, सत्यम् और शिवम् उससे दूर है।

रीतिकालीन वातावरण में सुकुमारता और कमनीयता को नारी-सौन्दर्य का अग माना गया। वह सौन्दर्य पुष्प को भी विनिन्दित करने वाली कमनीयता से पूर्ण है। उस भुवन विमोहन सुकुमार गात में गुलाब की पखुरी की स्निग्ध कोमलता आघात पहुँचाती है, गुलाव के झँवा से भी छाले पडने की आशका है, पान खाने से बनी हुई लीक भी उसकी पारदर्शक ग्रीवा में स्पष्ट है[2]। इन वैभव और विलास में पली हुई सत्य अथवा यथार्थ की छाया में परे सुख के हिंडोले झूलती हुई नायिका के अग अनुपम हैं। तुलसीदास के कथन को भ्रमपूर्ण सिद्ध करती हुई कौंहर सी एडियो की लालिमा और अगो की सुखदायिनी शोभा निहार कर स्वय नारी ही विमुग्ध हो उठती है[3]।

---

१ "कुन्दन के अग, नव जोबन तरग उठै,
उरज उतग धन्य प्यारो परसतु है।"
देव—शब्द रसायन, (जानकीनाथसिंह मनोज), पृ० ७०, ७१, सं० २०००, इलाहाबाद

२ "मैं बरजी कै बार तू इत कित लेत करौंट,
पखुरी लगै गुलाव की परिहै गात खरौंट।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, (दीन), पृ० १०, दो० २५६
"छाले परिबै कै डरतु सकै न हाथ छुवाइ,
झिझकते हियै गुलाब कै झवा झँवैयत पाइ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, (दीन) पृ० १०
"लागत समीर लक लहकै समूल अग
फूले से दुकूलनि सुगन्ध विथरचौ परै।"
देव—शब्द रसायन, पृ० ७७

३ "कौंहर सी एडीन की लाली देखि सुभाइ
पाइ महावर देइ को आप भई बेपाइ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४, दो ४४
"आइ हुती अन्हवावन नाइनि सोधै लिये वह सूवे सुभाइनि,
कचुकी छोरि इतै उवटैवौं, इगुर ते अग की सुखदाइनि।
देव सरूप की रासि निहारत, पांय से सीस लौं सीस ते पायनि,
ह्वै ठौर हो ठाढी ठगी सी, हसे कर दै ठोढ़ी ठकुराइन॥"
देव—शब्द रसायन, जानकीनाथसिंह, पृ० ४५

इस प्रकार विभिन्न धाराओ के कवियो के नारी-सौन्दर्य-अकन की समीक्षा करने से सुस्पष्ट है कि इन सभी कवियो ने गृह की सीमा में केन्द्रित रहने वाली नारी के सौन्दर्य का ही चित्रण किया है। रीति-काव्य में नारी के सौन्दर्य का वर्णन इस भाति किया गया है, कि वह कामोद्दीपन में सहायक हो सके। अन्य कवियो के सौन्दर्य-वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज मे भावो के स्थान पर शारीरिक सौन्दर्य को प्राधान्य दिया जाता था।

वस्त्राभूषण और शृंगार के साधन

सभ्यता के शैशव से ही मानव में अपने को सजाने, सँवारने, विविध प्रसाधनो द्वारा सौन्दर्य-वर्धन करने की प्रवृत्ति रही है। सभ्यता के प्रभात मे पत्थर और अन्य धातुओ के अनगढ टुकडे उसके रूप और सौन्दर्य का परिवर्द्धन करते रहे हैं। सभ्यता के विकास के साथ ही इन साधनो और वस्त्राभूषणो की सख्या परिवर्द्धित होती गई। स्वभावत ही नारी अपनी सुन्दरता की वृद्धि और प्रसाधन के प्रति अधिक जागरूक रही, अत उसके वस्त्राभूषणो में वृद्धि होती गई। बहुमूल्य वस्त्र, सुन्दर भूषण एवम् प्रसाधन के अन्य साधनो की सख्या तत्कालीन सभ्यता की कसौटी होती है। काव्य में जीवन, उसके विविध व्यापारो की ही अभिव्यजना होती है। अत काव्य में नारी के सौन्दर्य अकन के साथ ही उसकी शोभा की अभिवृद्धि में सहायक वस्त्राभूषण एवम् प्रसाधनो का विवरण भी मिलता है। आलोच्य-काल के साहित्य में नारी के शृगार के साधन, वस्त्राभूषणो के वर्णन से उस समय के समाज की आर्थिक स्थिति, सभ्यता, कृत्रिमता को प्रधानता देने की प्रवृत्ति तथा विलासिता की भावना का परिचय मिलता है।

सतो ने दाम्पत्य भाव के प्रतीक द्वारा अपनी भावनाओ का पत्नी अथवा प्रेयसी के साथ तादात्म्य किया है। उनके भावप्रधान काव्य में नारी रूप अथवा उसके प्रसाधन के विवरण का अभाव ही है। सूफी काव्य में कवियो ने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम को व्यक्त किया है। अत उनके काव्य में स्वभावत. ही लौकिक जीवन का, उसकी वैभव विलासमयी पृष्ठभूमि में, अकन किया गया है। उनके नारी-सौन्दर्य, नखशिख-निरूपण के साथ ही, उनके वस्त्रो, विविध शृगार के साधनो का भी विस्तृत चित्रण हुआ है। भारतीय परम्परा एवम् कामशास्त्र में मान्य षोडष शृगारों का उल्लेख सूफी काव्य में यत्र-तत्र मिलता है[1]।

सूफी काव्य का प्रस्फुटन फारसी सस्कृति के अक में, वैभव की स्वप्निल छाया में होता है। समस्त सूफी नायिकाएँ राजभवन की कोमलागिया हैं, वैभव और विलास के समग्र साधन उन्हे सुलभ हैं। अत उनके प्रसाधन में बारह आभरण[2]

---

१ "पुनि सोरह सिंगार जस चारिहुँ जोग कुलीन।
दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभर चहुं खीन॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० ३२२

२ "जो न सुने तौ अब सुनु बारह अभरन नाउँ।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० ३२१

और सोलह श्रृंगारो का समावेश स्वाभाविक ही है। वस्तुत जायसी ने सोलह श्रृंगार एवम् बारह आभरणो को एक ही में मिला दिया है। बारह आभरण नूपुर, किंकिनी, वलय, अगूठी, ककण, हार, कठश्री, वेसर, खूट या झिरिया, टीका, सीसफूल हैं। उनका वर्गीकरण भवेध्य आरोप्य और क्षेप्य में किया जाता है[1]।

सुसज्जित पद्मावती पूर्णिमा की रात्रि की शशि प्रतीत होती है। पहले उसने शरीर को धोकर स्नान किया, पुन वस्त्र पहने। अपने सुदीर्घ केशो का उसने विन्यास किया, माग को सिन्दूर रजित किया पुन उसे मुक्ता और मानिक के चूरे से सजाया। अनेक प्रकार के सुवासित वस्त्रो को धारण किया, रत्नो को गूंथ कर माँग में सुशोभित किया, ललाट पर तिलक खीचा, कानो में कुण्डल खूंट और खूंटी धारण किए[2]। शोभा और रूप-वर्धक यह प्रसाधन नारी-सौन्दर्य के आवश्यक अँग हैं, वकिम नयनो को अजन रजित करने से उनकी शोभा और भी बढ जाती है[3]। कर्णों में कर्णफूल की शोभा चन्द्र पर सूर्य का सौन्दर्य दिखाती है[4]। बहुँटा और टाँड पहने हुए बाहें भावपूर्वक सचालित होती हैं। कटि में क्षुद्रघट और स्वर्ण का डोरा पहिने हैं, चलने के समय जिनसे छत्तीसो राग नि सृत होते हैं[5]।

सूफी-काव्य के वैभव विलासमय वातावरण में नायिका नव अभिनव श्रृंगार करती है, कभी वह लहरदार सारी, अगिया को धारण करती, और कभी मेघवर्ण का स्वर्ण-मुद्रित और मुक्ताजटित चिकवा वसन धारण करती है। प्रतीत होता है कि तत्कालीन कला एवम् परिधान प्रणाली उच्च स्तर की थी। विभिन्न वर्ग

---

१ जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (रामचन्द्र शुक्ल) फुटनोट, पृ० १३०
च० स० २००६ काशी

२. "कै मजन तब किएहु अन्हानू, पहिरे चीर गएउ छवि भानू।
रचि पत्रावलि मांग सेन्दूरा, भरि मोंतिन्ह औ मानिक चूरा।
चन्दन चित्र भए बहुभाँती, मेघ घटा जानहुँ बग पाँती।
सिरें जो रतन मांग बैसारा, जानहुँ गगन टूट लै तारा॥
तिलक लिलाट धरा तस डोठा, जनहुँ दुइज पर नखत बईठा।
मनि कुडल खुंटिला औ खूंटी, जानहुँ परी कचपची टूटी॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० ३२२–२३

३ "बांक नैन औ अजन रेखा, खजन जनहु सरद रितु देखा।
जस जस हेर फेर चखु मोरी, लुरै सरद महँ खजन जोरी॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२३, १९५३ इलाहाबाद

४. "कनकफूल नासिक अतिसोभा, ससिमुख आइ सूक जनु लोभा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२३

५ 'बांहन्ह बाँहू टाड सलोनी, डोलत बांह भाउ गति लोनी।
छुद्रघटि कटि कांचन-तागा, चलतै उठै छतीसो रागा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२४

की नारियो के उपभोग्य वस्त्र वाससर झिलमिल आदि प्रचलित थे[1]। नारियाँ वैभव के इन उपकरणों का, प्रसाधन के साधनो एवम् वस्त्रो का प्रयोग द्वारा सौन्दर्य-वर्द्धन करती थीं।

माधवानल-कामकन्दला में भी कामकन्दला अग में उवटन लगाकर स्नान करती, पुन सुगन्धित तैल और चन्दन लगाती है[2]। चित्रावली भी अपनी माँग का प्रचलित प्रथानुसार मोतियों से शृगार करती हैं, केशो के ऊपर शीशफूल लगाना सामान्यत सौभाग्य एवम् शोभा का चिह्न समझा जाता था[3]। परन्तु मुख्यत शृगार एवम् सज्जा का मुख्य उद्देश्य प्रियतम को रिझाना था। इन्द्रावती के कर्णफूल मयंक की प्रभा को मलिन करने वाले हैं। वह कुकुम के तिलक से मस्तक सवारती है। वस्तुत. इनका प्रसाधन, सौन्दर्य-वर्णन सयोग के पूर्व का है, अत वासना और काम को उत्तेजना देने वाला[4] है।

तुलसी ने इन प्रसाधनो और वस्त्राभूषणो का अत्यल्प वर्णन किया है। उन्होने रामचरितमानस में स्वयवर-समय सीता की वेश-भूषा का विशद चित्रण नही किया, केवल उल्लेख मात्र किया है कि सीता सुन्दर रग की साडी पहने है, सभी अगो में यथास्थान आभूषण पहने है। फुलवारी में भी वह तीन भूषणो का ही उल्लेख करते हैं[5]। इन भूषणो—ककन, किंकिनी, नूपुरो की ध्वनि मानो काम की

---

१. "पटुवन्ह चोर आनि सब छोरी, सारी कंचुकी लहर पटोरी।
फुदिया और कसनिया राती, छाएल पडु आए गुजराती।
चदनौटा खीरोदक फारी, बाँस पीर झिलमिल की सारी।
चिकवा चोर मेघौना लोने, मोंति लाग औ छापे सोने॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० ३४४

२ "तेल सुगन्ध अरगजा कीन्हा, अग उवटना मजन कीन्हा।"
आलम—माधवानल कामकन्दला, हिन्दी के कवि और काव्य तृतीय भाग, पृ० १९८

३ "भरे माँग मोती मनियारे, नखत पाँति ससि आइ निहारे।
सीसफूल कच ऊपर वासा, स्याम रैनि मधि सूर विकासा॥"
उस्मान—चित्रावली, पृ० १०३

४. "करन करनफूल छवि भारी, मन्द मयक की कोटिक नारी।
मनिमुक्ता लागे दैङ्गरज, मानो घन माँह दिए होइ तूरज॥
कर कुकुंम लै तिलक सवारे, चैन मैन जनु वान सुधारे॥"
आलम—कामकन्दला, हिन्दी के कवि और काव्य, भाग ३ पृ० १९०५

५ "सोह नवल तन सुन्दर सारी, जगत जननि अतुलित छवि भारी।
भूषन सकल सुदेस सुहाए, अग अग रचि सखिन्ह बनाए॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० १०७
"ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लषन सन राम हृदय गुनि।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्हीं, मनसा विस्व विजय कहं कीन्हीं॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ९९

दुंदुभी का स्वर है। गीतावली में अयोध्या की स्त्रियाँ कुसुम्भी चीर और विविध प्रकार के आभूषणो को धारण कर भूला भूलने जाती हैं[1]। तुलसीदास ने नारी के शृगार और वस्त्राभूषणो का अन्य कवियो के सामान सविस्तार वर्णन नही किया। रामलला नहछू में तुलसीदास ने निम्नवर्ग की परिधान प्रणाली और वस्त्राभूषणो का वर्णन किया है[2]।

केशव ने रामचन्द्रिका में सीता की सखियों तथा अयोध्या की नारियो की वेशभूषा एवम् शृगार का चित्रण किया है। उस समय अनेक वर्णो के वस्त्रो का प्रचार था, राम के ऊपर मगलकामनाओ एवम् पुष्प की वर्षा करती हुई नारियो में से कोई नीलाम्बर और कोई जरी के काम के वस्त्र धारण किए हैं[3]। हाथो की उँगलियो में स्वर्ण की अगूठी अब भी पहनी जाती है, और आलोच्यकाल में भी पहनी जाती रही होगी। पैरो को मगल और सौभाग्य के चिन्ह महावर से रजित किया जाता था[4]। विविध प्रकार की केशविन्यास की प्रणालियाँ भी प्रचलित थी[5]। प्राय सभी कवियो ने माँग को सिन्दूर रजित कर, उसे मुक्ता रेखा से सजाने का विवरण दिया है। शीशफूल सिर पर, और बेंदा मस्तक पर लगाया जाता था। केशो में पुष्पमाल पहनी जाती थी[6]।

---

१ "कुसुभी चीर तनु सोहहिं भूषन विविध सवारि।"
तुलसी—गीतावली भाग २, पृ० ४२३

२ "काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो,
गजमुक्ता कर हार कठमनि मोहइ हो,
कर ककन, कटि किंकिनि नूपुर बाजइ हो,
रानी कै दीन्ही सारी तौ अधिक विराजइ हो।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, रामलला नहछू पृ० ४

३ "नील निलोचन को पहिरे यक चित्त हरै।
मेघन की दुति मानो दामिनि देह धरे।
एकन के तन सूछम सारि जराय जरी।
सूर करावलि सी जनु पद्मिनी देह धरी।"
केशव—रामचन्द्रिका (दीन) पूर्वार्ध, पृ० १२८ पचमावृति २००१ स०

४. "सुन्दर अगुरिन मुदरी वनी, मणिमय सुवरण शोभास
केशव—रामचन्द्रिका (दीन ० १५
"कठिन भूमि अति कोवरे जावक सुभ शुभ पाय।"
केशव—रामचन्द्रिका, (

५ "भाँति भाँति कवरी सुभ देखी, रूप भूप तरवा
केशव—के

६ "सेंदुर माँग भरी अति भली, तापर शोभित
गग गिरा तन सो तन जोरि, निकसी जनु

कृष्णकाव्य अपनी लोकरजक प्रवृत्ति के कारण जिस पृष्ठभूमि में पल्लवित हुआ उसमें स्वभावत ऐश्वर्य और वैभव का प्राधान्य होने के कारण वस्त्राभूषणो और प्रसाधन के साधनो की सख्या भी अधिक है। व्रजनारी व्रजवल्लभ से मिलने के लिए सोलहो शृगार करती और पांच रग की सुरग सारी पहनती है[1]। नयनो का शृगार अजन से, शरीर का अगराग चन्दन आदि से होता था। सूर ने इन प्रसाधनो का विवरण न्यून दिया है, भूषणो को बहुत महत्त्व दिया है[2]। तत्कालीन समाज में आर्थिक समृद्धि के मध्य भूषणो का प्रचार अधिक होगा। कटि, किंकिनि, नूपुर और ककण तो जन सामान्य में ही प्रचलित थे[3]। मोतियो से मांग भरने और केशो का पुष्पो से सजाने का भी शृगार-कलाविदो द्वारा जनसाधारण में प्रचार था। कुम्भनदास की नायिका के केशो से सुमन विखरते हैं, केलि के उपरान्त मांग के मोती छितर जाते हैं[4]। व्रजनारी की शोभावर्णन में सूर ने पग की जेहरी, किंकिनी, ककण, चूडी, मुक्ताहार, कठश्री, दुलरी, नाक की लौंग, कानो के कुण्डल आदि आभूषण तथा लाल लहगा और पचरगी सारी का विवरण दिया है[5]।

शीशफूल शुभ जरयौ जराय, मांग फूल सोहै समभाय।
वेनी फूलन की वरमाल, भाल भले वेंदाजुत लाल।"
केशव—केशव ग्रन्थावली, भाग २ पृ० ३८३

१ "पहिरि सारी सुरग पंचरग षष्ठ दस सिंगारि।"
सूर—सूरसागर पूर्वार्द्ध, पृ० ५४८, पद ६४४

२ सूरसागर, पृ० ७८०, पद १४६८।२११६

३ "जैसेइ वने स्याम, तैसीयै गोपी, छवि अधिकाइ।
ककन, चुरी, किंकिनी, नूपुर, पैंजनि, विछिया सोहति।"
सूर—सूरसागर पूर्वार्द्ध, पृ० ६२५, पद १०५८।१६७६

"वेनी छूटि लटै वगरानी, मुकुट लटकि लटकानौ।
फूल खसत सिर तै भए न्यारे, सुभग स्वाति सुत मानौ।।"
सूर—सूरसागर पूर्वार्द्ध, पृ० ६२५, पद १०५७।१६७५

४ "मोतिन मांग वियुरी सीस मुख पर मानो नक्षत्र आये करन पूजा।"
कुम्भनदास—कुम्भनदास पदावली, पृ० १४७ अष्टछाप पदावली, सोमनाथ गुप्ता

५ "वनी व्रजनारि-शोभा भारि
पगनि जेहरि, लाल लहगा, अग पचरग सारि।
किंकिनी कटि, कनित ककन, कर चुरी झनकार,
हृदय चौकी चमकि वैठी, सुभग मोतिनहार।
कण्ठश्री दुलरी विराजति चिवुक स्यामल विन्दु,
सुभग वेसरि ललित नासा, रीझि रहे नंद नद।।"
सूर—सूरसागर पूर्वार्द्ध, पृ० ६१६, पद १०४३।१६६१

शेष, महेश और नारदादि की स्वामिनी राधा नीलाम्बर धारण करती हैं, चन्द्र सदृश मुख पर सिंदूर का अरुण विन्दु न लगा कर कस्तूरी का श्यामल चिन्ह बनाती हैं। वह भी अपनी केश रचना में प्रसूनो का प्रयोग करती हैं, सोने की सकरी और रत्न-मुक्ताजटित लटकन उनकी शोभा को परिवर्द्धित करते हैं। नयनो को अजन रजित करने से काम वाणो की वर्षा होने लगती है[1]। कृष्ण-काव्य में नारी वस्त्राभूषणो एवम् प्रसाधन द्वारा सौन्दर्य परिवर्द्धन कर प्रिय को विमुग्ध करती है। वह इस साज-सज्जा को अपने मनमोहन को मोहित करने का ही अस्त्र समझती है।

रीतिकाव्य वैभव के चरमोत्कर्ष के युग की परिस्थितियो में विकसित हुआ था। रीति-कवि वैभव की स्वर्णिम छाया में रहते तथा फारसी एवम् भारतीय कला और प्रसाधन की उच्चतम सामग्रियो का उपयोग करने वाले नरेन्द्रो का अनुकरण करते। उनके वैभवपूर्ण जीवन मे प्रसाधन और कृत्रिमता वैभव और समृद्धि, आभूषण और वस्त्रो, विविध सुगन्धो, चोवा चन्दन और घनसार का मुख्य स्थान था[2]। इनके जीवन और इनके अन्त पुर की नारियो की साज-सज्जा से प्रेरणा पाकर रीतिकाव्य की कल्पना भी रत्नजटित हो गई। रीतिकाल के कृत्रि-मता प्रधान जीवन के मुगल सम्राटों के अन्त पुर की स्त्रियो का कार्यक्रम केवल नवनूतन साधनो द्वारा अपने सौन्दर्य का परिवर्द्धन कर सौन्दर्य की प्रतिद्वन्द्विता में स्थान प्राप्त करना था। इन्ही सब उल्लिखित कारणो से रीतिकाव्य के प्रसाधन तथा वस्त्राभूषणो में वैभव का आधिक्य स्पष्ट है। वैसे सामान्यत रीतिकाव्य में वैभवपूर्ण वस्त्राभूषण एवम् जनसाधारण में प्रयुक्त वस्त्राभूषण तथा प्रसाधन दोनो का ही वर्णन मिलता है[3]। रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्ति शृगार, नायिकाभेद एवम्

---

१ "ससि मुख तिलक दियौ मृगमद कौ, खुभी जराय जरी है,
नासा-तिल-प्रसून वेसरि-छवि, मोतिनि माँग भरी है।
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित, गूँथे सुमन रसालहिं,
× × ×
कवु कंठ नाना मनि भूषन, उर मुकुता की माल।
कनक-किंकिनी नूपुर कलरव कूजत वाल रसाल॥
चौकी हेम चद्रमनि-लागी रतन जराइ खँचाई।"
सूर—सूरसागर प्रथम भाग, पृ० ६२३-२४

२ "सेनापति अतर, गुलाव अरगजा साजि
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीष्म के वासर वराइवे को 'सीर' सव
राज-भोग काज राज यौं सम्हारियत हैं।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर तीसरा तरग, छद १०

३ "वेंदी भाल, तवोल मुख सीस सिलसिलेवार।
दृग आँजे राजै खरी, एई सहज सिंगार॥"
विहारी—विहारी रत्नाकर, पृ० २८०, दो० ६०९

अलकरण की प्रवृत्ति के कारण नारी-सौन्दर्य निरूपण में भी वस्त्राभूषण का योग अनिवार्य हो गया है। केशव ने तो अनाभरणा नारी को शोभाहीन ही माना है[1]। केशवदास पवित्रता-सकल शुचि, स्नान, महावर, केशविन्यास, अगराग विविध भूषण, मुख-वास, कज्जल-कलित लोचन से दृष्टि-निक्षेप, बोलना, हँसना, मृदु-चातुर्य, मनोहर भगिमा, और प्रतिक्षण पातिव्रत पर दृढ रहना यह नारी के सोलह शृगार बताते हैं[2]। रीतिकालीन काव्य में प्रसाधन, शृगार, वस्त्राभूषणो की सज्जा स्वाभाविक रूप से सौन्दर्य बढाने को नही होती है, प्रत्युत यह सब प्रियतम को वश कर लेने के साधन के रूप में आते हैं। वस्तुत इस सज्जा और आभूषणो में ही नारी स्वर्ण शृखला की वन्दिनी बन गई थी।

कृष्णकाव्य और रीतिकाव्य दोनो में ही स्वकीया का प्रियतम द्वारा शृगार होता है। सेनापति का नायक, प्रियतमा की वेणी को फूलो से सँवार कर, मस्तक पर कस्तूरी की श्याम बिन्दी अकित कर, भूषण-सज्जित कर अपने हाथो से ही उसे ताम्बूल खिलाता है[3]। कही मतिराम की अभिसारिका नायिका के केसर-रजित अग, जवाहर की ज्योति से भी अधिक प्रकाशमान शरीर की द्युति ग्रीष्म के

बादले की सारी दरदावन किनारी जग-
मगी जरतारी झीनी झालरि के साज पर।
मोती गुहे कोरन चमक चहूँ ओरन ज्यों
तोरन तरैयन की तानी द्विजराज पर॥"

देव—शब्द रसायन, पृ० ७१

१ "जदपि सुजाति सलच्छिनी सुबरन सरस सुवृत्त,
भूषन बिनुन बिराजई कविता वनिता मित्त।"

केशव—पंचरत्न, (दीन) १९८६ इलाहाबाद, पृ० १५३

२. "प्रथम सकल सुचि मजन अमलवास
जावक सुदेस केसपास को सुधारिबो
अगराग भूषन विविध मुखवास-राग
कज्जल-कलित लोचन लोल, बिहारिबो।
बोलनि हसनि मृदु चातुरी चितौनि चारु
पल पल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो
'केसोदास' सबिलास करहु कुँवरि राधे
इहि बिधि सोलह सिंगारनि सिंगारिबो।"

केशव—केशव ग्रन्थावली प्रथम भाग, पृ० १४

३ "फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है।

मध्यान्ह में दावाग्नि का भ्रम उत्पन्न करती है[1]। इन रीतिकालीन कवियो ने नायिकाभेद के विभिन्न भेदो में ही इन वस्त्रालकारो की छटा दिखलाई है। देव ने वैभव एवम् विलास के मधुमय स्वप्न अधिक देखे थे, अत उनके काव्य में नायिकाओ के वस्त्राभूषण मे कृत्रिमता, वैभव, रत्नो की जगमगाहट अधिक है। देव की सामान्या नायिका लाल किनारी की बादला की सारी, जवाहर के जूतो, और रत्नजटित भूषणो की शोभा तथा इगित से ही वार्तालाप कर लेने के गुण, भ्रू-सचालन की विशेषता से चित्त को आकर्षित कर लेती है[2]। कुछ प्रमावन सौभाग्य का चिन्ह होने के अतिरिक्त शोभा भी कई गुनी वर्द्धित करते हैं[3]।

प्रसाधन और अलकरण की प्रवृत्ति जनसाधारण में सदा मान्य रही है। समय और परिस्थितियो के प्रभाव से इसके महत्व में सापेक्ष न्यूनता अथवा अधिकता होती रही है। रीतिकाल के शृगारिक वातावरण मे वस्त्राभूषणो के नवनूतन रूप, भूषणो के अभिनव जडाव, प्रसाधन के नवीनतम साधन प्रचलित होते रहे थे। नारीगण मे स्थिति के अनुसार यह प्रसाधन आदि प्रचलित थे। धनाभाव

अग अग भूषण बनाइ ब्रजभूषन जू,
बीरी निज कर ते खवाई अति हित है।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, उमाशकर शुक्ल सम्पादित, तरंग २,
पृ० ४३, पद ३६

१. "सारी वर नारी की झलक झलकति कैसी,
केसरि को अगराग कीन्हो सब तन मैं।
तीछन तरनि के किरन तैं दुगुन जोति,
जागति जवाहर जटित आभरन मैं।
कवि मतिराम आभा अग की अगनि की,
धूम कैसी धारा छवि छाजति कचन मैं।
ग्रीषम-दुपहरी में हरि को मिलन जात,
जानी जात नारि वा दवारिजुत वन मैं॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ३१४ : स० कृष्णविहारी मिश्र
द्वि० स० १९३४

२ "सोहत किनारी लाल वादला की सारी और अगनि
उज्यारि कसी कचुकी बनाइ कै।
जेवर जडाउ जगमगात जवाहिर की जूती जोती
जावरु की कीती पग पाइकै।"
देव—भावविलास, पृ० ९८

३ "कहत सबै, बेंदी दिए आंक दसगुनो होतु।
तिय लिलार बेंदी दियैं अगनित वढ़त उदोत॥"
विहारी—विहारी रत्नाकर, पृ० १३६, दो० ३२७

अथवा नागरिक प्रसाधनो की अनभिज्ञता से ग्राम की गोरी सोनकिरवा का आडा तिलक लगाकर ही अपनी सज्जा पूर्ण कर लेती है[1]।

घाँघरा अथवा लंहगा, कचुकी और साडी, चीर आदि आलोच्यकाल की नारी वेष-परिधान प्रणाली में प्रयुक्त होते थे। शरीर के प्रत्येक अग में अनेक भूषण, जिनका विवरण दिया जा चुका है, पहने जाते थे, सामान्यत व्यवहृत होनेवाले आभूषण नूपुर, किकिनी, ककन, वलय और बेसरि थे। यह आभूषण तथा अन्य प्रसाधन नवीन न होकर सस्कृत-काव्य की परम्परा से आगत हैं। सस्कृत-काव्यो में भी हार, नूपुर, वलय तथा वसन अगराग सुमन आदि प्रसाधन तथा आभूषणो के रूप में वर्णित होते रहे। माघ के 'शिशुपाल-वध' में हार, नूपुर, अधरों में अलक्तक, चरणो में लाक्षाराग लगाने का उल्लेख मिलता है[2]। माँग के शृगार में मोती और सिन्दूर दोनों का ही प्रयोग होता था। इन आभूषणो का प्रयोग सौन्दर्य परिवर्द्धन, प्रदर्शन, प्रतिष्ठा की सूचना देने के लिए होता था। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, कि आलोच्य-काव्य में नारी के प्रसाधन तथा वस्त्राभूषणो का उद्देश्य सौन्दर्य परिवर्द्धन कर पुरुष को अभिभूत करना है। अत नारी अपनी समस्त साज-सज्जा, वस्त्राभूषणो की अमूल्यता में भी शृगार के एक उपकरण के रूप में ही प्रस्तुत हुई है।

---

१ "गोरी मदकारी परं हँसत कपोलनु आड,
कैसो लखत गँवारि यह सोनकिरवा की आड।"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २९३, दो० ७०८

२ "सममेकमेव दधतु सुतनो
गुरु हार भूषणमुरोज तरौ"

माघ—शिशुपालवध ९।४४

"तारलोलवलयेनकरेण"

माघ—शिशुपालवध १०।५२

"चरणतल सरोजक्रान्ति सक्रान्तयाऽसौ
वपुषि नख विलेखो लाक्षया रजितस्ते।"

माघ—शिशुपालवध १०।५३

"अधरों में अलक्तक कपोलों में रोध्रचूर्ण नयनों में अजन।"

माघ—शिशुपालवध ९।४६

'उपसंहार'

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की विविध काव्यधाराओ की नारी-भावना के विश्लेषण से यह सुस्पष्ट है कि मध्ययुग का कवि सामान्य नारी को श्रद्धा एवम् आदर की दृष्टि से नही देखता है। नारी-आदर्श के विषय में उसकी निजगत व्याख्याएँ हैं। सन्तकाव्य से लेकर रीतिकाव्य की परिवर्तित होती हुई परिस्थितियो में उद्भूत काव्य मे सैद्धान्तिक मतभेद, व्यावहारिक विषमताएँ होते हुए भी इस विषय में एकरूपता है। सभी कवियो ने समवेत स्वर से उसे कामवासना का मूल बताया, तथा योनि मात्र ही देखा। विरक्ति-प्रधान सन्तो, प्रेमगाथाकार सूफियो, रामकाव्य के आदर्शवादी कवियो कृष्ण प्रेम-मदोन्मत्त कृष्ण-भक्तो तथा शृगार एवम् विलास को ही जीवन का चरम सत्य समझने वाले रीति कवियो ने भी उसे वासना का उपकरण, विलास की सामग्री ही माना है।

आलोच्य वीरकाव्य परवर्ती चारणकाव्य की परम्परा पर ही विकसित हुआ। अत यह वीर काव्यकार भी नारी को वीरभोग्या ही मानते हैं। इन कवियो को शौर्य की ज्वलन्त ज्वाला बन जाने वाली, पति एवम् पुत्र को सस्मित वदन रण-सज्जा में सज्जित करनेवाली वीर नारी के चित्रण के स्थान पर नारी का विलास-रत रूप अधिक प्रिय रहा है। परन्तु इन वीर कवियो की नारी-भावना विलास के प्रागण तथा उत्सर्ग की स्थली दोनो मे ही व्यापक है। शृगार की दोला पर तरगित होती नारी में आत्मोत्सर्ग की भावना, युद्ध में शत्रु-सहार की क्षमता तथा पातिव्रत के प्रति मोह है। अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए अग्निमालाओ का शृगार बन जाना उसके लिए सहज ही है। वीर पत्नी, वीर माता के रूप में नारी का चित्रण हुआ है।

सन्तकाव्य में सामान्य नारी घृणा एवम् भर्त्सना की पात्री है। अपने मोहक प्रलोभनो द्वारा मानव को विराग-पथ से च्युत करने के कारण वह त्याज्य है। नारी का महत् त्याग, माता, पत्नी, भगिनी, प्रेयसी आदि विभिन्न स्वरूपो में उसके सत् रूप का विकास, त्याग और विराग को ही काम्य समझने वाले, सन्तो के लिए उपेक्षणीय रहा। सामान्य नारी की निन्दा करने पर भी पतिव्रता नारी के आत्मत्याग के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा की भावना अवश्य रही, जो प्रतीक द्वारा व्यजित हुई है। पतिव्रता के अक्षय गौरव, नारी के निश्छल आत्म-समर्पण के साथ उन्होंने अपनी भावनाओ का तादात्म्य ही कर दिया है। परन्तु नारी निन्दा में उनका स्वर सबसे तीव्र एवम् कटु रहा है। शास्त्रो एवम् नीति-ग्रन्थो के प्रति खण्डनात्मक दृष्टिकोण रख कर भी नारी निन्दा मे इनका मत सन्तो को

लौकिक प्रेम के प्रतीक के द्वारा अलौकिक प्रेम का आभास देने वाले सूफी-कवियो ने अपनी भाव-व्यजना में नारी को परमात्मा अथवा दिव्य शक्ति का प्रतीक माना है। उनके काव्य में नारी की अधिक तीव्र भर्त्सना तो नहीं मिलती परन्तु युग के प्रभाव, उन विशिष्ट परिस्थितियो में पोषित मनोवृत्ति के कारण प्रेमगाथाकारो ने भी नारी को भोग का विषय तथा वासना की ओर उन्मुख करने वाली माना है। अशिक्षा तथा कुसस्कारो में पली हुई उस युग की नारी कवि के समक्ष कोई उदात्त आदर्श एवम् प्रेरणा भी नही प्रस्तुत कर रही थी। अत सूफी कवियो के काव्य में नारी के प्रति अवज्ञा एवम् हीनता का भाव स्पष्ट है। परन्तु उन्होने भी दाम्पत्य जीवन के मध्य नारी में पातिव्रत के प्राजल आदर्श का विकास दिखाया है। पति के साथ सहमरण करनेवाली सती का अक्षय सुहाग इनकी प्रशसा एवम् श्रद्धा का विषय है।

राम के लोकरक्षक स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले रामकाव्य के उच्च आदर्श-पूर्ण कर्तव्य-विधान में साधारण नारी को गौरव एवम् सम्मान का अवकाश नही है। इन कवियो ने नारी को ही परिवार मर्यादा की भित्ति मानकर उसके लिए कठोर आचारशास्त्र निर्धारित किया। नारी के कर्तव्यरत, आदर्श की रेखाओ पर विक-सित होते हुए रूप को कल्याण का प्रतीक मानने वाले इन कवियो ने भी नारी को 'मोह', 'वासना', 'काम' आदि का कारण मानकर उससे पृथक रहने की चेता-वनी दी। कर्तव्य-परायण पतिव्रता नारी के गौरव का गान इन कवियो ने भी किया है, परन्तु सत्-असत् से पूर्ण सामान्य नारी के लिए उनकी करुणा एवम् श्रद्धा के कोष का द्वार शृखलाबद्ध है। तुलसी ने सामान्य नारी को कामवासनामयी, सहज अपावन, जड, अज्ञ माना है। नारी का आदर्श एवम् कर्तव्य के पथ से तिल-मात्र भी विचलित होना उन्हे सह्य नही है। कवि बौद्धिकता अथवा मनोविज्ञान के आधार पर नारी के अपराध को मानवी दुर्बलता मानकर उदार न्यायाधीश के समान सन्देह के आधार पर अपराधी को मुक्त नहीं करता, प्रत्युत नारी के किंचित स्खलन, छोटे से दोष से ही कवि सम्पूर्ण नारी जाति के विरुद्ध अपना दृढ, कठोर और निश्चित निर्णय दे देता है कि नारी जड बुद्धि वाली है, अथवा नारी के चरित्र की अगमता को समझने में विधि भी अशक्य है।

कृष्णकाव्य की रागानुगा धारा में मर्यादा-अतिक्रमण क्षम्य ही नही, विशिष्ट परिस्थितियो में श्लाघ्य भी माना गया है। विशिष्ट नारी के रूप में गोपियो के कुल लोक मर्यादा त्याग का गुणगान करने वाले सूरदास ने भी सामान्य नारी के लिए सामाजिक परम्पराओ तथा प्रतिबन्धो का पालन ही श्रेयस्कर माना है। सामान्य नारी के आचरण के लिए उन्होने भी कठोर आदर्श का निर्देश किया है। नारी को यह कृष्ण-भक्त कवि भी माया के आकर्षण पाश, काम तथा वासनाओ के विष से पृथक न रख सके। यद्यपि इन कवियो ने नारी के भोग-परक, शृगार-मय रूप को गर्हित तथा त्याज्य बताया, परन्तु इन सगुण भक्त-कवियो के अनुसार नारी का वासनामय रूप ही निन्दनीय है।

वात्सल्यमयी त्यागमूर्ति जननी, पातिव्रत-रत पत्नी के सत् स्वरूप की व्यजना में आदर्शमयी रेखाएँ श्रद्धा एवम् आदर की भावनाओ में मुखर हैं। गोविन्द स्वामी, कुम्भनदास, सूरदास तथा तुलसीदास ने जननी के वात्सल्यपूर्ण ममतामय रूप का चित्रण किया है। सूर द्वारा चित्रित यशोदा, तुलसी की कौशल्या एवम् सुमित्रा में त्याग और उत्सर्ग की प्रधानता है। यह स्पष्ट है कि माता रूप में नारी कवि की श्रद्धा की पात्री है। इन सभी धार्मिक सम्प्रदायो में नारी को भक्ति-साधना का अधिकारी माना गया है।

रीति-काव्य सामन्ती-आधारशिला पर स्थित समाज के विलासरत वर्ग की भावनाओ की अभिव्यजना है। विलास तथा शृगारिकता के जिस युग में रीति-काव्य का सर्जन हुआ, उसने नारी को जीवन के लिए परमावश्यक मानते हुए भी उसे क्रीडा एवम् विलास की सामग्री में ही सम्मिलित किया। अत रीतिकवियो के नारी के प्रति दृष्टिकोण में अतृप्ति एवम् मोह है। उनके एकागी, एकपक्षीय सकुचित दृष्टिकोण के समक्ष नारी सौन्दर्य अपूर्ण रहा, उसमे सत्यम् तथा शिवम् का योग नही हो सका। इन रीति-कवियो ने नारी को एकमात्र कामिनी के रूप में ही देखा, पारिवारिक जीवन के अन्य सत्सम्बन्धो का विकास वे नारी में नही देख सके। उनके द्वारा वर्णित नारी में कामुकता और वासना का दुर्दम्य विलास है, उत्सर्ग की पावनता और दीप्ति नही।

मध्ययुगीन कवियो द्वारा चित्रित नारी के सत् एवम् असत् दोनो रूप उपलब्ध हैं। आदर्श तथा कल्पना के प्रति मोह के कारण, उसकी ममता आदि विशेषताओं को परिलक्षित कर कवि ने उसे सुनारी की सज्ञा दी, और कभी उसकी दुर्बलता एवम् दोषो पर खीझ कर उसे कुनारी कहा है। सत् एवम् असत्, आदर्श एवम् यथार्थ की इन्ही-रेखाओ पर मध्ययुगीन कवि ने नारी का चित्रण किया है।

○

परिशिष्ट—१

सहायक ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ

१ अष्टछाप पदावली सम्पादक श्री सोमनाथ गुप्त
२ कबीर ग्रन्थावली कबीर श्री श्यामसुन्दरदास, १९२८, प्रयाग
३ कबीर साहब की शब्दावली भाग १ कबीर श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, १९३१, काशी
४ कवित्त रत्नाकर सेनापति श्री उमाशंकर शुक्ल
५ कुंभनदास की पदावली कुंभनदास १९५३, कांकरौली
६ केशव ग्रन्थावली भाग १ (रसिकप्रिया, कविप्रिया) केशव श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, १९५४, इलाहाबाद
७ केशव ग्रन्थावली भाग २ श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र
८ रामचंद्र-चंद्रिका (छंदमाला, नखशिख) केशव १९५५, इलाहाबाद
९ गोरख-बानी गोरखनाथ श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, द्वि० सं०, १९४६
१० गोविन्द स्वामी (पदावली) गोविन्द स्वामी श्री व्रजभूषण शर्मा तथा अन्य, १९५२, कांकरौली
११ गोरा बादल की कथा जटमल श्री अयोध्याप्रसाद, १९३४, प्रयाग
१२ घन आनन्द घनानन्द श्री विश्वनाथप्रसाद, १९५२, काशी
१३ चरनदास की बानी चरनदास बेलवेडियर प्रेस, १९२१, प्रयाग
१४. चित्रावली उस्मान श्री जगमोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, १९१२, इलाहाबाद
१५ छत्रप्रकाश लाल श्री श्यामसुन्दरदास, १९११, काशी
१६ जायसी ग्रन्थावली जायसी श्री माताप्रसाद गुप्त, १९५२, इलाहाबाद
१७ जायसी ग्रन्थावली जायसी श्री रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी
१८ जगनामा श्रीधर
१९ डिंगल में वीर रस बांकीदास, सूर्यमल्ल श्री मोतीलाल मेनारिया, १९३० प्रयाग
२० तुलसी ग्रन्थावली भाग १ (रामचरित मानस) तुलसीदास श्री रामचन्द्र शुक्ल १९२३, काशी
२१ तुलसी ग्रन्थावली भाग २ (एकादश कृतियाँ) तुलसीदास श्री रामचन्द्र शुक्ल १९२३, काशी

२२ दादूदयाल की बानी **दादू** वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
२३ धरनीदास की बानी **धरनीदास** वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
२४ नन्ददास ग्रन्थावली **नन्ददास** श्री ब्रजरत्नदास, १९४३, काशी
२५ बिहारी रत्नाकर **बिहारी** श्री जगन्नाथदास रत्नाकर
२६ विद्यापति की पदावली **विद्यापति** श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, १९३६, लखनऊ
२७ भाव-विलास **देव** १९३६, प्र० स०, काशी
२८ भूषण ग्रन्थावली **भूषण** श्री हरिऔध
२९ मलूकदास की बानी **मलूकदास** वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
३० मधुमालती **मझन** श्री शिवगोपाल मिश्र, १९५७, काशी
३१ मतिराम ग्रन्थावली **मतिराम** श्री कृष्णबिहारी मिश्र, द्वि० स०, १९३४ लखनऊ
३२ मीराबाई की पदावली **मीराबाई** श्री परशुराम चतुर्वेदी
३३ राजविलास **मान** लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा काशी
३४ रहिमन सुधा **रहीम** श्री अनूपलाल मडल, द्वि० स०, १९३१, प्रयाग
३५ रहीम रत्नावली **रहीम** श्री मायाशकर याज्ञिक, तृ० स०, साहित्य सेवा सदन काशी
३६ शब्द रसायन **देव** श्री जानकीनाथ सिंह, प्र० स०, १९२३, हिन्दी सा० स० प्रयाग
३७ सतसई सप्तक (**वृन्द, बिहारी, तुलसी, रसलीन आदि**) श्यामसुन्दरदास, १९३१ हिन्दुस्तानी एकेडेमी
३८ सुजान चरित **सूदन** श्री राधाकृष्णदास काशी
३९ सुन्दरदास ग्रन्थावली **सुन्दरदास** राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, १९३६, कलकत्ता
४० सूर-सागर खण्ड १ **सूरदास** सूर समिति, १९४३, ना० प्र० सभा काशी
४१ सूर-सागर खण्ड २ **सूरदास** सूर समिति, १९२३, ना० प्र० सभा काशी
४२ सत-वानी-सग्रह वेलवेडियर प्रेस, १९३२
४३ हिन्दी के कवि और काव्य (**इन्द्रावती, माधवानल-कामकदला**) श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

सहायक-ग्रन्थ

१ अनहैपी इण्डिया लाला लाजपतराय वन्ना पब्लिशिंग कम्पनी कलकत्ता
२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ श्री दीनदयाल गुप्त १९३७, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग २ श्री दीनदयाल गुप्त १९३७, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
४ आधुनिक कवि (भूमिका) श्री सुमित्रानन्दन पन्त
५ आइने अकबरी अबुल फजल ब्लीचमैन द्वारा अनुवादित

६ इस्लाम और गैरमुस्लिम विद्वान श्री अबू मुहम्मद इब्राहीम १९४९ काशी
७ इस्लामिक कल्चर (पत्रिका) हैदराबाद
८ इण्डिया एण्ड हर पीपुल श्री अभेदानन्द १९४५, कलकत्ता
९ इण्डिया फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टु स्लेवरी श्री एस० ए० डागे
१० उत्तर रामचरित (संस्कृत) . भवभूति—स० टी० आर० अयर आ० न० १९३० बम्बई
११ उत्तर भारत की सन्त परम्परा परशुराम चतुर्वेदी प्र० न०, १९४१, इलाहाबाद
१२ एज आफ इम्पीरियल यूनिटी आफ इण्डिया राधाकुमुद मुखर्जी, रमेशचन्द्र मजूमदार भारतीय विद्या भवन
१३ ए सरवे आफ इण्डियन हिस्ट्री के० एम० पानिकर बंबई, १९५४
१४ एन एडवान्सड हिस्ट्री आफ इण्डिया रमेशचन्द्र मजूमदार, एच० सी० राय चौधरी १९५३, लंदन
१५ कबीर हजारीप्रसाद द्विवेदी १९४७, बंबई
१६ कबीर का रहस्यवाद रामकुमार वर्मा
१७ कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया भाग १ रामकृष्ण सेंचीनेरी कलकत्ता
१८ कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया भाग ३ रामकृष्ण सेंचीनेरी कलकत्ता
१९ कल्याण (नारी अङ्क) गीता प्रेस गोरखपुर, १९४८
२० कालिदास युगीन भारत भगवतशरण उपाध्याय १९५५ इलाहाबाद
२१ किरातार्जुनीय (संस्कृत) भारवि
२२ क्रिमिनल इन इंडिया श्री एस० आर० शर्मा १९३७, बंबई
२३ ग्रेट विमेन आफ इण्डिया श्री माधवानन्द, रमेशचन्द्र मजूमदार सम्पादित १९५३ कलकत्ता
२४ जहाँगीर इंडिया (पेल्सवर्ट) मोरलैन्ड सम्पादित १९२५, कैम्ब्रिज
२५ जातक प्रथम खण्ड श्रीभदन्त आनन्द कौसल्यायन
२६ ट्रैवेल्स इन मुगल इण्डिया (बर्नियर) कासटेबल सपादित
२७ डिसकवरी आफ इण्डिया श्री जवाहरलाल नेहरू १९४५, कलकत्ता
२८ तसव्वुफ अथवा सूफीमत श्री चन्द्रबली पाण्डेय १९४८ द्वि० न०, काशी
२९ तुलसी ग्रन्थावली भाग ३ स० श्री रामचन्द्र शुक्ल
३० तुलसीदास श्री माताप्रसाद गुप्त १९५३, इलाहाबाद
३१ तुलसी-दर्शन श्री बलदेवप्रसाद मिश्र
३२ तुलसी रसायन श्री भगीरथ मिश्र
३३ वन्डर दैट वाज इण्डिया ए० एल० बाशम १९५४, लदन
३४ पर्शियन वुमेन एन्ड हर वेज सी० कालिवर राइस १९२३, लदन
३५ पोजीशन आफ विमेन इन हिंदू सिविलिजेशन श्री ए० एस० अल्टेकर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, १९३८
३६ बाल महाभारत काव्य (संस्कृत) श्री अमरचन्द्र सूरि, स० शिवदत्त शर्मा १८९४

३७ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद श्री प्रभुदयाल मीतल द्वि स०, १९४८, मथुरा
३८ भारतीय समाज सस्कृति तथा सस्थाएँ श्री कैलाशनाथ शर्मा १९५२, कानपुर
३९ भारतीय प्रेमाख्यान श्री हरिकान्त श्रीवास्तव १९५५, बनारस
४० भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण श्री भगवतशरण उपाध्याय १९५० काशी
४१ भारतीय साधना और सूर-साहित्य श्री मुशीराम शर्मा साहित्य साधना सदन कानपुर
४२ मसनवीज श्राफ जलालुद्दीन रुमी मौलाना रुमी निकल्सन सम्पादित
४३ मध्यकालीन धर्म-साधना श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी १९५२, प्रयाग
४४ मेवाड गौरव श्री पद्मराज जैन, १९२६, कलकत्ता
४५ मेवाड का इतिहास श्री हनुमानसिंह रघुवशी
४६ रघुवश (सस्कृत) श्री कालिदास
४७ रीतिकाव्य की भूमिका श्री नगेन्द्र, १९४९, दिल्ली
४८ रीतिकालीन कविता तथा शृगाररस का विवेचन श्री राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी १९५३, आगरा
४९ लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ग्राफ पीपुल ग्राफ हिन्दुस्तान श्री कुँवर मुहम्मद अशरफ
५० विमेन अन्डर पोलोगैमी श्री वाल्टर एम० गैलिकन्स, १९१४, लदन
५१ विमेन इन एशियट इण्डिया श्री सी० बैडर
५२ विमेन इन वैदिक एज श्री शकुन्तला राव शास्त्री
५३ विचार और विश्लेषण श्री नगेन्द्र, दिल्ली
५४ शिशुपाल वध (सस्कृत) श्री माघ
५५ स्टोरिया द मोगोर भाग १ मनूची, विलियम इर्विन अनुवादित, १९०६
५६ स्टोरिया द मोगोर भाग २ मनूची, विलियम इर्विन अनुवादित, १९०६
५७ स्टडीज फ्राम इडिया श्री जदुनाथ सरकार, १९१९, कलकत्ता
५८ स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज्म निकल्सन, १९२१, कैम्ब्रिज
५९ सप्तसिन्धु वीरकाव्याक (पत्रिका) १९५५ जून
६० सम कल्चरल ऐस्पेक्टस ग्राफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया जफर, १९३९, पेशावर
६१ सम ऐस्पेक्टस ग्राफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन श्री रामप्रसाद त्रिपाठी, १९३६, इलाहाबाद
६२ सत कवि दरिया एक अनुशीलन धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, पटना
६३ सस्कृति के चार अध्याय श्री रामधारीसिह दिनकर, १९५६, दिल्ली
६४ सूर-साहित्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
६५ सूरदास श्री रामचन्द्र शुक्ल, काशी
६६ हिन्दी नवरत्न मिश्रबन्धु, १९३८, प० स०, लखनऊ
६७ हिन्दी महाभारत अनुवादक द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी, १९३०, इलाहाबाद

६८ हिन्दू सिविलिजेशन श्री राधाकुमुद मुकर्जी, १९५०, बंबई
६९ हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता श्री वेनीप्रसाद, १९३१, प्रयाग
७० हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य श्री कमल कुलश्रेष्ठ, १९५३, अजमेर
७१ हिन्दी साहित्य का इतिहास श्री रामचन्द्र शुक्ल, १९५५, काशी
७२ हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
७३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास श्री रामकुमार वर्मा, द्वि० स०, १९४८ इलाहाबाद
७४ हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय श्री पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, १९५०, लखनऊ
७५ हिन्दी साहित्य की भूमिका श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, १९४८, बंबई
७६ हिन्दी वीर-काव्य श्री टीकमसिंह तोमर
७७ हुमायूँ नामा गुलबदन बेगम, स० ब्रजरत्नदास, स० १९८०, काशी
७८ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ श्रीमती सावित्री सिन्हा १९५३, दिल्ली
७९ मध्यकालीन संस्कृति गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा
८० मध्ययुग का इतिहास ईश्वरी प्रसाद १९५५, इलाहाबाद
८१ मिस्टिक्स आफ इस्लाम निकल्सन १९१४, इंग्लैंड
८२ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन जदुनाथ सरकार १९३५, कलकत्ता

शोध-प्रबन्ध

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

१ आधुनिक हिन्दी काव्य की नारी-भावना शैलकुमारी माथुर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी
२ कोर्ट लाइफ आफ मुगल्स अन्सारी, आमिर अहमद
३ स्टडीज इन मुगल पेन्टिंगस् कौमुदी
४ सम ऐस्पेक्टस आफ पोजीशन आफ विमेन इन एंशियंट इंडिया गौरा बनर्जी
५ सिद्ध-साहित्य धर्मवीर भारती

६८ हिन्दू सिविलिजेशन श्री राधाकुमुद मुकर्जी, १६५०, बवई
६६ हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता श्री बेनीप्रसाद, १६३१, प्रयाग
७० हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य श्री कमल कुलश्रेष्ठ, १६५३, अजमेर
७१ हिन्दी साहित्य का इतिहास श्री रामचन्द्र शुक्ल, १६५५, काशी
७२ हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
७३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास श्री रामकुमार वर्मा, द्वि० स०, १६४८ इलाहाबाद
७४ हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय श्री पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, १६५०, लखनऊ
७५ हिन्दी साहित्य की भूमिका श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, १६४८, बवई
७६ हिन्दी वीर-काव्य श्री टीकमसिंह तोमर
७७ हुमायूं नामा गुलबदन बेगम, स० ब्रजरत्नदास, स० १६८०, काशी
७८ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ श्रीमती सावित्री सिन्हा १६५३, दिल्ली
७६ मध्यकालीन सस्कृति गौरीशकर हीराचन्द्र ओझा
८०. मध्ययुग का इतिहास ईश्वरी प्रसाद १६५५, इलाहाबाद
८१ मिस्टिक्स आफ इस्लाम निकल्सन १६१४, इग्लैंड
८२ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन जदुनाथ सरकार १६३५, कलकत्ता

शोध-प्रबन्ध

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

१ आधुनिक हिन्दी काव्य की नारी-भावना शैलकुमारी माथुर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी
२ कोर्ट लाइफ आफ मुगल्स अन्सारी, आनिर अहमद
३. स्टडीज इन मुगल पेन्टिंग्स् कौमुदी
४ सम ऐस्पेक्टस आफ पोजीशन आफ विमेन इन एशियंट इंडिया गौरा बनर्जी
५ सिद्ध-साहित्य धर्मवीर भारती